RNI Number : MPHIN/2016/70609

ISSN NUMBER : 2455-9814

वर्ष : 4, अंक : 15

अक्टूबर-दिसम्बर 2019

मूल्य 50 रुपये

विभोम स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

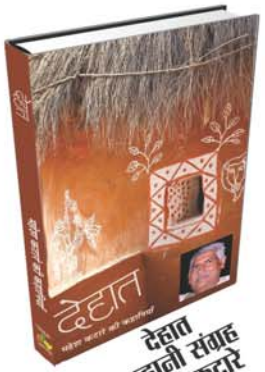

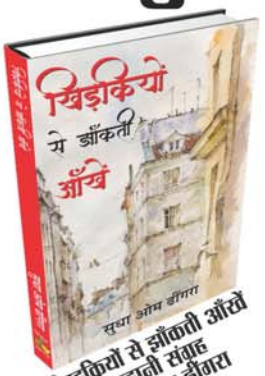

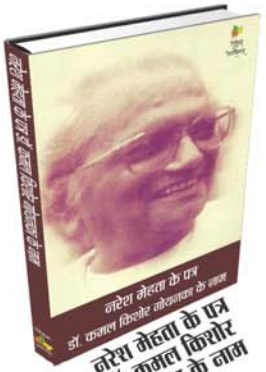

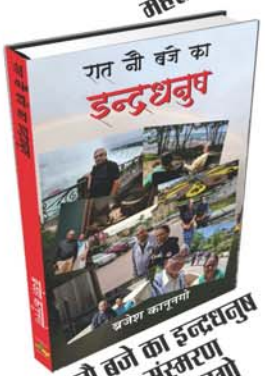

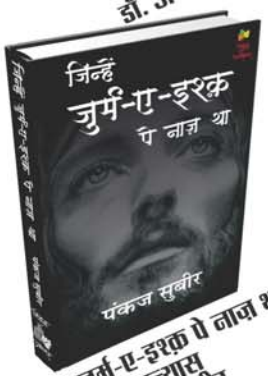

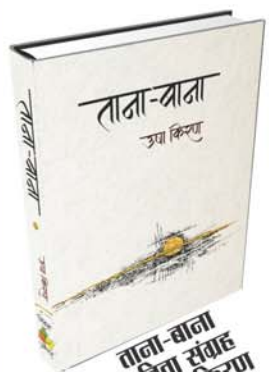

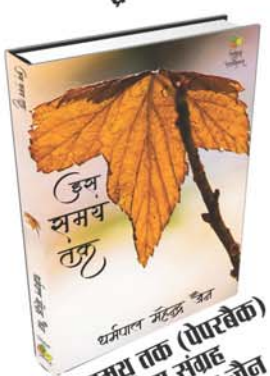

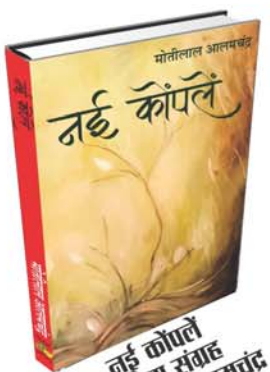

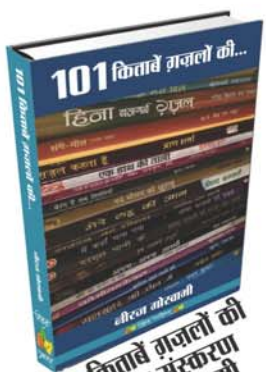

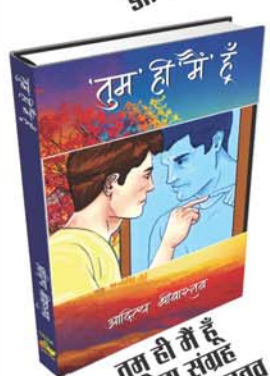

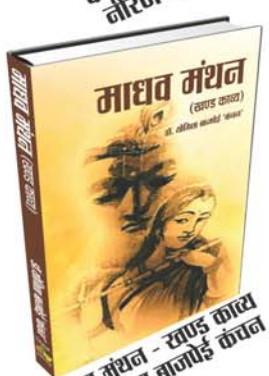

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें
देह
उपन्यास
अचला नागर
देहात
कहानी संग्रह
महेश कटारे
नाच-गान
कहानी संग्रह
डॉ. उर्मिला शिरीष
खिड़कियों से झाँकती आँखें
कहानी संग्रह
सुधा ओम ढींगरा
नरेश मेहता के पत्र
डॉ. कमल किशोर
गोयनका के नाम
प्रेम की उम्र के चार पड़ाव
कविता संग्रह
मनीषा कुलश्रेष्ठ
रात नौ बजे का इन्द्रधनुष
यात्रा-संस्मरण
ब्रजेश कानूनगो
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था
उपन्यास
पंकज सुबीर
प्रवास में आसपास
कहानी संग्रह
डॉ. हंसा दीप
पुकारती हैं स्मृतियाँ
कविता संग्रह
आनंद पचौरी
ताना-बाना
कविता संग्रह
डॉ. उषा किरण
इस समय तक (पेपरबैक)
कविता संग्रह
धर्मपाल महेन्द्र जैन
नई कोंपलें
कविता संग्रह
मोतीलाल आलमचंद
101 किताबें ग़ज़लों की
पेपरबैक संस्करण
नीरज गोस्वामी
हैश टैग ज़िंदगी
कविता संग्रह
श्याम चंदेले
तुम ही मैं हूँ
कविता संग्रह
आदित्य श्रीवास्तव
दिलफ़रेब
ग़ज़ल संग्रह
राजकुमार कोरी राज
मैं नास्तिक हूँ
उपन्यास
राजेश सोनवार
माधव मंथन - खण्ड काव्य
डॉ. योगिता बाजपेई कंचन
भूत भाई साहब
कहानी संग्रह
प्रियंका कौशल
शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर
amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
Paytm
https://www.paytm.com
ebay
http://www.ebay.in
दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

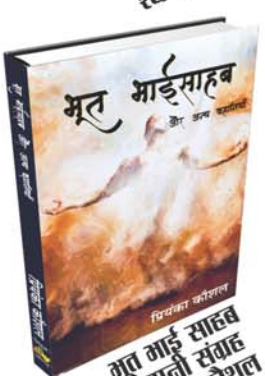

संरक्षक एवं प्रमुख संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545
मोबाइल : 09806162184
ईमेल : vibhomswar@gmail.com

ऑनलाइन 'विभोम-स्वर' :
http://www.vibhom.com/vibhomswar.html
http://vibhomswar.blogspot.in
फेसबुक पर 'विभोम स्वर'
https://www.facebook.com/vibhomswar
एक प्रति : 50 रुपये (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
1500 रुपये (पाँच वर्ष)
3000 रुपये (आजीवन)
विदेश प्रतिनिधि
अनिता शर्मा (शंघाई, चीन)
रेखा राजवंशी (सिडनी, आस्ट्रेलिया)
शिखा वार्ष्णेय (लंदन, यू के)
नीरा त्यागी (लीड्स, यू के)
अनिल शर्मा (बैंकॉक)
क़ानूनी सलाहकार
शहरयार अमजद ख़ान (एडवोकेट)
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील सूर्यवंशी
तकनीकी सहयोग
पारुल सिंह

संपादन, प्रकाशन, संचालन एवं सभी सदस्य पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर मध्यप्रदेश रहेगा।

Dhingra Family Foundation
USA

विभोम-स्वर

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 4, अंक : 15, त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2019
RNI NUMBER : MPHIN/2016/70609
ISSN NUMBER : 2455-9814

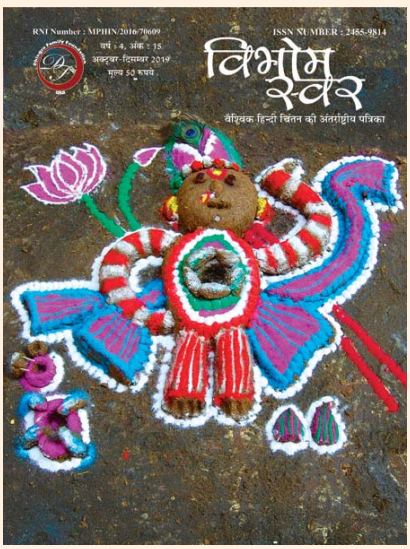

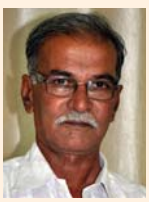

आवरण चित्र
राजेंद्र शर्मा बब्बल गुरु

रेखाचित्र
अनुभूति गुप्ता

Dhingra Family Foundation
101 Guymon Court, Morrisville
NC-27560, USA
Ph. +1-919-801-0672
Email: sudhadrishti@gmail.com

इस अंक में

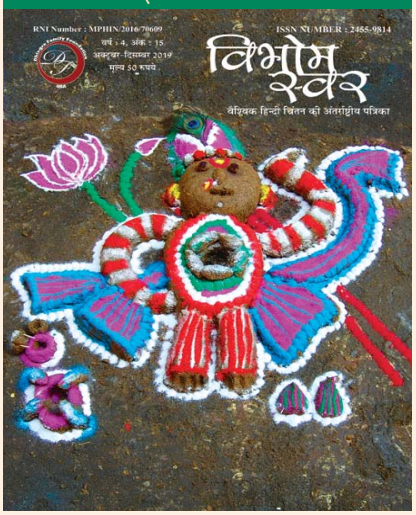

वैश्विक हिन्दी चिंतन की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

वर्ष : 4, अंक : 15,

त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2019

संपादकीय 5

मित्रनामा 7

साक्षात्कार

डॉ. हंसा दीप से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत 9

कथा कहानी

दुर्गा
विवेक मिश्र 14

एमी का प्रणय पथ
कादम्बरी मेहरा 17

हम पहुँच जाएँगे तेरी शादी में भारत...
अर्चना पैन्यूली 21

तुम सही हो लक्ष्मी
डॉ.रमाकांत शर्मा 26

जुड़े गाँठ पड़ जाए....
ज्योति जैन 30

छोछक
रेनू यादव 32

बोआई की खुशबू
पंकज त्रिवेदी 36

ऊब
राजेश झरपुरे 39

लघुकथाएँ

लव स्टोरी@साकेत मॉल
संगीता कुजारा टाक 20

मंदिर की पवित्रता
सुभाष चंद्र लखेड़ा 41

परख
डॉ. प्रदीप उपाध्याय 44

बेटे होकर
सुमन कुमार 47

व्यंग्य

मेरे साक्षात्कार
अश्विनीकुमार दुबे 42

भाषांतर

अपना घर,
मूल कथा : मंशायाद
अनुवाद- शहादत 45

शहरों की रूह

पहाड़ी सुंदरी गुस्से में है!
मुरारी गुप्ता 48

आलेख

अनाम रिश्तों की चितेरी
वीरेन्द्र जैन 51

संस्मरण

जब दिल्ली प्रेस की नौकरी छूटी
अमरेंद्र मिश्र 53

हमारी धरोहर

कीकली कलीर दी....
शशि पाधा 57

चिट्ठियाँ हो तो हर कोई बाँचे.....
गोवर्धन यादव 59

यात्रा-संस्मरण

स्वदेश विदेशियों की नज़र में....
डॉ. अफ़रोज़ ताज 60

नव पल्लव

सुजाता के बुद्ध
अनुजीत इकबाल 68

कविताएँ

विशाखा मुलमुले 71
डॉ. अतुल चतुर्वेदी 72
प्रगति गुप्ता 73
अरविन्द यादव 74
अनिता रश्मि 75
डॉ. शोभा जैन 76

समाचार सार

स्पेनिन सम्मान समारोह 77
विकेश निझावन सम्मानित 77
उज्जैन पुस्तक मेला 78
अनुवाद कार्यशाला 78
हिन्दी दिवस समारोह 79
पुस्तकों का लोकार्पण 79
अशोक 'अंजुम' विशेषांक 79
पुस्तक चर्चा 80
काव्य-प्रवाह 80
शब्द प्रवाह साहित्य सम्मान 81
मासिक कविता गोष्ठी 81
राष्ट्रीय संगोष्ठी 81

आख़िरी पन्ना 82

विभोम-स्वर सदस्यता प्रपत्र

यदि आप विभोम-स्वर की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है :
1500 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा विभोम स्वर (VIBHOM SWAR) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को विभोम-स्वर के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है : Name of Account : **Vibhom Swar**, Account Number : **30010200000312**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero") (विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)
सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :— — — — — — — — — — — — — — — — — **डाक का पता :**— — — — — — — — — — — — — — — — — — — —
— — — — — — — — — — — — — — — **सदस्यता शुल्क :**— — — — — — — — **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**— — — — — — — — — —
ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — — — **दिनांक :** — — — — — — — — — — — — — — — —

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

भिन्न विचारों के प्रति भी उदार रहना ज़रूरी है

विचारधारा एक ऐसी संकरी गली है, जो सोच और विचारों को बस एक जगह लाकर बंद कर देती है। उस बंद मोड़ पर कोई खिड़की नहीं होती, जो खुल सके, जिससे ताज़ा हवा का झोंका आ सके। कोई झरोखा नहीं होता जिससे रौशनी की किरण भीतर आ सके। एक ही तरफ़ की सोच कुएँ के मेंढक की तरह टर्राती रहती है और स्वयं को सही और बाकी सबको ग़लत समझती उसी दिशा की ओर ले जाती है, जिस दिशा में सही और ग़लत की पहचान नहीं रहती। जो निर्देश मस्तिष्क में भर दिए जाते हैं, उसमें रसायन भी वैसे ही बनने लगते हैं और प्रक्रिया भी वैसी ही रहती है। विचारधारा राजनैतिक भी हो सकती है और धार्मिक भी। कट्टरता तो आएगी ही, क्योंकि दूसरी विचारधारा की कोई अच्छाई सहन ही नहीं होती। यही संकीर्णता मानव को एक दूसरे के प्रति असहिष्णु बना देती है।

इस समय पूरा विश्व संकीर्णता और कट्टरता की ऐसी आग में जल रहा है कि उसकी तपिश से बचना मुश्किल है। अफ़सोस की बात है कि अधिकतर बुद्धिजीवी ही इन विचारधाराओं को प्रोत्साहित करते हैं, एक क्षण के लिए भी देश और जनता के हक़ में क्या सही है, उसके लिए सोचा नहीं जाता। राजनीतिज्ञ अपनी-अपनी विचारधारा को सही साबित और उन्हें स्थापित करने के लिए अलग-अलग हथकंडे अपनाते हैं और पढ़ा-लिखा वर्ग बिना सोचे समझे उनका साथ देता है। जनता के लिए त्रासदी और भी गहरी हो जाती है, जब एक विचारधारा की सरकार कुछ प्रोजेक्ट्स की स्वीकृति देती है, दूसरी सरकार जब आती है तो उन प्रोजेक्ट्स को अस्वीकृत कर देती है। दो कदम आगे गया देश तीन कदम पीछे चला जाता है। जनता अलग पिसती है। तो प्रश्न उठता है कि विचारधाराओं ने एक वर्ग पैदा करने के अतिरिक्त देश और समाज को क्या दिया? हालाँकि रूस इसका उदहारण है, यहाँ की विचारधारा का अपने ही बंद दरवाज़ों में दम घुट गया। भारत में अभी भी एक वर्ग इस विचारधारा को लेकर स्वप्न बुनता रहता है, जबकि चीन तक में यह बस ऊपरी सतह पर रह गई है।

साहित्य में भी विचारधाराओं ने क्या किया? सिर्फ अपने लेखक स्थापित करने के अतिरिक्त साहित्य और भाषा की समृद्धि की ओर किसने देखा? कितने अच्छे लेखक इस सोच की बलि चढ़ गए। किसी बुद्धिजीवी ने यह नहीं सोचा कि यह सही नहीं, साहित्य के हित में नहीं है। साहित्य से प्यार करने वालों को बस रचना का स्तर और उत्तमता देखनी चाहिए न कि विचारधारा।

विश्व पर इस समय रूढ़िवादी ताकतों का बोलबाला हो रहा है। भूमंडलीकरण ने विश्व को जहाँ छोटा कर दिया, एक तरह से मिला दिया। कुछ समय पहले तक ऐसा लग रहा था वसुधैव कुटुंबकम् की भावना पैदा हो रही है। पर ज्योंही रूढ़िवादी ताकतें सत्ता में आईं, विश्व फिर से पुरातन युग की ओर जाने लगा है। देश अपने में सिमटने लगे हैं। यूरोप, यूके, और अमेरिका के व्यपारिक संबंधों तक में स्वार्थता सिमिट आई है। अमेरिका की व्यपारिक नीतियों ने पूरे विश्व की आर्थिक व्यवस्था बिगाड़ दी है। चीन के साथ अन्य देशों की अर्थ व्यवस्था भी चरमरा गई है।

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल : +1-919-801-0672
ईमेल sudhadrishti@gmail.com

संपादकीय

एक छोटा-सा दीपक मानों अंधकार के पूरे साम्राज्य से लड़ने की चुनौती को स्वीकार कर, पूरी रात जलता रहता है। लेकिन इन्सान जीवन में आने वाली छोटी-छोटी चुनौतियों, थोड़े समय के अंधकार से हार कर हथियार डाल देता है। दीपक को प्रज्ज्वलित करने वाला इन्सान दीपक से कुछ भी सीख नहीं लेता है।

वैश्विक आर्थिक मंदी पर इंटरनेशनल मॉनीटरी फंड्स की जुलाई 2019 की आर्थिक रिपोर्ट में लिखा है कि दुनिया भर के सब देशों की हालत इस आर्थिक मंदी के कारण ख़राब हो गई है, तथा और भी होने वाली है। आज इस आर्थिक मंदी का कारण दकियानूसी सोच है-मेरा देश, मेरी नस्ल, मेरी सोच, मेरी सभ्यता महान्। अपनी ही विचारधाराओं के दायरे में बंद सभी असुरक्षित हैं। इतिहास गवाह है, सिकंदर, हिटलर, मुसोलोनी; जिसने भी अपनी सोच और विचारधारा को दूसरों पर थोप कर महान् बनना चाहा, क्या वे बन पाए? कहाँ गए वे सब ? उनकी तो सोच और विचारधारा भी ज़िंदा नहीं रही।

मैं बस इतना कहना चाहती हूँ कि विचारधारा की राजनीति के पैरोकारों से दूर रहें और अगर आप किसी धारा, वर्ग या पार्टी से सहानुभूति रखते हैं तो भी अपने दिल, दिमाग को खुला रखें और विवेक से काम लें। घट रही घटनाओं और हालातों का निष्पक्ष जायज़ा लें, तभी मानवता ज़िंदा रहेगी और प्रेम बच पाएगा। पर अफ़सोस किसी भी देश के नागरिक समय रहते सचेत नहीं होते।

पंकज सुबीर का हाल ही में एक उपन्यास आया है 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था'। धर्मान्ध लोगों की आँख खोलता, राजनैतिक विचारधाराओं की जड़ें खोदता, राजनीतिज्ञों के चेहरों पर से नकाब उठाता, वर्तमान समय के साम्प्रदायिक असहिष्णुता से भरे माहौल में प्रेम और सद्भावना का सन्देश देता ऐसा उपन्यास है, जो आज विश्व के लिए बहुत ज़रूरी है। मेरा संपादकीय भी आज कुछ ऐसा ही है।

मैं अपने अनुभवों से यह बात कह रही हूँ, मेरा जन्म विचारधाराओं वाले परिवार में हुआ। पापा कम्युनिस्ट, माँ कांग्रेसी, बड़े भाई सोशलिस्ट और मौसा आर आर एस वाले। सभी अपनी जगह कट्टर। किसी में कोई लचक नहीं। अपनी -अपनी सोच सही, बाकी सब ग़लत। फिर भी एक घर में। वह समय एक दूसरे को बर्दाश्त करने और गरिमापूर्ण विचारों के आदान-प्रदान का था। अब दुनिया ही दिशाहीन और बैचैन है। कोई किसी को सुनना, समझना नहीं चाहता। मैं उस घर से आज़ाद ख़यालों की निकली; क्योंकि मेरे सामने कट्टरता के कई उदहारण थे। विदेश आकर दृष्टि और भी व्यापक हुई। देश, विदेश दोनों की राजनीतिक उठा-पटक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितिओं का निष्पक्ष गहन अध्ययन करती हूँ, तभी निवेदन कर रही हूँ, जो समय आ रहा है, उसमें एक दूसरे यानी भिन्न विचारों के प्रति भी उदार रहना ज़रूरी है। मानवता तभी बच पाएगी।

प्रकृति के बदलते रूप, पर्यावरण में आ रहे परिवर्तन और विश्व में धीरे-धीरे बढ़ रही अशांति में प्रेम और धैर्य ही काम आएँगे और कुछ भी नहीं.....

आपकी,

सुधा ओम ढींगरा

मित्रनामा

सम्पादकीय बहुत सामयिक

दोनों पत्रिकाएँ 'विभोम-स्वर' और 'शिवना साहित्यिकी' मिलीं, धन्यवाद! मुझे हिन्दी भाषा एवं साहित्य की विश्व स्तर की अद्यतन स्थिति जानते रहने में पर्यान्त रुचि है। कुछ दिन, अमेरिका में एक वालतिद्वार में हिन्दी पढ़ाने का अवसर भी मिला था।

'शिवना साहित्यिकी' में इस अंक में कई पुस्तकों की समीक्षा का एक साथ प्रकाशन प्रशंसनीय है। शहरयार का सम्पादकीय बहुत सटीक और सामयिक है। 'विभोम-स्वर' में आपने जो प्रश्न उठाए हैं वे कटु सत्य हैं। आज का हिन्दी साहित्य ऐसे ही व्यक्तिवाद से उलझा हुआ है। साहित्य की उत्कृष्टता लगती है गौण हो रहा है। यही समय है कि युवा साहित्यकार निर्भीकता के साथ आगे आए और इस बम्पर फसल में से सुन्दर सर्वहितवाली रचनाएँ छाटकर छापी जाएँ। उनकी समीक्षा / प्रकाशन भी प्राथमिकता पर किया जाए।

मैं हिन्दी भवन से जुड़ा ही इसीलिए हूँ कि मैं हिन्दी भाषी ही नहीं हिन्दी प्रेमी भी हूँ। मैंने विज्ञान विषय भौतिकी में एमएससी जबलपुर डावर्टशन कॉलेज से किया था और देवास कॉलेज में दो साल पढ़ाया। फिर प्रशासनिक सेवा में आ गया था और सचिव पद से सेवानिवृत्त होकर हिन्दी भवन से जुड़ा। हाल ही में भारत के संस्कृति मंत्री श्री प्रह्लाद पटेल हिन्दी भवन आए थे उन्होंने मुझसे पूछा था कि मध्यप्रदेश में कितने युवा-साहित्यकार हैं जो अच्छा लिख रहे है। मैं उन्हें कुछ ही नाम गिना सका था। क्या हम मिलकर प्रदेश के युवा-साहित्यकारों को नई भाषा-नए विचारों के साथ अच्छा लेखन करने में सहायता नहीं कर सकते। हिन्दी भवन में हम एक युवा-सृजन मंच शुरू करना चाहते है।

हिन्दी भाषा क्या भारतीय भाषाओं में, कृतियों के छपने के पहले या छपवाने के पहले उनका सम्पादन (Editors) करने करवाने का चलन ही नहीं है जैसा विदेशों में है। मैंने देखा है। शहरयार ने ऐसे साहित्य की समीक्षा ही ना करने का सुझाव दिया है। मेरा इससे आगे यह विचार है कि ऐसी कृतियाँ अंधाधुंध छप ही न पाएँ। हम ऐसी कुछ व्यवस्था करें कि हर नया/युवा लेखक पहले कृति का सम्पादन Editing करवा ले।

हिन्दी राष्ट्रभाषा बने, हिन्दी भाषा शुद्ध बनी रहे, हिन्दी साहित्य फिर से अपनी श्रेष्ठता प्राप्त करे, हिन्दी का साहित्यकार सशक्त लेखक कहलाए, सच्चा अच्छा लेखन बढ़े। इसी शुभकामनाओं के साथ

-सुखदेव प्रसाद दुबे (भौतिकी)
भारतीय प्रशासनिक सेवा (नि.)
अध्यक्ष हिन्दी, मप्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ई 2/123, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) मोबा. : 9425303838

***

संदेशात्मक साक्षात्कार

कथा यूके पुरवाई की संरक्षिका, कुशल राजनीतिज्ञ एवं प्रबुद्ध लेखिका ज़किया ज़ुबैरी का इंटरव्यू मैं अभी-अभी इत्मीनान से ठीक से पूरा पढ़ी हूँ! सुधा ओम ढींगरा द्वारा पत्रिका 'विभोम-स्वर' के लिए लिए गए इस साक्षात्कार में ज़किया ज़ुबैरी द्वारा बहुत नपे-तुले शब्दों में साहित्यिक सलीके से दिए गए जवाब में अपना संदेश समुचित रूप से दिया गया है।

ज़किया ज़ुबैरी ने अपने साक्षात्कार में स्पष्ट किया है कि उन्होंने अपनी कहानियों में मुख्यत: स्त्रियों के जीवन की समस्याओं पर कलम चलाई, स्त्रियों के जीवन संघर्ष की समस्याएँ इनको बेचैन करती हैं एवं उद्वेलित कर स्त्रियों की पीड़ा कागज़ पर उतारने को विवश करती रहती हैं। लगभग हर बुद्धिजीवी स्त्री का हृदया इसी से व्यथित है कि यह तमाम दुख-दर्द पुरुषों से मिला जिनकी जीवन सहचरी/ अर्धांगिनी भी वही है।

संभवत: महिलाओं को कमतर आँकना प्राचीन परंपरा एवं जीवन मूल्यों में सम्मिलित है !

इस संदर्भ में मेरा विचार है कि पुरुष प्रधान वर्तमान परिवेश में स्त्रियों की अपनी कितनी समस्याएँ उनकी तथाकथित बोल्डनेस, फॉरवर्डनेस, ज़्यादा अकलमंदी एवं परस्पर द्वेष ईर्ष्या की वजह से भी पैदा हुईं हैं।

यहाँ भारत में मुझे अपनी सरकारी सेवा में रहते, अपनी कार्य अवधि के दौरान हर जगह शहरी या ज़्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में अमीरों, गरीबों, साक्षर, निरक्षरों समृद्ध परिवारों की स्त्रियों से मेरा ज़्यादा साबका रहा है। यह देखने-सुनने और महसूस करने को मिला किसी दूसरे से ईर्ष्या के वशीभूत होकर जलन रखती हैं, एवं एक दूसरे को नीचा दिखाने का हर प्रयत्न करतीं हैं, वो भी पुरुष की सहभागिता से। हर परिवारों में कलह का बहुत बड़ा कारण है यह, जो अप्रत्यक्ष रूप में परिवार समाज राष्ट्र की प्रगति पथ में बाधक है।

यह साक्षात्कार पढ़ने के बाद जहाँ तक मैं समझ रही हूँ कि सुधा ओम ढींगरा के प्रत्येक प्रश्न का वाजिब व संतुलित जवाब ज़किया ज़ुबैरी द्वारा बेहतर ढंग से दिया गया। सुप्रसिद्ध कथाकार तेजेंद्र शर्मा उनके कहानी लेखन के गुरु हैं यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई।

हाँ, खास बात यह है कि इस साक्षात्कार ने ज़किया ज़ुबैरी के सुलझे हुए और सरल खुशमिजाज व्यक्तित्व की स्वामिनी हैं, का खुलासा किया है। इस संदेशात्मक साक्षात्कार के लिए हार्दिक बधाई! साथ ही यहाँ एक हमारे धार्मिक शहर बनारस में पली बढ़ी-पढ़ी महिला के शानदार जीवन की एवं विदेश में खुशहाल, बहुआयामी सफल मज़बूत व्यक्तित्व की झलक भी मिलती है।

-डॉ. तारा सिंह अंशुल, पूर्व वुमन एंड चाइल्ड डेवलपमेंट प्रोजेक्ट ऑफ़िसर ऐट वूमन एंड चाइल्ड डेवलपमेंट डिपार्टमेंट उत्तर प्रदेश लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

***

भारत भूमि के प्रति लगाव

आपको बराबर पढ़ती और मीडिया में देखती सुनती रहती हूँ। भारत भूमि के प्रति आपका लगाव और सामाजिक विसंगतियों को लेकर छटपटाहट आपकी रचनाओं, विशेषकर संपादकीय (विभोम-स्वर) में अकसर अभिव्यक्त होते मैंने पढ़ा है। शायद वह छटपटाहट यहाँ रहकर साहित्य सेवा करने वालों में कम ही दिखाई पड़ती है। पिछले वर्ष एशियन ट्रिब्यून के आमन्त्रण पर मैं कनाडा व्याख्यान देने गई थी तो वहाँ

कुछेक मूल भारतीयों में मैंने वही बेचैनी देखी। हालाँकि उनके पास आप जैसी लेखन क्षमता न थी पर तमाम सुख सुविधाओं के बीच भी वे भारत के लिए चिन्तित थे। यही हम भारतीयों की पूँजी है कि बाहर रहते हुए भी वे देश के लिए चिन्तित हैं।

-नीरजा माधव, सारनाथ, वाराणसी
मोबाइल: 9792411451

***

कहानियाँ प्रभावित करती हैं

दोनों पत्रिकाएँ 'विभोम-स्वर' और 'शिवना-साहित्यिकी' मिलीं। कल और आज दोनों को पढ़ कर ही चैन मिला ! ''विभोम स्वर'' के सम्पादकीय में सुधा जी ने एक ज्वलंत मुद्दे को उठाकर हमें इसकी भयावहता के लिए आगाह किया है। उधर 'आख़िरी पन्ना' के बहाने आपने उन तथाकथित जुगाड़बाज़ 'लेखकों' के मुँह पर झन्नाटेदार तमाचा मारा है। रिम्पी, उषा राजे सक्सेना, आभा सिंह और विनीता की कहानियाँ प्रभावित करती हैं। प्रेम जनमेजय और हरीश नवल दोनों ही मेरे पसंदीदा व्यंग्यकार हैं - दोनों को एक साथ पढ़कर अच्छा लगा !

प्रदीप चौबे पर संस्मरण में लेखक ने काफ़ी - कुछ समेटने की कोशिश की है। कविताओं और गीतों के चयन में आपकी सम्पादकीय दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है ! आपके सार्थक सम्पादन में पत्रिका ने न केवल साहित्यिक ऊँचाइयों को छुआ है अपितु प्रसिद्धि के शिखर पर प्रतिष्ठित होने के लिए भी अग्रसर है।

शुभास्ते सन्तु पन्थान :
शुभाकांक्षी

-विज्ञान व्रत
vigyanvrat@gmail.com

***

आख़िरी पन्ना मेरे मन की बात

'विभोम-स्वर' में रचनाएँ भेजने से पहले मैंने पत्रिका पढ़ने के लिए पत्रिका माँगी थी। अपने विभोम-स्वर और शिवना साहित्यिकी दोनों पत्रिकाओं के ऑनलाइन लिंक और पी.डी.ऍफ़ भेज दिए थे। त्वरित उत्तर के लिए आभारी हूँ, जिसने मुझे उत्साह से भर दिया। मिलते ही पत्रिकाएँ पढ़नी शुरू कर दी और दो दिन में ही पत्रिकाएँ पढ़ डालीं।

संपादकीय ने सोचने पर विवश कर दिया और आख़िरी पन्ना तो मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे मन की बात कह दी हो। ब्रिटेन की लेखिका ज़किया ज़ुबैरी का इंटरव्यू पढ़कर एक बात तो निस्संदेह कही जा सकती है कि पॉलिटिशियन किसी भी देश के हों, पॉलिटिक्स का नशा उन्हें होता है। हाँ दाद देता हूँ ज़किया जी को, जिन्होंने बड़े साहस के साथ स्वीकार किया है कि उन्हें पॉलिटिक्स का नशा है। शायद विदेश में रहने से वे स्पष्ट और ईमानदार है। हमारे देश के पॉलिटिशियन तो कभी नहीं मानेंगे कि वे नशेड़ी है। उन्हें पॉलिटिक्स का नशा है वह तो बस यही कहेंगे कि हम समाज सेवा के लिए पॉलिटिक्स में आए हैं जबकि वे अपने बैंक समाज सेवा के नाम पर लोगों को लूट लूट कर भरने के लिए आते हैं।

अरुण खरे की कहानी 'कितना सहेगी अनंदिता 'ने भावुक कर दिया और रिम्पी सिंह की कहानी 'मधुर मुकेश को किसने मारा?' लिखने के लिए बहुत हिम्मत चाहिए। एक सिस्टम का नक़ाब उठाया है। पोल खोली है। लेखिका को दिल से बधाई! उषा राजे सक्सेना की कहानी 'और तुझे क्या चाहिए....औरत' सिर्फ़ विदेश की कहानी नहीं देश में भी इस तरह के क़िस्से पाए जाते हैं। बाक़ी कहानियाँ भी अच्छी हैं। व्यंग्य की दुनिया के दो महारथियों प्रेम जनमेजय और हरीश नवल को पढ़ कर आनंद आ गया। शहरों के रूह में मैं शिकागो भी घूम लिया। लघुकथाएँ और भाषांतर की कहानियाँ भी बेहद रुचिकर लगीं। कविताओं और ग़ज़लों में भी कोई कसर नहीं छोड़ी गई। जितनी भी तारीफ़ करूँ इस पत्रिका की वह कम ही होगी।

'शिवना-साहित्यिकी' मैंने पहली ऐसी पत्रिका देखी जो सिर्फ़ समीक्षाएँ और आलोचनाएँ समेटे हुए है। मेरी नज़र में अभी तक ऐसी पत्रिका नहीं आई।

अनंत शुभकामनाओं के साथ,

-अशोक निगम, आर्य नगर, कानपुर, उत्तर प्रदेश, 208001

***

लेखकों से अनुरोध

'विभोम-स्वर' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
vibhom.swar@gmail.com

डॉ. हंसा दीप
हिन्दी में पीऍच.डी.। यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में लेक्चरार के पद पर कार्यरत। भारत में भोपाल विश्वविद्यालय और विक्रम विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों में सहायक प्राध्यापक। न्यूयार्क, अमेरिका की कुछ संस्थाओं में हिन्दी शिक्षण, यॉर्क विश्वविद्यालय टोरंटो में हिन्दी कोर्स डायरेक्टर।
दो उपन्यास ''कुबेर'', व ''बंद मुट्ठी'' प्रकाशित, उपन्यास ''बंद मुट्ठी'' गुजराती भाषा में अनूदित। दो कहानी संग्रह ''चश्मे अपने-अपने'' व ''प्रवास में आसपास'' प्रकाशित, साझा संग्रह - ''प्रतिश्रुति'' व ''बारह चर्चित कहानियाँ''। कुछ कहानियाँ मराठी में अनूदित। भारत में आकाशवाणी से कई कहानियों व नाटकों का प्रसारण। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी फ़िल्मों - हैनीबल, द ममी रिटर्नस, अमेरिकन पाई, पैनीज़ फ्रॉम हैवन आदि के लिए हिन्दी में सब-टाइटल्स का अनुवाद कार्य। कैनेडियन विश्वविद्यालयों में हिन्दी छात्रों के लिए अंग्रेज़ी-हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों के कई संस्करण प्रकाशित। वागर्थ, कथाबिम्ब, भाषा, विभोम-स्वर, परिंदे, लहक, यथावत, कथाक्रम, सुखनवर, विश्वा, समहुत, शीतलवाणी, दस्तक टाइम्स, गंभीर समाचार, उदय सर्वोदय, चाणक्य वार्ता, समावर्तन, गर्भनाल, साहित्यकुंज, सेतु, कालजयी, साहित्य अमृत, विश्वगाथा, चेतना आदि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित।
डॉ. हंसा दीप, 1512-17 Anndale Dr.,North York, Toronto, ON - M2N2W7, Canada
ई-मेल: hansadeep8@gmail.com
मोबाइल+ 647 213 1817

भारतीय स्त्री अधिक मज़बूत है, अधिक मेहनती है, अधिक समझदार व होशियार भी है

(कैनेडा की लेखिका डॉ. हंसा दीप से सुधा ओम ढींगरा की बातचीत।)

प्रश्न : हंसा जी, इससे पहले कि मैं आपसे साहित्यिक चर्चा शुरू करूँ, आप मुझे यह बताएँ कि आपका जन्म और शिक्षा कहाँ हुई?

उत्तर : मेरा जन्म भारत में, मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के ग्राम मेघनगर में हुआ। यह एक आदिवासी बहुल इलाका है। साथ ही गुजरात और मध्यप्रदेश की सीमा रेखा के निकट मुख्य रेल्वे स्टेशन है। प्रारंभिक शिक्षा मेघनगर एवं स्नातक व स्नातकोत्तर उच्च शिक्षा विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से हुई। विक्रम विश्वविद्यालय से पीऍच. डी प्राप्त करने के पहले ही मध्य प्रदेश के महाविद्यालयीन शिक्षा विभाग में बतौर सहायक प्राध्यापक के रूप में मेरी नियुक्ति हो चुकी थी। मध्यप्रदेश के विदिशा, ब्यावरा, राजगढ़ (ब्यावरा), और धार महाविद्यालयों में लगभग ग्यारह वर्षों तक स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं में हिन्दी का अध्यापन करने के बाद न्यूयॉर्क शहर की कुछ संस्थाओं में और उसके बाद टोरंटो, कैनेडा में यॉर्क यूनिवर्सिटी में हिन्दी अध्यापन किया। 2004 से अब तक यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में हिन्दी पढ़ा रही हूँ।

प्रश्न : आपका विदेश आगमन कब हुआ? क्या आप सीधे कैनेडा आईं?

उत्तर : जी नहीं सुधा जी, विदेश में मेरा पहला पड़ाव अमेरिका था। 1993 से 1998 तक, मैं न्यूयॉर्क शहर में रही। न्यूयॉर्क शहर ने मुझे बहुत कुछ दिया, विदेश में बसने का साहस और मुश्किलों से टकराने का हौंसला। उस शहर की मैं कर्ज़दार हूँ जिसने मुझे अपनी ताकत को पहचानने में बहुत मदद की। वहाँ की धरती ने मुझे चुनौतियों के साथ अपनापन दिया। वह प्यार मेरे दिल में कुछ इस तरह अंकित है कि इस शहर का नाम सुनते ही मुझे पहली बार विदेश में कदम रखने की अनुभूति आज भी वैसे ही होती है जैसे तब हुई थी। न्यूयॉर्क शहर की भव्यता ने मुझ जैसी हिन्दी प्रेमी को एक जगह दी और आगे के लिए एक ठोस आधार दिया जो आज यहाँ यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो में काम करते हुए भी मुझे महसूस होता है। वहाँ छः साल बिताने के बाद 1998 के नवंबर माह में परिवार सहित टोरंटो, कैनेडा आ गई थी। अब तो भारत और कैनेडा दोनों देशों की नागरिकता लेकर बचा हुआ जीवन टोरंटो में व्यतीत हो रहा है।

प्रश्न : क्या आपको भी अन्य प्रवासी भारतीयों की तरह कल्चर शॉक लगा था? क्या आप भी विदेश में आकर दो संस्कृतियों के टकराव में उलझी थीं? क्या आप उन अनुभवों को साझा करेंगी?

उत्तर : न्यूयॉर्क शहर के बजाय अगर अमेरिका के किसी और शहर में मैं लैंड हुई होती तो शायद कल्चरल शॉक के झटकों की तीव्रता बहुत ऊपर होती। लेकिन बहुसंस्कृति से रचे-बसे इस शहर में हमारा पहला पड़ाव फ्लशिंग के इलाके में था जहाँ भारतीयों की बहुलता तो है ही, साथ ही मंदिर-गुरुद्वारे भी अपनी उपस्थिति से इसे खास बनाते हैं। घर के समीप एक ब्लॉक के अंतर पर गुरुद्वारा था। एकाध किलोमीटर की दूरी पर हिन्दू मंदिर था। साथ वाली एक बिल्डिंग आसपास के भारतीयों में 'पटेल बिल्डिंग' के नाम से जानी जाती थी और दूसरी ओर वाली 'सरदारों का डेरा' के नाम से। अपने आसपास साड़ियों और सलवार-कमीज़ों को देखना सुकून भरा होता था। यही वजह थी कि कल्चरल शॉक के झटकों में सिर्फ 'होम-सिकनैस' की डिग्री हाई थी, शेष सब कुछ सामान्य था। शायद इसीलिए हम जल्दी ही न्यूयॉर्कर बन गए थे। भारत में भी धर्म जी के हर दो साल में तबादले के कारण घर बदलता था, शहर बदलता था, कार्यस्थल बदलता था। यहाँ भी आए तो इसी मानसिक तैयारी से थे कि तीन वर्षों के बाद भारत लौटना ही है इसलिए नवीनता का आनंद उठाते रहे। यह बात अलग है कि तब के चले आज भी विदेश में ही हैं। भारत गए तो सही कई बार, पर वापस यहाँ लौट कर आने के लिए।

प्रश्न : हंसा जी, आप यूनिवर्सिटी में हिन्दी को एक विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाती है, अपनी ही भाषा को विदेशी भाषा के रूप में पढ़ाने की कौन-कौन सी चुनौतियों का सामना आपको करना पड़ता है, पाठकों से साझा करना चाहेंगी?

उत्तर : ज़रूर सुधा जी, ये चुनौतियाँ शायद आकार-प्रकार में कुछ ज़्यादा ही बड़ी थीं। स्नातक और स्नातकोत्तर की हिन्दी कक्षाओं को भारत के महाविद्यालयों में पढ़ाने के बाद मेरे लिए बिगिनर्स की हिन्दी कक्षाओं से हिन्दी पढ़ाना शुरू करना तो बस एक कप चाय पीने जैसा था। इस अति-

आत्मविश्वास से श्रीगणेश तो हुआ मगर यकीन कीजिए पहली कक्षा के बाद ही समझ में आ गया कि यह इतना भी आसान नहीं है। अपनी हिन्दी को सरलतम बनाना है जो सबसे कठिनतम कार्य था। भारत की चालीस मिनट की कक्षाएँ यहाँ दो घंटों और तीन घंटों की कक्षाओं में बदल गई थीं और कक्षा में वे छात्र थे जो उच्चतम अंकों के साथ इस नामी यूनिवर्सिटी में अपने अतिरिक्त विषय के तौर पर हिन्दी को चुन रहे थे। अपनी भारतीय उच्चारण वाली अंग्रेज़ी के साथ उन छात्रों को विदेशी भाषा पढ़ानी थी जिनका वाक्य और शब्द तो दूर, हिन्दी-ध्वनियों से भी परिचय नहीं था। मैं उनके लिए विदेशी भाषा हिन्दी को, अपने लिए विदेशी भाषा अंग्रेज़ी द्वारा पढ़ा रही थी। तब मुझे अहसास हुआ कि हिन्दी कितनी कठिन भाषा है। ग्यारह स्वर और तैंतीस व्यंजनों के मूल चवालीस अक्षरों में मात्राएँ जोड़कर, आधे-पूरे अक्षर मिलाकर, कितने संयुक्ताक्षर बना लिए हैं, कभी गिनकर देखने का समय ही नहीं मिला। फिर इनको सजाने के लिए हर तरह के बिन्दु को स्थान दिया, जहाँ जैसे जगह मिली, शिरोरेखा के ऊपर, अक्षर के अगल-बगल, ऊपर-नीचे। अनुस्वार-अनुनासिकता के साथ, यानी बिन्दु, चंद्र बिन्दु के साथ, चन्द्र, विसर्ग, हलन्त तो ज़रूरी थे ही, उर्दू, अरबी, फारसी शब्दों के लिए क ख ग ज फ में नुक़्ता लगाना ज़रूरी होता गया। अन्य भाषाओं के शब्दों को अपनी भाषा में स्थान देकर अपनी भाषा को हमने उदार तो बनाया है लेकिन यहाँ मुद्दा यह है कि हमने अपनी लिपि में बहुत कुछ जोड़ लिया है।

अहिन्दी भाषी छात्र हिन्दी वर्णमाला सीख कर जैसे-जैसे बिगिनर्स कोर्स से आगे बढ़ते हैं, हिंदी के इंटरमीडिएट कोर्स, रीडिंग्स इन हिन्दी, मीडिया एंड कल्चर आदि, वैसे-वैसे व्याकरण की, वचन और लिंग की, कई ऐसी कठिनाइयों से जूझते हैं जिनके लिए कोई तार्किक आधार नहीं होता। और तब मुझे महसूस होता है कि एक भाषा की सरलता कितनी मायने रखती है। अंग्रेज़ी का दबदबा इसीलिए है कि सिर्फ छब्बीस अक्षरों में वह दुनिया की कई भाषाओं के, कई शब्दों को अपने में समा लेती है और सभी भाषाओं पर राज करती है। यह हिन्दी के वर्चस्व के लिए रोना-गाना नहीं है बल्कि कड़वा सत्य है जिसे हम कट्टर हिन्दी भाषी जितनी जल्दी स्वीकार कर लें उतना ही बेहतर होगा। हिन्दी के सरलीकरण को अपनाने की दिशा में ठोस कदम उठाने आवश्यक हैं। चीनी भाषा ने अपनी क्लिष्टता से मुक्ति के लिए 'सिमप्लीफाइड चाइनीज़' को प्रोत्साहित किया है। इससे उनकी लिपि या भाषा खत्म नहीं हुई, सरल रूप में भावी पीढ़ियों ने इसे अपना लिया। हिन्दी को हमें जीवंत रखना है तो सरलीकरण के नए प्रयोगों से कतराना नहीं बल्कि उन्हें स्वीकारना होगा। तभी हम आज की हिन्दी को सामयिक बनाकर भाषा की जीवंतता में वृद्धि कर सकते हैं।

प्रश्न : भारत से दूर हुओं को भारतीय संस्कृति, अपनों का प्यार या मिट्टी की खुशबू, इनमें से कौन और कैसे बाँध कर रखता है?

उत्तर : जो आत्मीयता रग-रग में है, बचपन की यादों में है वह तो मन में सदा के लिए अंकित है ही सुधा जी, लेकिन भारत से दूर रहते हुए हम भारत के और नज़दीक हो गए हैं, यह बात मैं, आप और हर वह व्यक्ति जानता है जो भारत से बाहर किसी अन्य देश में रह रहा है। जब हम यहाँ आए थे तब टेकनालॉजी इतनी उन्नत नहीं थी जितनी आज है। तब हमें फ़ोन कार्ड और भारत से एसटीडी जैसे कॉल पर निर्भर रहना पड़ता था लेकिन आज तो ये हाल हैं कि छोटी-छोटी बातों में रिश्तेदारों-परिचितों का चेहरा फ़ोन पर फेस टाइम और व्हाट्सऐप के जरिए आ जाता है। यह सच है कि लंबी दूरी

के रिश्तों में वह गर्माहट नहीं रहती लेकिन यह भी सच है कि भारत में ही आमने-सामने रह रहे दो भाइयों के रिश्ते भी अब वैसे ही हैं, जैसे हम लंबी दूरी वालों के। जितने सख़्त खान-पान को लेकर भारत में थे उतने ही आज यहाँ भी हैं। किसी का दबाव नहीं है, कोई मजबूरी नहीं है पर बस जो है सो है। यह देश हमें बहुत दे रहा है पर जननी जन्मभूमि 'भारत तो भारत है'। कहते हैं न कि इंसान बूढ़ा भी हो जाता है तो भी अपना बचपन नहीं भूल पाता। तब स्मृति में सिर्फ रिश्ते ही नहीं होते वह घर भी होता है जहाँ माता-पिता, भाई-बहनों के साथ शरारतें की थीं, वे नदी किनारे और पेड़ों की छाँव भी होती हैं जहाँ मित्रों की मस्ती भरी बातों के साथ कई सपने देखे थे और वे गलियाँ भी होती हैं जहाँ से दौड़ते-भागते, गिरते-पड़ते उठे थे फिर से न गिरने के लिए। वे स्मृतियाँ यादों की धरोहर हैं जो यदा-कदा नहीं सदा ज़ेहन में बसी रहती हैं।

प्रश्न : प्रवास आपकी रचनाशीलता में क्या स्थान रखता है? प्रवासवास ने आपको और आपकी सृजनात्मकता को कितना प्रभावित किया है?

उत्तर : क्या कहूँ सुधा जी, ''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान...'' की तर्ज में अपनी मिट्टी को याद करते हुए दिल की आहें काग़ज़ पर सीधे उतर आती हैं। बावजूद इस भावुकता के, प्रवास में रचनाशीलता तभी सक्रिय हो पाती है जब इंसान परिवार सहित आर्थिक सुरक्षा के घेरे में आ जाए। हर प्रवासी को इस स्थिति में आने के लिए कुछ वर्ष तो झोंकने ही पड़ते हैं, यहाँ आकर बसने वाली पहली पीढ़ी इसे सहती ही है। ''भूखे भजन न होय गोपाला'', सबसे पहले परिवार की चिंता, खासतौर से बच्चों की चिंता, अपने लिए काम खोजने की चिंता और इन सबसे निपटने के बाद ही रचनात्मकता का नंबर आता है और एक बार जब आ जाए तो पूरी तरह से उसमें लीन होने का आनंद मिलता है। मैं भी कोई अपवाद नहीं हूँ, यह कहने में कोई झिझक नहीं कि शुरुआती वर्षों में संघर्ष करके आज जब सब अपने-अपने मुकाम पर पहुँचे हैं तो लेखन कार्य को कर पा रही हूँ। घर से दूर रहने का दर्द लेखन को अधिक संवेदनात्मक बनाता है। मन की वह

कचोट जब काग़ज़ पर उतरती है तो दिल को बेहद सुकून देती है। शायद यही एक वजह है कि यहाँ के काल और परिवेश से लिए गए कथातंतुओं में भी भारतीयता इस कदर घुली-मिली रहती है कि उसकी गहराइयाँ यहाँ-वहाँ झलक ही जाती हैं। हाँ, एक बात अवश्य कहना चाहूँगी कि लिखने के लिए अब आसपास कई नए बिन्दु हैं, कई नए पात्र हैं, साथ ही कई नए कथ्य भी हैं। कैनवास व्यापक हुआ है तो निःसंदेह, सृजनात्मकता बढ़ी है, प्रतियोगिता भी बढ़ी है और इसके चलते रचनाओं का स्तर भी बढ़ा है। भारत के साथ-साथ विश्व के अनेक भागों के लेखकों और रचनाकारों को पढ़ने-देखने के अधिक अवसर भी उपलब्ध हुए हैं।

प्रश्न : पिछले तीन वर्षों में हंसा दीप के उपन्यास, कहानी संग्रह धड़ाधड़ प्रकाशित हुए हैं, वर्षों साहित्यिक ख़ामोशी और अब धड़ल्ले से ख़ामोशी को तोड़ने के कारण और प्रेरणा क्या है? जानना चाहती हूँ।

उत्तर : सुधाजी, आपका यह विनोदी-चंचल प्रश्न मेरे चेहरे पर एक बड़ी-चौड़ी-सी मुस्कान लाया है। आपका प्रश्न जितना मज़ेदार है उतना ही जवाब भी मज़ेदार हो, कोशिश करती हूँ। सच कहूँ सुधा जी, धड़ाधड़ पुस्तकें छप सकती हैं, पत्रिकाओं में छपा जा सकता है लेकिन धड़ाधड़ लिखा तो नहीं जा सकता न, लेखन को तो समय का दबाव स्वीकार ही नहीं। वह तो अपनी गति से कटते-पीटते ही आगे बढ़ पाता है। हालाँकि प्रकाशन माध्यमों के प्रति मेरी खामोशी थी, 2007 में कहानी संग्रह आया, उसके दस साल के अंतराल के बाद 2017 में उपन्यास लेकिन लेखन में खामोशी कभी रही नहीं। कई कथ्य कागज़ पर उकेर कर रख दिए जाते थे, कभी समय की कमी से तो कभी हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में न भेज पाने की वजह से। लेकिन जैसे-जैसे अपनी ज़िम्मेदारियों का बोझ हल्का हुआ तो वे सारे कथ्य पूर्णता को प्राप्त हो रहे हैं। नींव तैयार मिल जाए तो भवन जल्दी बन ही जाता है। बस यही हुआ मेरे साथ भी। कागज़ों के पुलिंदे फिनिशिंग टच के साथ टाइप हो रहे हैं और प्रकाशित हो रहे हैं। फिर अपने अंतर्मुखी-संकोची स्वभाव के कारण मैं सोशल मीडिया से भी सालों दूर रही, कुछ महीनों पहले ही फेसबुक पर आई हूँ शायद इसीलिए ऐसा लगता है कि अचानक कहाँ से अवतरित हुई है यह लेखिका। इसके लिए मैं ही ज़िम्मेदार हूँ। कई कार्यक्रमों में जाती तो हूँ लेकिन हर कार्यक्रम में माइक से दूर रहती हूँ, बस सबको सुनती हूँ। किसी को खबर नहीं हो पाती कि मैं भी लेखक हूँ। इस चुप्पी का फायदा-नुकसान जो भी हो वह गणित का मसला है पर स्वभाव तो स्वभाव ही है।

और फिर मेरे लिए आप सभी प्रेरणा स्रोत हैं। सुषम बेदी जी, तेजेंद्र शर्मा जी व आपको पढ़ा है, कई प्रवासी और भारतीय लेखकों को नियमित पढ़ती हूँ। महसूस करती हूँ कि काफी लिखा जा रहा है और बहुत अच्छा लिखा जा रहा है। आज जब इतने समृद्ध साहित्यकारों के समयकाल में अपनी उपस्थिति दर्ज करानी है तो पढ़ने-लिखने की गति सहज ही प्रेरित हो रही है।

प्रश्न : उपन्यास या कहानी लिखते समय आप किस मानसिकता से गुज़रती हैं, पाठकों के साथ-साथ मैं भी हमेशा जानना चाहती हूँ।

उत्तर : रोज़मर्रा की प्राथमिकताओं के पश्चात् ही लेखन का नंबर आता है शायद इसीलिए लिखते समय मेरी मानसिकता बेहद शांत होती है। लिखने में मुझे कभी कोई तनाव नहीं होता। तनाव और लेखन दो अलग-अलग दिशाएँ हैं अन्यथा लिखने का आनंद ही क्या। स्वयं से बस एक ही अपेक्षा होती है कि पढ़कर मुझे अच्छा लगे, इतना अच्छा कि बार-बार पढ़ने का मन हो तभी वह रचना कहीं बाहर जाती है वरना अपूर्ण

रचनाओं के फोल्डर में पड़ी रहती है। यह कहानी के पात्रों के ऊपर भी रहता है कि वे मुझे कितना उकसाते हैं और उन्हें अपनी बात कहने की कितनी जल्दी है। एक कहानी पूरी करने के बाद मैं उसे रिकॉर्ड करके सुनती हूँ। सुनने में मुझे कुछ वाक्य ठीक करने की ज़रूरत महसूस होती है ताकि प्रवाह बना रहे। उपन्यास में एक कथ्य, व्यापक कहानी के रुप में आकार लेता है, योजना तो होती है मस्तिष्क में, पर कहानी के पात्र तो योजनानुसार नहीं चलते। कई बार इतने ज़िद्दी हो जाते हैं कि एक जगह अटक जाते हैं तो महीनों तक आगे ही नहीं बढ़ते। मैं सोचती हूँ कि हर रचनाकार के साथ ऐसा होता होगा चाहे वह चित्रकार हो, शिल्पकार हो, या फिर शब्दकार।

प्रश्न : क्या भारत का स्त्रीविमर्श विदेशों के नारीवाद से प्रभावित है? भारतीय स्त्रीविमर्श और पश्चिमी स्त्रीविमर्श में आप क्या अन्तर देखती हैं? वैश्विक परिदृश्य में स्त्रियों की स्थिति में भारतीय स्त्रियों की तुलना में क्या समानता या विभेद है?

उत्तर : आपको यह जानकर ताज्जुब होगा सुधा जी कि स्त्री विमर्श, नारीवाद, स्त्री स्वतंत्रता, या भेद-विभेद इन सब बातों से मैं सहमत नहीं हो पाती हूँ। इसके कई कारण हैं जो मेरी बात को पुख़्ता आधार देते हैं। सबसे पहली बात तो मैं आपके एक संपादकीय - महिला ही दूसरी महिला को पहले चोट पहुँचाती है - का संदर्भ देकर कहना चाहती हूँ कि मैं शत प्रतिशत इस बात से सहमत हूँ और कई उदाहरण हैं ऐसे जहाँ घर में, समाज में और देश में, नारी ने नारी को प्रताड़ित किया है, तो हमारा यह रोना-गाना बेमानी है। फिर चाहे पितृ-सत्तात्मकता की बात को लेकर हो या फिर पुरुषों के द्वारा किए जा रहे अत्याचारों को लेकर। मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं बलात्कार या यौन शौषण या फिर पति द्वारा की जा रही प्रताड़ना का समर्थन नहीं कर रही। नि:संदेह ये अपराध हैं और अपराधी पुरुषों को एक अलग श्रेणी में रखा जाना चाहिए। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो आज न तो हम बाल विवाह की समस्या से जूझ रहे हैं, न सती प्रथा से, न दहेज प्रथा से, न ही ऐसी किसी प्रथा से जहाँ मजबूरी में लड़की को वह करना पड़ता है जो वह नहीं करना चाहती। विश्व के

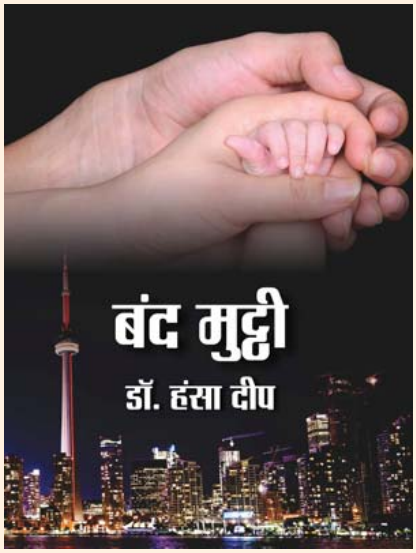

अत्यधिक गरीब और पिछड़े इलाके से लेकर विश्व के अत्यधिक धनी और विकसित इलाके में रहकर मैंने यह अनुभव किया है कि स्त्री बहुत शक्तिशाली है। 'नो मीन्स नो', 'मीटू' जैसे शब्दों ने तो हमें अब ताकत दी है लेकिन वर्षों पहले भी झाँसी की रानी थी, आज भी कोई कमी नहीं हैं झाँसी की रानियों की। फ़र्क सिर्फ इतना है कि लड़ने के लिए उनके सामने फिरंगी नहीं हैं, उनके अपने हैं और वे खुद्दारी से लड़ रही हैं। हम सब खुली आँखों से देख रहे हैं कि आज की महिलाएँ पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं।

भारतीय स्त्री और पश्चिमी स्त्री के संदर्भ में मैं एक ही बात कहना चाहती हूँ कि दोनों के क्षेत्र अलग हैं पर मूलभूत मानसिकता वही है। मसलन, आज के भारत की बात न करूँ तो भी आज से साठ साल पहले भी, जिस घर में मैंने जन्म लिया वहाँ भी पुरुष सत्ता तो थी पर सारे अधिकार तो जीजी (माँ) के पास ही थे। वे मना कर दें तो मजाल है कि कोई कदम उठा लिया जाए। घूँघट डालकर दुकान का काम सँभालती थीं, बीच में जाकर दाल चढ़ा आती थीं, गल्ले पर बैठकर सब्जी सुधारती थीं और ग्राहक को भी निपटा देती थीं। जब मैं ससुराल गई तो वहाँ बाईसा (सासूमाँ) थीं जिनसे ''कौन सी कमीज पहनूँ'' पूछकर ही ससुरजी कमीज़ पहनते थे, तो ज़ाहिर है कि शेष बड़े मुद्दों पर भी उन्हीं का दबदबा था। उनके पाँचों बेटे और एक बेटी उनके कहे को पत्थर की लकीर मानते थे। मान भी लें कि यह हमारे घरों में था पर यकीन मानिए कि एक आदिवासी युवती भी जो उस ज़माने में हमारे घर काम करती थी, वह भीलनी दीतू भी आए दिन शराब पीए हुए अपने पति की पिटाई कर देती थी और फिर इसलिए रोती थी कि ''वह ऐसा काम करता है कि मुझे उसे मारना पड़ता है।''

और फिर आज की बात करते हुए विदेश में पली अपनी दोनों बेटियों को देखती हूँ तब पचास-साठ साल पहले की भारतीय नारियाँ 'जीजी' और 'बाईसा' के साथ इन दो विदेशी नारियों की तुलना सहज ही एक खाका सामने रखती है। दोनों बेटियाँ अपने घर में किचन से लेकर कार के टायर बदलना हो या टैक्स बनाना हो या फिर हॉस्पीटल जाकर एक डॉक्टर और बैंकर की ड्यूटी भी पूरी करनी हो, सब कुछ विशेषज्ञता के साथ करती हैं। एक नहीं हज़ारों काम, यह सब वे कैसे कर पातीं अगर अपने साथी पति से उनकी आपसी समझ, साथ-साथ बढ़ने की नहीं होती। नारी-पुरुष की इस समानता के उदाहरण बहुलता से हमारे आसपास मिल जाएँगे। बेशक, तब यह धारणा बलवती होती है कि किसी भी देश में और किसी भी परिवेश में, नारी अगर ठान ले, तो स्वयं को एक पिलर की तरह मज़बूत बना लेती है, जैसे आपने, मैंने या हर उस महिला ने किया है जो अपने पैरों पर खड़ी है और रचनात्मक कार्यों से स्वयं को ऊर्जित कर रही है।

प्रश्न : क्या 'लेखन' से स्त्री, स्वतंत्रता अर्जन की लड़ाई लड़ सकती है? आज की स्त्री किन समस्याओं से मुक्ति चाहती है?

उत्तर : सुधा जी, यदि आपका आशय स्त्री लेखन से है तो मैं यह स्वीकार नहीं कर पाती कि लेखन को हम वर्गीकृत करें। स्त्री लेखन, प्रवासी लेखन, और प्रवासी महिला लेखन जैसे वर्गीकरण से क्या एक और, एक और, आरक्षण की माँग नहीं कर रहे हम। रचनाकर्म और रचनाकार साहित्य की धूरी हैं, और उनका हिन्दी में लेखन हिन्दी साहित्य है व इसी के तले हम सारे रचनाकार रहें। भारतीय नारी ताकत हो या विदेशी नारी ताकत, अब तो सब परदे से बाहर आकर पूरी ताकत से काम कर रही हैं फिर हम किस समस्या और किस परतंत्रता की बात कर रहे हैं। आर्थिक रूप से पति पर निर्भर होकर भी मेरी माँ, सासूमाँ अपने घर की बॉस थीं तो आज तो तकरीबन हर

लड़की अपने पैरों पर खड़ी हो रही है। आज की स्त्री इतनी सक्षम हो गई है कि स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने के लिए आगे आ रही है। चाहे ठेठ देहात हो या महानगर, महिला स्वयं जागरुक होकर, अपने पंखों से उड़ान भरने के लिए खुद ही आकाश में छलाँग लगाने को तैयार हो रही है।

शायद इसी कारण मेरे नारी पात्र असहाय नहीं होते, रोते-गाते बैठे नहीं रहते, जो करते हैं अपने साहस और कर्मठता से करते हैं। हाँ, कहीं-कहीं पुरुषों पर हावी होते महिला पात्र भी हैं जो मुख्यधारा से अलग अपनी सच्चाई को उजागर करने का दु:साहस करते हैं। वैसे भी लेखक जो लिखता है वह किसी वाद के घेरे में बंधकर नहीं लिखता, अपने आसपास जो देखता है वही लिखता है, उसकी सीधी-सादी रिपोर्टिंग न करके उन पात्रों को अपने भीतर जीने की आज़ादी दे कर, वह अपनी रचना को पूर्णता देता है। आज अमेरिका या कैनेडा में ही नहीं, भारत में भी कामकाजी दंपत्ति एक साथ किचन में काम करके एक साथ बच्चों का, घर का दायित्व निर्वहन कर रहे हैं। जीवन के अलग-अलग पड़ावों पर, अलग-अलग देशों के अनुभवों से मैंने महसूस किया है कि भारतीय स्त्री अधिक मज़बूत है, अधिक मेहनती है, अधिक समझदार व होशियार भी है। इसका सबसे बड़ा कारण है उसकी कर्तव्यपरायणता एवं वह संस्कृति जिसमें उसने साँसें ली हैं। उसके कंधे इतने मज़बूत हैं कि घर और बाहर दोनों जगह का काम करके घर को, समाज को और देश को सँवारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है।

हमारे आलोचक इसे देख भी रहे हैं, लिख भी रहे हैं, समाज में स्त्री-पुरुष दोनों की अहमियत है जिसे पितृसत्ता या मातृसत्ता जैसे शब्दों से कोई विशेषाधिकार का तमगा नहीं मिल जाएगा।

प्रश्न : बाज़ारवाद ने किस तरह से हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है? आधुनिक युग में बाज़ारवाद हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए क्या ज़रूरी नहीं?

उत्तर : बिल्कुल सुधा जी, मैं यह मानती हूँ कि बाज़ारवाद एक आवश्यकता है हिन्दी के लिए, हिन्दी साहित्य के लिए और उत्कृष्ट साहित्य सृजन के लिए। प्रतियोगिता होगी तो गुणवत्ता बढ़ेगी, माँग बढ़ेगी और पूर्ति उसके अनुकूल होगी। अच्छा उत्पाद लंबे समय तक रहता है, कालातीत रहता है, साहित्यकारों के साथ भी यही है। हर रचना उत्कृष्ट नहीं होती पर एक रचना भी उत्कृष्ट है तो वह रचनाकार अच्छे साहित्यकारों में अपना नाम शुमार कर लेगा। बड़ा मुद्दा यह है कि आज के बाज़ार में हिन्दी की माँग ही नहीं है तो हिन्दी का और हिन्दी साहित्य का बाज़ार बनेगा कैसे। सिर्फ हिन्दी फिल्में और हिन्दी टीवी कब तक इस ज़िम्मेदारी को ढो पाएँगे। हिन्दी सालों से अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही है। इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता यदि कोई है तो वह यह कि पहले हिन्दी, एक भाषा के रूप में अपनी माँग बनाए। आज की युवा पीढ़ी की हिन्दी के प्रति उदासीनता इसी बात को सामने लाती है कि उनका भविष्य बनाने में हिन्दी की अहम भूमिका नहीं है। हमारा सरल-सा उत्तर होता है कि ''सब अंग्रेज़ी के पीछे दीवाने हैं।'' यहाँ दीवानगी का सही कारण बाज़ार में माँग और उनके भविष्य से जुड़ा है। हमारी पीढ़ी हिन्दी को मान दे रही है, क्या आगे आने वाली पीढ़ी ऐसा कर पाएगी! इन दिनों यह एक खास चर्चा है, हिन्दी पठन और लेखन को लेकर समान चिन्ता है, भारत हो या भारत के बाहर, हर ओर एक सवाल है कि हिन्दी के पाठक कहाँ, हिन्दी की पुस्तकों की बिक्री क्यों नहीं, हिन्दी पुस्तकें छपें तो पढ़ेगा कौन, आदि आदि। हिन्दी का बाज़ार बने तो नि:संदेह हिन्दी साहित्य के लिए भी बाज़ारवाद अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा पाएगा।

प्रश्न : आजकल क्या लिख रही हैं?

उत्तर : सुधा जी, बहुत कुछ लिख रही हूँ पर जब तक पूर्ण न हो तब तक कुछ भी नहीं। इन दिनों फॉल सत्र चल रहा है, कक्षाएँ-परीक्षाएँ व्यस्त रखती हैं। आने-जाने में, रास्ते में, पढ़ा जा रहा है। कुछ अच्छी किताबें कुछ अच्छी पत्रिकाएँ। लघु पत्रिकाएँ भी बहुत अच्छी आ रही हैं। कई संपादक बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। आपकी उपलब्धियों के लिए दिल से बधाई, इस बातचीत के लिए आपका धन्यवाद और असीम शुभकामनाएँ।

***

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : विभोम स्वर

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2019

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

दुर्गा

विवेक मिश्र

झांसी में दशहरे की धूम, यूँ तो हर साल ही होती थी, पर इस बार इसका इंतज़ार नौ साल के ज्ञान को सबसे ज़्यादा था। इतनी श्रद्धा उसके मन में पहले कभी नहीं उमड़ी थी। नवरात्र के नौ के नौ दिन, बिना नागा, वह दुर्गा के दर्शन करने जाता रहा। ये दिन कैसे बीते थे, ज्ञान ही जानता था। आख़िरकार आज दशहरा आ ही गया था।

आज वह शाम के इंतज़ार में सुबह से ही बहुत बेचैन था, पर दिन कटने का नाम ही नहीं ले रहा था। वह सुबह से, गली के नुक्कड़ पर बैठा, लक्ष्मी मंदिर को जाती चौंड़ी सड़क को ताक रहा था, जिस पर से शाम होते ही शहर भर में स्थापित दुर्गा की मूर्तियाँ विसर्जन के लिए चल पड़ती थीं। हज़ारों की भीड़ सड़क के किनारे जमा हो जाती, लोग घरों की छतों पर, दुकानों के आगे बढ़ाए गए दासों पर, दोपहर बाद से ही दुर्गा की शोभायात्रा देखने के लिए जमकर बैठ जाते। दर्शन के इंतज़ार में बैठे लोग खाते-बतियाते और ढेर सारा कचरा सड़क पर बिखर जाता, जैसे-जैसे शाम होने लगती, गहमा-गहमी और बढ़ जाती। यह भीड़-भड़क्का लगभग वैसा ही होता, जैसा कि ताजिए निकलने पर हुआ करता, फ़र्क सिर्फ़ हिन्दू-मुसलमान का होता, अन्यथा सब एक जैसा, वही भीड़, वही उन्माद, वही कचरा और अन्त में कीचड़ से लबालब लक्ष्मी तालाब, जिसमें विसर्जित होती दुर्गा और उसी में सिराए जाते ताजिए।

ताजियों और दुर्गा की मूर्तियों की संख्या लगभग समान अनुपात में, हर साल बढ़ती और छोटा पड़ता जाता, लक्ष्मी तालाब।

आज ज्ञान की आतुरता समय के साथ बढ़ती जा रही थी। वह अम्मा से बार-बार कहता, सड़क पर जाकर दुर्गा देखने के लिए। अम्मा त्यौहार के समय आम दिनों से ज़्यादा व्यस्त होतीं और गुस्से से झिड़क देतीं ''क्या करेगा अभी से जाके, पाँच-साढ़े पाँच से पहले नहीं निकलती दुर्गा जी, अभी बैठा रै चुपचाप और सुन सड़क पर खड़े होकर देखियो, कहीं उनके पीछे-पीछे न चले जइयौ, समझे''।

अम्मा की बात सुन ज्ञान कुछ अनमस्क-सा बाहर चबूतरे पर, हाथ बाँधकर बैठ जाता और गली में सिमटती धूप की कालीन से समय का अंदाज़ा लगाने लगता। उसके मन में

विवेक मिश्र, 123-सी, पाकेट-सी, मयूर विहार, फेज़-2, दिल्ली -91
मोबाइल: 9810853128
ई-मेल: vivek_space@yahoo.com

बार-बार सुनीता की कही बात बिजली-सी कौंधती। वह मन ही मन उसे दोहराता और, और भी ज़्यादा व्याकुल हो उठता। पिछले साल सुनीता के पिताजी ने सुनीता को नई साईकल लाकर दी थी, पर यह सब यूँ ही नहीं हुआ था। सुनीता ने नौ दिन शक्ति स्वरूपा दुर्गा के दर्शन किए और दुर्गा विसर्जन के दिन मुहल्ले में बैठी दुर्गा की शोभायात्रा के साथ लक्ष्मी तालाब तक जा पहुँची और जब तालाब में दुर्गा जी को विसर्जित किया गया, तो दुर्गा धीरे-धीरे पानी में उतरती गईं, जब डूबती दुर्गा का केवल सिर ही बाहर रह गया, तब सुनीता ने हाथ जोड़ कर दुर्गा से वरदान माँगा, जो उसके घर लौटते ही फलित हुआ। नई साईकिल के रूप में। सुनीता की लाल चमकती साईकल मुहल्ले भर के बच्चों के लिए, दुर्गा भक्ति से सुनीता को मिला वरदान थी।

अब ज्ञान के मन में दुर्गा माता का जयकारा गूँजने लगा। वह भागकर गया और अम्मा के सामने खड़ा हो गया। अम्मा समझ गईं, अब वह नहीं रुकेगा। उन्होंने समय को आवाज़ लगाई, समय ग्यारह साल का था, ज्ञान का बड़ा भाई। दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर चौड़ी सड़क पर जा पहुँचे। सड़क के दोनों किनारों पर आदमियों की क़तारों से, एक दीवार-सी बन गई थी, जिससे आगे पहुँचकर बच्चों का दुर्गा देख पाना मुश्किल था। आसमान में फूल-गुलाल, बताशे फेंके जा रहे थे। ठेलों पर लदे, बड़े-बड़े नगाड़े, ज़ोर-ज़ोर से पीटे जा रहे थे और साथ में गूँज रहा था दुर्गा माँ का जयकारा।अनायास ही इन दिनों में पूरा शहर धार्मिक हो उठता था। गली, मुहल्लों, बाज़ारों में लाउडस्पीकर सड़क खोदकर लगाई गई बल्लियों पर लटक जाते थे। लाल, नीली, पीली झंडियाँ सुतली पर चिपकाकर बल्लियों और बिजली के खम्बों से बाँध दी जातीं।

हरे रंग की झंडियों से परहेज़ रहता। वह केवल मुसलमानों के त्योहारों में दिखती। किसी ऊँची बिल्डिंग से देखने पर, लगता, जैसे अचानक आई बरसात में ज़मीन से चींटियाँ निकलकर इधर-उधर भाग रहीं हों।

हज़ारों लोगों की भीड़ जो सड़कों पर उमड़ती, उनमें सभी लोग धार्मिक हों, ऐसा

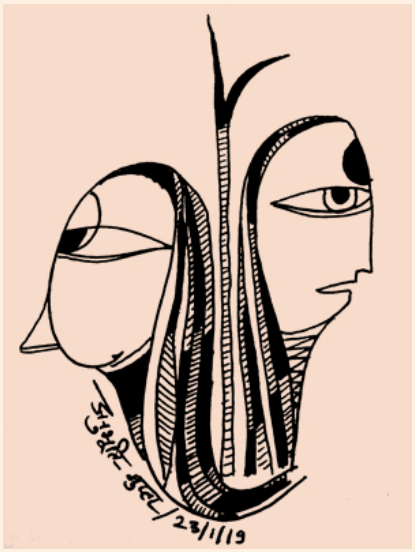

नहीं लगता क्योंकि धक्का-मुक्की में अक्सर ही कई लोगों की जेब कट जाती, महिलाओं के गले में पड़ी सोने की चेनें खिंच जातीं, कई बच्चे खो जाते, कई ख़ाली घरों में चोरी हो जाती। कुछ प्रेमी युगल उस समय का एवं ख़ाली घरों का अन्यथा प्रयोग करते, जब सारा शहर दुर्गा का जयकारा लगा रहा होता। कुछ लोग जिनकी आस्था शायद थोड़ी कम होती, इस धक्का-मुक्की से तंग आकर, बिना दुर्गा के दर्शन किए ही घर लौट आते। कुछ इसलिए ही जाते, कि वहाँ खूब भब्भड़ मची रहती और वे वहाँ मची रेलम-पेल का पूरा मज़ा लेते। महिलाओं से जैसे चाहे टकराते और दाँत-निपोर कर इधर-उधर हो जाते। कुछ लोगों का धक्का सही जगह लग जाता और वह भीड़ में ऐसे सैट्ल हो जाते, मानों सारे जीवन के सपने यहीं देख डालेंगे।

लोगों के झुण्ड दुर्गा को काँधों पर उठाए निकलते, कुछ लोग भव्य देवी की मूर्ति को ट्रकों पर ले जाते, उनके पीछे-पीछे कई लोग नाचते-गाते और जयकारा लगाते हुए चलते। कुछ दुकानदार अपनी दुकान से ही दुर्गा पर सिक्के उछाल देते, कुछ सिक्के प्रार्थना सहित दुर्गा के चरणों में गिरते, कुछ नीचे बिखर जाते। उन सिक्कों को बटोरने के लिए, एक अलग तन्त्र काम करता, भूखे, चिथड़े लटकाए, मैले-कुचैले बच्चों का, जो सैंकड़ों पैरों के नीचे कुचलने और ठोकरें खाने पर भी हर मूर्ति के नीचे से अठन्नी, चवन्नी उठा लेते। वह धार्मिक न होकर भी इस विशेष धार्मिक पर्व का, बेसब्री से इंतज़ार करते। कई व्यापारी भिखारियों में हलवा-पूड़ी बटवाते, सो दुर्गा के साथ भिखारी, सेठों का भी जयकारा करते। कई प्रकार के वाद्य यन्त्र, घिसे-पिटे रिकार्ड, जयकारों की गूँज, भीड़ की चिल्लपों, रोते-चीख़ते बच्चे, एक अजीब-सा कोलाहल, जो लाखों झींगुरों के एक साथ बोलने से बने शोर जैसा 'झँइंय्म- झँइंय्म' कानों में बजने लगता।

इसी सब के बीच ज्ञान, भीड़ में सिर घुसाकर आदमियों से बनी दीवार में छेद करने की कोशिश कर रहा था, पर ऐसा करने पर हरेक बार असफ़ल ही रहता और आगे शायद भीड़ कम हो यह सोचकर आगे बढ़ जाता। कई बार भीड़ में दम घुटने जैसी हालत में पहुँचने पर भी वह दुर्गा के दर्शन करना चाहता और दुर्गा की वह मूर्ति ढूँढ़ता, जिसके आगे नौ दिनों से, वह प्रार्थना कर रहा था। नन्हें ज्ञान के मन-मस्तिष्क में अभी ज्ञान की कोंपलें नहीं फूटी थीं, पर दुर्गा के दर्शन को उमड़ी भीड़ देखकर उसके मन में आस्था की जड़े गहरी हो गई थीं। अक्सर हम वही सच मान बैठते हैं, जो अधिकता में हमें अपने चारों ओर फैला दिखाई देता है।

कई बार बहुमत के साथ होकर, अविवेकी होने से, आत्मज्ञान जाता रहता है। सामूहिक उन्माद का वशीकरण, सोचने समझने की शक्ति क्षीण कर देता है और आस्थाएँ अन्धविश्वासों में बदल जाती हैं। यह सब यकायक नहीं होता बल्कि हर व्यक्तित्व पर सिलेसिलेवार माँ के गर्भ से वर्तमान तक सुनी, देखी और अनुभव की जा सकीं घटनाओं की फिल्म चढ़ी होती है।

जैसे-जैसे समय बीतता, दुर्गा की मूर्ति ले जा रहे भक्त पीछे रह गई मूर्तियों को लेकर लक्ष्मी तालाब की ओर बड़ी तेज़ी से भागने लगते। विसर्जन स्थल पर अब रणभूमि जैसे हालात हो जाते। देवी के भक्तों के कई अलग-अलग गुट बन जाते। पहले मेरी, नहीं पहले मेरी की खींचातानी मच जाती। कई बार तो कट्टे-बंदूक चलने की नौबत तक आ जाती।

सौ-ढेड़ सौ मूर्तियाँ निगल चुकने के बाद तालाब का पेट, गले तक भर जाता और बाद में विसर्जित की गई मूर्तियाँ उसके गले में अटक जातीं। आधी पानी में, आधी हवा में। साढ़े छः बजते-बजते शहर के दूसरे हिस्से में बने क़िले के मैदान में राम की सेना

पहुँच जाती और रावण का राम से काठ की तलवारें टकराकर घनघोर युद्ध होता। रावण परास्त होता और फिर शुरू होता आतिशबाज़ी का मुकाबला। पूरा आसमान रोशनी से भर जाता और फिर धुएँ से। साढ़े छः बजते ही सड़कों के किनारे खड़ी भीड़ बाकी बची रह गई दुर्गा की मूर्तियों को छोड़कर रावण का जलना देखने के लिए, क़िले के मैदान की तरफ भाग खड़ी होती।

पर भीड़ को काटता हुआ ज्ञान अभी भी तालाब की ओर ही बढ़ रहा था। वह दुर्गा को देखना चाहता था। उसे अम्मा की कही बात याद आ रही थी, 'भगवान् अपने भक्तों की परीक्षा लेता है, मुसीबत में ईश्वर का ही सहारा होता है'। ज्ञान के मन में अम्मा की बातें गूँज रही थीं। वह अब भीड़ को चीरकर दुर्गा के दर्शन की कोशिश नहीं कर रहा था, बल्कि भीड़ से अलग सड़क के किनारे-किनारे लक्ष्मी तालाब की ओर चलने लगा था। वह किसी तरह लक्ष्मी तालाब पहुँच ही जाता पर भीड़ दिशा बदलकर क़िले के मैदान में होने वाली आतिशबाजी देखने उलट पड़ी। नन्हें ज्ञान के मन में भी रावण जलने पर छूटने वाले पटाखों की ध्वनियाँ गूँजने लगीं, पर उसे तो लक्ष्मी तालाब पहुँचना था, सो वह दृढ़ निश्चय कर, दुर्गा में आस्था रख उसी ओर चल पड़ा। परन्तु इन दुर्गा के भक्तों को अनायास क्या हुआ? जो दुर्गा विसर्जन के बाद की जाने वाली आरती को बिना देखे ही, क़िले के मैदान की ओर भाग खड़े हुए, जहाँ आतिशबाजी का मुकाबला चल रहा था। ज्ञान नहीं समझ सका इन्हें क्या चाहिए भक्ति, ईश्वर, वरदान या सिर्फ़ भब्बड़-तमाशा!

कीचड़ और दल-दल में बदल चुके, लक्ष्मी तालाब में सूरज धीरे-धीरे उतरने की कोशिश कर रहा था और तालाब के चारों ओर एक सड़ाँध के साथ अँधेरा फैल रहा था। तालाब के उत्तर में बने काली मन्दिर में आरती होने लगी थी। भीड़ छूट गई थी और अपने पीछे ऐसा सन्नाटा छोड़ गई थी, जो विसर्जन के घमासान के बाद लक्ष्मी तालाब की दुर्दशा को माप रहा था। मन्दिर की घंटियों से उस सन्नाटे में एक कराह-सी तैर रही थी। यह कराह उस तालाब की थी या उसमें डूबी मूर्तियों की कहा नहीं जा सकता था।

उलट दिशा में भागती भीड़ से बचता, टकराता ज्ञान लक्ष्मी तालाब तक पहुँच गया था। तालाब के किनारे का उजाड़ विस्तार और वहाँ की ख़ामोशी डरा देने वाली थी। वह पहले थोड़े असमंजस में था, शायद वहाँ से लौट जाना चाहता था, पर मन में बसी वरदान की लालसा ने उसके निश्चय को दृढ़ता प्रदान की थी। तालाब के किनारे की ओर बढ़ते हुए, उसे एहसास हुआ था कि वह वहाँ अकेला रह गया था। बड़े भाई समय से उसका हाथ तो, बहुत पहले ही छूट चुका था।

ज्ञान तालाब के किनारे बैठकर फूल, गुलाल, बताशों और ढेर सारी पालीथिनों और मूर्तियों की मिट्टी से ढके, तालाब के पानी को देखने लगा। उसके मुहल्ले में स्थापित की गई दुर्गा तो पहले ही पानी में समा चुकी थीं, पर अभी भी अन्त में विसर्जित की गई दुर्गा की मूर्ति तालाब में खड़ी थी। दुर्गा का सिंह पानी में डूबा हुआ था, मात्र उसका जीभ बाहर निकाले सिर दिख रहा था। ज्ञान ने अपने चारों ओर देखा, वहाँ कोई न था। वह डर से काँप रहा था। उसे बहुत देर हो चुकी थी, परन्तु यहाँ तक आकर वह ख़ाली हाथ वापस नहीं लौटना चाहता था। दुर्गा, सिंह की पीठ पर खड़ी, एक हाथ में तलवार, एक में ढाल और दो हाथों से त्रिशूल थामे, राक्षस का वध कर रहीं थीं। ज्ञान को उस पल का इंतज़ार था, जब दुर्गा पानी में समाएँ और मात्र उनका शीश बाहर रह जाए, तभी उसे अपनी मनौती कहनी थी, तभी आधी पानी में डूबी एक मानव आकृति को, दुर्गा की मूर्ति की ओर बढ़ता देख ज्ञान के भीतर का भय और कई गुना बड़ गया। उस आकृति के समीप आने पर स्पष्ट हुआ कि कोई विसर्जित दुर्गा की मूर्तियों के वस्त्र, आभूषण, हथियार नोंच-नोंच कर इकट्ठे कर रहा था। आकृति उस अन्तिम मूर्ति की ओर भी बढ़ी। उसके बालों में गुलाल भरा था, माथे पर टीका लगा था और गले में लाल चुन्नी बँधी थी। उसने मूर्ति के पास पहुँचकर उसके हाथ से तलवार, ढाल, त्रिशूल खींचकर महिषासुर मर्दनी को निहत्था और असहाय कर दिया था। वह मूर्ति के वस्त्र, आभूषण नोचने लगा। ज्ञान का गला रुँध गया, आस्था टूटने लगी। उसके मन में, शक्तिस्वरूपा, चक्र-त्रिशूल धारिणी का तेज मलीन पड़ने लगा। वह वरदान माँगना भूल गया। वह धीरे-धीरे सुबकने लगा। उसके भीतर खड़ा भक्ति और आस्था का भवन पिघलकर आँसुओं में बह रहा था। एक पल को उसे लगा था कि वह आकृति दुर्गा माँ के कोप से भस्म हो जाएगी, पर वह तो सब कुछ उतारे लिए जा रहा था। ज्ञान का मन बिलख रहा था। वह धीरे-धीरे सुबकने लगा, तभी आकृति ने पलट कर उसे देखा और झल्लाया ''कौन है वे'' ... ''भाग यहाँ से''। भयभीत ज्ञान काँपते पैरों से पलटकर भागना चाहता था, पर उसके पैर जैसे दल-दल में धँस गए थे। वह किसी तरह आगे बढ़ने लगा, उसने वहाँ से जाते हुए दुर्गा को हाथ तक न जोड़े। तभी एक अनायास हुई ध्वनि से वह चौंक गया, ध्वनि में एक चीख़ भी मिली थी। स्वयं ही उसकी दृष्टि तालाब की ओर मुड़ गई, पानी में खड़ी दुर्गा की मूर्ति निर्वस्त्र होने से पहले ही पानी में गिर गई थी। वह आकृति कहीं दिखाई नहीं देती थी, पर कीचड़ में दुर्गा के नीचे दबकर कोई छटपटा रहा था। पानी से बाहर दुर्गा का सुनहला मुकुट और बड़ी-बड़ी आँखें चमक रही थीं। ज्ञान ने हाथ जोड़कर धरती पर माथा टेक दिया और मन में कुछ बुदबुदाने लगा। काली मन्दिर से आती घंटियों की ध्वनि रुक गई थी।

काली मन्दिर की ओर से, एक टार्च की हिलती हुई रोशनी के साथ कोई उसे पुकारता तालाब की ओर बढ़ रहा था। ज्ञान यह आवाज़ पहचानता था। वह भागकर पुकारने वाले से लिपट गया था। यह ज्ञान के पिताजी थे और उनके साथ में काली मन्दिर के पुजारी थे। पुजारी ने डूबती दुर्गा की ओर टार्च घुमाई और, हाथ जोड़े और साथ ही ज़ोर से दुर्गा माँ का जयकारा लगाया।

दूसरे दिन की सुबह ज्ञान के जीवन की नई सुबह थी। ज्ञान और समय, नई साईकिल पर सवार अपने आँगन में रखे तुलसी के गमले के चक्कर लगा रहे थे। पिताजी ज्ञान की दादी को तखत पर बैठे अख़बार पढ़कर सुना रहे थे। समाचार था- 'लक्ष्मी तालाब में डूबकर एक युवक की मौत। पुलिस ने बताया कि युवक ने नशे की हालत में, तालाब में डूबकर जान दी'।

***

एमी का प्रणय पथ

कादम्बरी मेहरा

अविनाश तो रोज़ कहते थे कि यह लैम्बेथ भी कोई पढ़ाने की जगह है। लंदन का सबसे पिछड़ा हुआ कोना जहाँ सब देशी -विदेशी आ बसते हैं दुनिया के हर शहर से। सबको लंदन में काम की तलाश रहती है। कौंसिल के फ्लैटों में अटे हुए परिवार। न इनका एक धर्म, न भाषा और न पढ़ने-लिखने की अभिलाषा। नित्य लाना और नित्य खाना। आशा तंग आ चुकी थी। उसकी क्लास में आधे बच्चे मंद विकास से पीड़ित थे। उनकी निजी समस्याएँ उनके मानसिक विकास को अवरुद्ध किए हुई थीं। उनकी रिपोर्टें बनाते-बनाते सारी शाम निकल जाती थी।

मगर बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा। शिक्षा विभाग ने एक प्रस्ताव रखा कि जो वरिष्ठ अध्यापिकाएँ अवकाश लेना चाहें ले सकती हैं। आशा ने तुरंत अर्ज़ी लगा दी और शांति से घर बैठ गई। पर काम की व्यस्तता भी एक लत होती है। कुछ महीनों के आराम के बाद घर में मन नहीं लगा। यदा-कदा चले जाने में क्या हर्ज है। अब एजेंसी की ओर से अक्सर कहीं न कहीं पढ़ाने चली जाती है।

उस दिन लैम्बेथ के सबसे बदनाम स्कूल में जाना पड़ा था तो माध्यमिक शिक्षा संस्थान जहाँ छठी कक्षा तक के बच्चे पढ़ते थे। मगर अक्सर अख़बार की सुर्ख़ियों में इन नन्हें कचिया बालकों के चाकू आदि रखने के समाचार छपते थे। या कोई ड्रग पैडलर स्कूल की चार दीवारी के पास पकड़े जाने का समाचार होता था। सुबह ट्रैफिक ख़राब था। ट्यूब ट्रेन बंद थी। आशा ने टैक्सी बुलाई। जैसे-तैसे समय से पहुँच गई। छठी कक्षा यानी 10 से 11 वर्ष तक के बच्चों को पढ़ाना था। उनकी अध्यापिका ने ही आशा का स्वागत किया।

''मेरा नाम एमी है। आज मुझको एक इंटरव्यू के लिए जाना है। इसलिए आपको आना पड़ा।''

''मैंने कभी छठी कक्षा को नहीं पढ़ाया। मेरे ग्राहक नन्हें मुन्ने रहे हैं। काफी शरारती हो जाते हैं सुना है।''

एमी आश्वासन देती हुई बोली ''वैसे तो यह स्कूल काफी सुर्ख़ियों में रहा है मगर अभी इसमें चारों तरफ टेली कैमरा लगवा दिए गए हैं। अत: पिछले दो वर्षों से शिष्टाचार की कोई समस्या नहीं है। मैं आख़िरी घंटे में आ जाऊँगी।''

दिन भर का काम आदि दिखाकर एमी चली गई। आशा घबरा रही थी मगर बच्चे बेहद शांत और अनुशासित थे। दिन भर कोई समस्या नहीं आई। आख़िरी घंटा इतिहास का था।

आशा ने कभी इतिहास नहीं पढ़ाया था मगर अपने ज्ञान भण्डार से खोज बीन कर उस

कादम्बरी मेहरा, 35 The Evenue, Cheam, Surrey, SM2 7QA, UK
मोबाइल:+447424736819
ई-मेल: kadamehra@googlemail.com

विषय को सलटाने में दिक्कत नहीं आई। 11 वर्ष की आयु में द्वितीय महायुद्ध के विषय में पढ़ाया जाता है। पाठ सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर लिखने के बाद बच्चों को नाज़ी चिह्न का चित्र खींचना था। और उसका तात्पर्य बताना था। लगभग सभी ने अपनी योग्यता अनुसार टेढ़ा मेढ़ा स्वास्तिक बनाया और उसका अर्थ लिखा। जातिवाद और नफ़रत।

आशा से नहीं रहा गया। अभी आधा घंटा बाकी था।

''बच्चों कॉपियाँ बंद कर दो। वैसे भी यह कहानी सुनाने का समय है मगर मुझको कुछ बतलाना है जो शायद तुम बहुत बड़े हो जाने पर भी नहीं पढ़ पाओगे।''

झटपट मेज़ें साफ़ हो गईं। बस्ते सिमट गए। सब उत्सुकता से सुनने को तैयार बैठ गए। आशा ने बोर्ड पर सीधा क्रॉस बनाया फिर उसकी भुजाओं को दाहिनी ओर मोड़कर लकीरें खींचीं। संग- संग उनकी व्याख्या भी चलती रही। कैसे दाहिना हाथ नक़्शे में पूर्व दिशा को दर्शाता है। पूर्व दिशा यानी उगता सूरज। अब इन भुजाओं को केंद्र से जोड़ दो। क्या चित्र बना?

एक साथ कई अचंभित स्वर निकले ''विंडमिल'' !

''ठीक। विंडमिल का काम क्या है?'' कई अटकलें। कई उत्तर।

''किस तरह चलता है ?''

''हवा चलने से घूमता है।''

''हाँ सही है। इसके घूमने से अंदर लगी चक्की चलने लगती है और उस चक्की से अनाज पीसा जाता था जिसकी हम ब्रेड बनाते हैं। यह चिह्न तमाम प्रकृति के अनवरत घूमते रहने का प्रतीक है। यह अनवरत गतिशीलता पूरे ब्रह्माण्ड में किसने बनाई ? हम उस शक्ति को नहीं जानते मगर वह हमसे ऊपर है यह सत्य है। उसको अनेक युगों में अनेक नाम अनेक विचारकों ने दिए। मगर यह अब विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि ब्रह्माण्ड स्वचालित है जिसे किसी इंसान ने नहीं बनाया है।''

''बहुत पहले से अनेक स्थानों के लोग इस चिह्न का प्रयोग करते आ रहे हैं। जो कुछ हमारे सामने घटा है उसके रिकॉर्ड को हम इतिहास कहते हैं। मगर बहुत कुछ जो हो चुका है, वह धरती के गर्भ में दब गया। पृथ्वी पर भूचाल आते हैं, नदियाँ अपना पंथ बदल लेती हैं। लगभग सभी मानव समूह नदियों के अंचल में अपने बस्तियाँ बनाते थे। जब बाढ़ें आती थीं और नदियाँ रास्ता बदलती थीं तब वह बस्तियाँ डूब जाती थीं। डेन्यूब नदी के अंचल में खुदाई के बाद एक ऐसी सभ्यता मिली, जिसके अवशेषों में यही चिह्न मिला। इससे हिटलर ने अपने आप को आर्य जाति का और सबसे प्राचीन संस्कृति का बताया।

''बच्चों जिस देश से मैं आई हूँ वहाँ यह चिह्न भगवान् का प्रतीक है। आर्य जाति के लोग वहीं रहते हैं। मेरे भी वंश को आर्य जाति का माना जाता है। हम सूरज की पूजा करते हैं। यह हमारा पवित्र चिह्न है। इसका नाम 'स्वस्तिका' हमारी भाषा का है। स्व माने खुद, या सेल्फ। अस्ति माने एक्सिस्ट। जो स्वयं है। हमारे पवित्र ग्रंथों में इसकी बहुत व्याख्या की गई है। मगर मोटे तौर पर मैं तुमको समझा रही हूँ। रोज़ अपना कोई भी काम शुरू करने से पहले मैं स्वास्तिक बनाती हूँ। इसमें मेरी प्रार्थना छुपी रहती है अच्छे दिन के लिए। हिटलर ने इसका प्रयोग किया मगर कुछ बदलाव के बाद। उसने इसको उल्टा घुमा दिया ताकि यह एक विशाल शिकारी पंजे के जैसा लगे और इसको इतना बुरा अर्थ दे डाला अपने कर्मो से, कि अब पश्चिम में उसे मिटाना संभव नहीं है मगर याद रखना यह आधी दुनिया में पूजित भी है।''

एक अकेली ताली की आवाज़ गूँज गई। एमी वापिस आ चुकी थी और ऑफिस में बैठी थी जहाँ टेली कैमरा से स्क्रीन पर अपनी क्लास को देख सकती थी। उसने यह पूरी व्याख्या सुनी। आशा ने बच्चों की ओर नज़र रखी हुई थी। वह मंत्र मुग्ध सुन रहे थे। कुछ ने प्रश्न करने शुरू किए कि तभी एमी आ गई। घर जाने की तैयारी एक मिलिट्री अंदाज़ में करवाई और घंटी बजते ही बच्चों ने कुर्सियाँ अपनी मेज़ों पर रख दीं। बाई बाई कहा और दिन ख़तम हो गया।

एमी ने आशा को गले लगा लिया। बोली उसने सारा लेक्चर सुना था और यह संज्ञान उसके लिए भी नया था।

''कितने दु:ख की बात है कि इतने गूढ़ अर्थ से भरे आदिकालीन चिह्न को हिटलर ने इस प्रकार दूषित किया। तुम पर क्या बीतती है मैं समझ सकती हूँ। इतिहास में बहुत कुछ अक्षम्य है।''

आशा कुछ झेंप गईं। एमी ने कहा,''चलो मैं तुमको अपनी कार में तुम्हारे घर छोड़ दूँ।''

''अरे नहीं मेरा घर शहर से बाहर की तरफ पड़ता है। दूर है।''

पर उसने फिर पूछा कि कहाँ है। बताने पर वह हँस पड़ी।''यकीन मानों मैं भी वहीं रहती हूँ। तुमसे दो गली छोड़कर।''

रास्ते में आशा ने पूछा,''कैसा रहा तुम्हारा इंटरव्यू।''

''ठीक था। सितम्बर में नई जगह शुरू करूँगी।''

चार बजते न बजते वह एमी की छोटी सी गोल्फ में बैठी थी। एमी ने लम्बा रूट चुना। इस वक्त मुख्य सड़कें स्कूल ट्रैफिक से फँसी होती हैं। फिर भी बीस मील का सफर। एक घंटा तो लग ही जाएगा। गाड़ी चलते हुए एमी कहने लगी कि उसने पहले कभी किसी भारतीय महिला से बातचीत नहीं की थी। आशा के बहुत ज्ञान वर्धक भाषण ने उसकी बहुत सी जिज्ञासाओं को जगा दिया है। क्या वह कुछ प्रश्न पूछ सकती है? आशा उससे कम से कम दुगुनी उम्र की थी। सहज आत्म विश्वास के साथ सहर्ष राजी हो गई। एमी ने पूछा

''क्या आपकी शादी हुई है।''

''हाँ। करीब 30 वर्ष पहले भारत में।''

''आपने खुद अपने पति को चुना होगा तभी इतने वर्ष काट लिए। आप खुश हो ?''

''हाँ क्यों नहीं। मगर मेरे पति का चुनाव मेरे माता-पिता ने किया था।''

''हाउ टिपिकल !'' एमी ने व्यंग्य से कहा। तिस पर आशा ने दृढ़ता से समझते हुए उसका खंडन किया।

''मुझे पता है तुम लोग हम भारतीयों की शादी को एक ड्रामा मानते हो। मगर ऐसा नहीं है। दरअसल बहुत कुछ जाँच परख कर शादियाँ होती हैं। तुम अभी जीवन में प्रवेश करने वाली हो। शादी की सबसे बड़ी कठिनाई शादी के बाद पता चलती है और वह है दो व्यक्तियों का आपसी फ़र्क। शादी से पहले सब सुनहरा लगता है। दो युवा अपनी पसंद ढूँढ़ते हुए एक हो जाने का निश्चय कर लेते हैं, मगर फर्क और असमानताएँ एक संग एक छत के नीचे रहते

हुए उजागर होती हैं। शादी का उल्हास, मिलन की ख़ुशी आदि सब धरी रह जाती है जब एक-एक करके तुम्हारी पिछली ज़िंदगी, या बैकग्राउंड खुलने लगती है। तब प्यार दरकने लगता है। इसलिए हम अपनी जात बिरादरी में शादियाँ करते हैं। ताकि समानताएँ अधिक से अधिक हों।''

''क्या तुम अपने बच्चों की भी इसी तरह शादी करोगी ?''

''मेरी दो बेटियाँ हैं और उनकी शादी हो चुकी है।''

''तुमने करवाईं ?''

''छोटी वाली ने अपनी पसंद का व्यक्ति हमें बता दिया था। वह दोनों एक ही जगह काम करते थे। हमने उसके परिवार को बुलाकर उनकी मर्ज़ी पूछी। वह लोग खुश थे। तो शादी हो गई।''

''और बड़ी बेटी ?''

''उसके लिए हमने खोज बीन की।''

''क्यों ? क्या उसने खुद से कोई नहीं खोजा ? या वह तुम्हारे नियंत्रण में थी बड़ी होने के नाते।''

आशा हँस पड़ी।

''वह बात नहीं। देखो उसका स्वभाव अधिक गंभीर है। वह अपनी पढ़ाई में ही ध्यान देती थी। जल्दी ही उसने फ़ेलोशिप भी कर डाली। एक बार जॉब में लग गई तो सुबह जाना और शाम को सीधे घर आना। जॉब पर बस दो चार बन्दे। कहाँ ढूँढ़ने जाती। हमारा कोई लम्बा चौड़ा सोशल दायरा नहीं है। इसलिए हमें लोगों से पूछताछ करनी पड़ी। हमारे मंदिर में एक लिस्ट छपती है, जिससे विवाह योग्य युवकों का पता मिल जाता है। मैरिज ब्यूरो की तरह समझ लो। ऐसे ही किसी ने हमें ढूँढ़ लिया। उनके बेटे से हम मिले तो ठीक लगा। हमने उनको एक साथ घूमने-फिरने की इजाज़त दे दी थी। कुछ दिन के बाद दोनों ने एक दूसरे को पसंद कर लिया। अगर ना पसंद आता उसे तो हम फिर कोशिश करते कहीं और।''

''क्यों नहीं तुमने उसको अपने से ढूँढ़ने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया। जब होती तब हो जाती। तुम दूर रहतीं।''

''नहीं एमी। उसकी उम्र शादी की हो गई थी। हमने उसको अपना करियर बनाने की स्वतंत्रता दी,जॉब भी लग गई थी। अब मैंने बेटियाँ शेल्फ पर सुखाने के लिए तो नहीं पैदा की थीं आख़िर। मेरा भी तो फ़र्ज़ बनता था कि उसको सेटल करूँ। अब उसको एक बेटा भी है। अपना घर है और वह खुश है।''

अचानक चुप्पी छा गई। आशा ने सोचा ये विदेशी लड़की शायद निरुत्तर हो गई है। पर नहीं। उसके नाक सुड़कने की आवाज़ आई। देखा तो वह चुपचाप आँसू बहा रही थी।

क्या हुआ ? तुमको इसमें कुछ बुरा लगा क्या ? गाड़ी रोक लो।

आशा को लगा उसे उतर जाना चाहिए। एमी ने गाड़ी तो एक ओर लगा कर रोक ली मगर उसका बायाँ हाथ आशा की टाँग पर टिका था। उसके दबाव में आग्रह था। आशा किंकर्तव्यविमूढ़ बैठी रही। एमी का रोना गंभीर हो गया था। आशा के सामने ग्लव बॉक्स में पानी की बोतल नज़र आई। उसने निकाल कर एमी के सामने बढ़ाई। काँपते हाथ से एमी ने पानी पिया। आशा ने टिश्यू दिए। आँखें पोंछने के बाद वह कुछ स्वस्थ हुई। निःश्वास लेकर बोली,''काश मेरी माँ भी ऐसे ही सोचती !''

वह चलने को उद्यत हुई तो आशा ने फिर रोक दिया।

''कुछ मुझसे कहकर हल्कापन लगे तो शेयर करने में हर्ज नहीं है। मैं तुमको जानती हूँ, पर ऐसा कोई नहीं जिससे तुम्हारी बात खोलूँ।'' आशा के स्वर में आश्वासन था। एमी भी यही ढूँढ़ रही थी।

''मैं अपने माँ-बाप की एकलौती बेटी हूँ। बहुत पहले पिता जी हम माँ-बेटी को छोड़कर दूसरी पत्नी के संग रहने चले गए थे। घर बार सब हमें दे गए थे। मेरी माँ ने मुझे प्रेम से पाला। उसको पिताजी से कोई शिकायत नहीं थी। न वह दुखी हुई न रोई गाई। भगवान् पर अटूट विश्वास रखती है। उसी की मर्ज़ी पर सब छोड़ दिया। मैं उसी की तरह पढ़ाई में तेज़ थी। डेनिस से मैं यूनिवर्सिटी में मिली थी। बहुत हँसोड़, बातचीत में चतुर व्यक्ति था। मेरा टीचर था। मेरे काम से बहुत प्रभावित था। मैं आर्ट और लिटरेचर की डिग्री कर चुकी थी। उसी ने सुझाया कि मुझे इंटीरियर डिज़ाइन करना चाहिए क्योंकि इसमें बहुत पैसा है। चार साल हम संग रहे। मगर अब अचानक वह दूसरी लड़की के संग ----'' कहते-कहते वह फूट-फूट कर रोने लगी। हिचकियों के बीच उसने आशा के शब्दों को दोहराया। ''मैं शेल्फ पर ही रखी रह गई। ठीक अपनी माँ की तरह।''

आशा क्या कहे समझ नहीं सकी। वह बोली,''काश मेरी माँ भी मेरे लिए कोई पार्टनर ढूँढ़ देती जो सदा के लिए मुझे अपना लेता बिना देखे जाने। उसने तो ढूँढ़ ली। मैं कहाँ जाऊँ ? सच बोलूँ तो मेरा विश्वास ऐसा टूटा है कि उसको फिर से किसी पर जमाना शायद संभव न हो सकेगा।'' गाड़ी चलने लगी मगर उसके आँसू बहते रहे।

घर आनेवाला था। आशा ने प्यार से कहा- ''एमी,याद रखना जब कोई रोता है तो अपने ऊपर तरस खाकर रोता है। दुःख देने वाले को कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे तो पता भी नहीं की तुम उसके लिए रो रही हो। अपने पर तरस खाना कायरता है। देखो अपने पर विश्वास रखोगी तो सब ठीक लगेगा। टूटे हुए विश्वास को कचरे में डालो। वह तुम्हारे योग्य ही नहीं था।''

''मगर मैं उसको प्यार करती थी।''

''हाँ मगर प्यार की बाढ़ से घर नहीं बनता, बना बनाया भी बह जाता है। घर बनाने के लिए पक्की ज़मीन और गहरी नींव चाहिए। तुम्हारे किस्से में भी समानता और असमानता का बखेड़ा था। तुम एकलौती बेटी। कोई संगी साथी घर में ऐसा नहीं जिससे तुम प्रतिस्पर्धा या मिलान कर सको। पढ़ाई की तो केवल लड़कियों के स्कूल से। कोई पुरुष नहीं था तुम्हारे जीवन में जिसे तुम नज़दीक से जानतीं। तुम्हारी सहपाठिनें सब तुमसे पीछे रहीं क्योंकि तुम गंभीर थीं। दुनिया की तल्खियों ने तुमको नहीं छुआ। खुद तुमने बताया कि तुम्हारी माँ सदा शांत रही और भगवान् पर भरोसा करती रही। एमी तुम संत स्वभाव की थीं। जब एक सौम्य पुरुष ने तुम जैसी पवित्र भोली लड़की को देखा तो फ़िदा हो गया। पर वह स्वयं क्या पवित्र और भोला था ? हर वर्ष जाने कितनी सुंदरियाँ उसकी क्लॉस में आईं और गईं। तुम उन सबसे अलग थीं..... एकदम ताज़ा फूल, जो अभी भी डाली पर टँगा था,अछूता ! चार वर्ष का रिश्ता अचानक तोड़कर निकल गया। कुछ उसमें ही कमी होगी या उसके इरादे ठीक नहीं थे।

तुम छली गईं इसलिए अपने को दोषी मानती रही हो।''

''यकीं जानो मैं उससे कभी नहीं झगड़ी किसी भी बात पर। वह जैसा भी था मुझे अच्छा लगता था।''

''शायद वह लालची था मेरी नज़रों में। उसको इंटीरियर डिज़ाइन की डिग्री के बाद तुम्हारा महज़ एक टीचर बन जाना नहीं सुहाया।''

एमी बात काटकर बोली,''बिल्डर इंडस्ट्री में कैसे-कैसे भेड़िए बैठे हैं ! तुम्हारे उत्तर से अधिक तुम्हारे सीने को ताकते हैं। तुम्हारी टाँगों की लम्बाई और पिंडलियों की चमक देखते हैं। पढ़ाई लिखाई निल। मैं ग्रामर स्कूल की पढ़ी, संस्कारों वाली इज़्ज़त दार माँ की बेटी कैसे वहाँ जाती ? मेरा अनुभव मैं ही समझती हूँ। फिर डेनिस खुद भी तो टीचर है।''

''वही तो। शायद वह खुद जो न कर पाया उसकी भरपाई चाहता था अपनी पत्नी से। एमी तुम अपने को कम मत समझो। उसने अपना रास्ता बदला है। तुम्हारे आगे भी सारा जहाँ है। याद रखो इससे अच्छा ही देगा ऊपरवाला। वह तुम्हारा सहारा लेकर क्विक मनी की दुनिया में प्रवेश चाहता था। यानी उसमें खुद दम नहीं था। ज़रूरी नहीं कि उसको तुमसे अच्छी ही मिली हो।''

''अच्छी बुरी नहीं पता मगर सुना है अपना एडवर्टाइज़मेंट का बिज़नेस करती है।''

''लो तुम खुद ही देख लो। मेरा जजमेंट सही है कि नहीं ?''

एमी कुछ विस्फारित नेत्रों से आशा का मुँह ताकने लगी। फिर दूर गगन को ताकने लगी। उसके माथे की त्यौरियाँ बता रही थीं की उसने ऐसा कभी सोचा ही नहीं। सिर्फ खोए हुए को रोती रही थी हताशा में।

आशा ने कहा ''देर आए, दुरुस्त आए। जो ऊपरवाला करता है भले के लिए होता है। सोचो अगर शादी के बाद वह तुमको छोड़ देता तो ? सोचो, अगर तुम न होती तो क्या तुम्हारी माँ एकल जीवन काटती ? उसे प्यार दो। वह त्याग की देवी है।''

एमी आशा के कंधे पर सर रख कर उसकी बाँह सहला रही थी। उसके चेहरे पर शांति थी।

***

लघु कथा

लव स्टोरी@साकेत मॉल

संगीता कुजारा टाक

खिलखिलाने वाली लड़की और आँखों से बात करने वाला लड़का साकेत मॉल की भीड़ में अचानक जब एक दूसरे के सामने आए तो लगा वक़्त के साथ-साथ साकेत मॉल भी ठिठक गया है और इस ठिठके हुए वक़्त में, ठिठकी हुई भीड़ के बीच लड़के ने देखा कि वो खिलखिलाने वाली लड़की अब संजीदा औरत बन चुकी है और खिलखिलाने वाली लड़की को आँखों से बात करने वाले लड़का,चश्मे के साथ चुपचुपा-सा परिपक्व मर्द लगा।

तभी ठिठके हुए वक़्त को ठेलते हुए किसी ने कहा -''एक्सक्यूज़ मी,ज़रा रास्ता दीजिए।'' दोनों होश में आए हों जैसे।

चश्मे वाले मर्द ने ही बातचीत की शुरूआत की ''कैसी हो?''

''जैसे सात साल पहले थी।'' संजीदा औरत ने ख़ामोशी से कहा, जैसे कहीं कोई और सुन न ले।

''सात साल ...सात साल पहले तो तुम...।'' कहते-कहते अचानक चश्मे वाला मर्द रुक गया।

संजीदा औरत ने आँखें नीची कर लीं और धीरे से पूछा ''और बीवी बच्चे कहाँ हैं?''

''नहीं हैं...।'' मर्द ने उदासी से कहा, तो साकेत मॉल भी उदास हो गया।

''मतलब तुमने शादी नहीं की!'' संजीदा औरत ने और संजीदा होते हुए कहा।

''नहीं'' सपाट स्वर में मर्द ने कहा, तो एक पल को ख़ामोशी छा गई।

मर्द ने फिर पूछा ''क्या अभी भी तुम उसी भीड़ का हिस्सा हो। सो कॉल्ड मॉड?''

''नहीं,भीड़ का हिस्सा तो कभी नहीं बन पाई, बस फिसलते चली गई ...एक के बाद एक मर्द.. इश्क़ मुझे काटे, इससे पहले मैंने इश्क़ को काट दिया...।'' औरत को लगा कि वो लड़की हुई जा रही है।

पहली बार आँखों में आँखें डाल कर मर्द ने पूछा ''और शादी ?'' मर्द को लगा कि उसके पहलू से लड़का निकल आया हो। व्यंग्यात्मक मुस्कुराहट उस संजीदा औरत के होठों पर तैर गई।

''एक बात पूछूँ ?'' मर्द की आवाज़ में थोड़ा सा पुरानापन आया। औरत की आँखों में अपनापे के साथ प्रश्नाकुल उत्सुकता थी।

''इतने मर्दों में तुम्हारी रूह को किसने छुआ ?'' मर्द ने प्रश्न किया।

''सिर्फ तुम ने, तुम्हारी 'ना' के बाद मैंने किसी को 'हाँ' ही नहीं की''। बिना एक पल गवाए संजीदा औरत ने नम आँखों से थरथराती आवाज़ में कहा, तो साकेत मॉल भी भींग गया हो जैसे।

तड़पते हुए, बढ़ती हुई धड़कनों के साथ चश्मे वाले मर्द ने उस संजीदा औरत के हाथों को अपने हाथ में लिया और सीने से लगा कर पूछा ''मुझसे शादी करोगी?'' साकेत मॉल को हँसते हुए भीड़ ने पहली बार देखा।

***

संगीता कुजारा टाक,1 बी,पंचशील इनकेल्व, 5 मेन रोड, (कडरू मोड़), राँची - 834001, झारखंड मोबाइल: 9234677837

हम पहुँच जाएँगे तेरी शादी में भारत...

अर्चना पैन्यूली

सुनिता शर्मा जब भी अपने लड़के से भारत फ़ोन पर उसकी शादी की बात करती वह टाल जाता। सुनिता को अपने लड़के का कुँवारापन ज़बरदस्त अखरने लगा था। छह फुट की उसकी हृष्टपुष्ट काठी, अठ्ठाइस साल की जवान उम्र, ऊपर से अच्छी-खासी नौकरी...। ऐसे में 'सिंगल' बने रहने का भला क्या तात्पर्य।

कुछ माह पूर्व ही उन्होंने भारत के कई अख़बारों व वेबसाइट्स में लड़के के लिए मैटरीमोनियल एड निकाला था। कई तरह के प्रस्ताव आ रहें थे। लड़की वाले चिठ्ठियाँ, फ़ोन व इमेल्स, यानी आज के युग में किसी से संपर्क करने के जितने भी साधन उपलब्ध हैं, सभी के जरिए उनसे संपर्क कर रहे थे। अपनी शोख लड़कियों के आकर्षक बायोडेटा और फोटुऐं भेज रहे थे। भारत रिश्तेदारों से जब तब बात होती वे भी न जाने कितनी लड़कियाँ सुझा देते। यहाँ डेनमार्क में रह रहे कुछ इडिन्यन्स भी जब उन्हें पता चलता कि उनका एक काबिल लड़का अविवाहित है तो दबे शब्दों में अपनी लड़कियों का ज़िक्र करने लगते। मगर लड़का था कि किसी भी रिश्ते में कुछ रुचि ही नहीं लेता। सुनिता की पिछली बार जब लड़के से फ़ोन पर बात हुई तो उसे अल्टीमेटम दे डाला- ''हम कुछ नहीं जानते। अगली बार जब हम भारत आएँगे तो तुझे शादी करनी पड़ेगी चाहे तू किसी से भी करे?''

''मैं किसी विधवा से शादी कर सकता हूँ? किसी बच्चे वाली अकेली औरत से शादी कर सकता हूँ? या किसी दूसरे धर्म की लड़की से शादी कर सकता हूँ?'' वह अजीबो ग़रीब सवाल पूछने लगा।

सुनिता का माथा ठनका। ''ये तू कैसे सवाल पूछ रहा है? क्या तू वाकई किसी...।''

''नहीं-नहीं। बस मज़ाक कर रहा हूँ।''

''नहीं, बेटा बता... क्या तू किसी को पसन्द करता है? हम इतने दकियानूसी नहीं हैं।'' सुनिता ने गंभीर स्वर में पूछा।

''जब आप यहाँ आओगे तो बताऊँगा।'' वह बोला और झट से बात का रूख बदल दिया।

लड़के से बात खतम करने के बाद भी सुनिता का ध्यान उसी की तरफ अटका रहा। दस साल हो गए थे उन्हें लड़के से अलग रहते हुए। वह तब अठ्ठारह का था। पति की पोस्टिंग तेहरान में थी, और उन्होंने लड़के को बारहवीं के बाद तेहरान से भारत भेज दिया था - इंजीनियरिंग कोर्स के लिए। पति की विदेश मंत्रालय की नौकरी होने के कारण तीन पोस्टिंग उन्हें लगातार बाहर देशों की मिलती और एक अपने देश भारत की। तबादले के इसी क्रम में वे तेहरान से रोम गए, फिर दिल्ली गए, फिर रियाद गए और अब पिछले वर्ष कोपनहेगन आ गए थे। इस बीच लड़के ने हैदराबाद से इंजीनियरिंग की, और पूना से एमबीए और पिछले चार सालों से बंगलौर इन्फोसिस में नौकरी कर रहा था। लड़की को भी उन्होंने तीन

अर्चना पैन्यूली, Islevhusvej 72 B, 2700 Bronshoj, Copenhagen, Denmark
मोबाइल:+ 45 71334214
ई-मेल: apainuly@gmail.com

वर्ष पहले रियाद से हैदराबाद भेज दिया था, उसी इन्सटिट्यूट से इंजीनियरिंग करने जहाँ से लड़के ने की थी। सो शर्मा दपंती के दोनों बच्चे भारत में थे और वे विदेश में। लड़की तो अभी इक्कीस की ही थी, पढ़ भी रही थी पर वे चाहते थे कि लड़का शादी करके अपनी गृहस्थी बसाए तो वे बेटे के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों से स्वयं को मुक्त समझे।

संयोग से सुनिता के पड़ोस में एक भारतीय परिवार रहता है - शीतल श्रीनिवासन का। यद्यपि शीतल सुनिता से बारह वर्ष छोटी थी पर उनके बीच दोस्ती अच्छी हो गई है। दोनों को एक-दूसरे की ज़रूरत थी। शीतल से सुनिता अपने मन की सब बातें कर लेती है। शीतल के सामने सुनिता अपने मन की शंका जाहिर करते हुए बोली कि बेटे ने ऐसे सवाल आख़िर क्यों किए। कहीं वास्तव में वह किसी विधवा, बच्चे वाली औरत को चाहने तो नहीं लगा है। ''जब पिछली बार हम होमलीव पर दिल्ली गए थे तो बंगलौर उसके ऑफिस से एक तलाकशुदा, दो बच्चों की माँ का अक्सर उसे फ़ोन आता था। कहीं उसके साथ उसका कुछ चक्कर...।''

शीतल श्रीनिवासन का दिमाग बड़ा शातिर था। वह भारतीय पत्र-पत्रिकाओं और इन्टरनेट पर भारत की खबरे पढ़-पढ़ कर सुनिता को सुनाती कि भारत अब तेज़ी से बदल रहा है - आर्थिक विकास, सामाजिक बदलाव...। वेस्टर्न कल्चर वहाँ हावी हो रहा है। सभी जवान लड़के-लड़कियाँ गर्ल फ्रेन्ड व ब्यॉय फ्रेन्ड बनाने लगे। डेटिंग़ ब्रेकिंगअप, लव मैरिज और डिवोर्स... अब वहाँ आम बात बनती जा रही है।

''हम लव मैरिज के खिलाफ तो नहीं हैं, मगर किसी विधवा या तलाकशुदा बच्चे वाली को हम अपनी बहू हर्गिज़ नहीं बनाना चाहेंगे।'' सुनिता सिहरते हुए बोली।

सुनिता का मन इस कदर उद्विग्न था कि होमलीव पर भारत जाने का जो कार्यक्रम छह महीने बाद का था पति से ज़िद करके दो महीने बाद का करवा दिया। दिल्ली, पड़पड़गंज में उनका अपना अपार्टमेन्ट तब ही खुलता था, जब वे होमलीव पर भारत आते थे। उनका लड़का शुभांग अपनी नौकरी से महीने भर का अवकाश लेकर बंगलौर से दिल्ली अपने माता-पिता के स्वागत के लिए पहले ही पहुँच गया। माता-पिता के आवागमन की सहूलियत के लिए उसने किराए की एक कार का भी इन्तज़ाम कर दिया। कार लेकर वह उन्हें रिसीव करने एयरपोर्ट आया। एक साल बाद सुनिता बेटे से मिल रही थी। वह उसके गले लग गई। पूरे रास्ते, जब वह गाड़ी चला रहा था, पीछे की सीट पर ठीक उसके पीछे बैठे अपने दोनों हाथों से उसका कन्धा पकड़े रही। बेटे का यह तरुण स्पर्श उसे एक सुकून दे रहा था।

घर पहुँच कर शुभांग ने कार पार्क की। डिक्की से माता-पिता के बैग व सूटकेस निकाले, और श्रवणकुमार की तरह उन्हें थाम कर अपने अपार्टमेन्ट की तरफ बढ़ गया। पीछे-पीछे सुनिता और पंकज शर्मा। जैसे ही सुनिता घर में घुसी तो घर एकदम साफ-सुथरा और सुव्यस्थित लगा।

''यह तो तूने घर हमारे पहुँचने से पहले ही साफ करके रख दिया।'' सुनिता पुलकित होकर बेटे से बोली।

''उसने किया।'' वह बोला।

''किसने ?''

''वह भी मेरे साथ बंगलौर से यहाँ आई है न !''

''कौन?'' सुनिता अनजान बनते हुए बोली।

''और कौन? इसकी माशूका...'' सुनिता के पति बीच में बोले।

''उसका नाम सेंनली है।''

सुनिता की भोंहे आश्चर्य से ऊपर चढ़ गई। बेटे को भरपूर दृष्टि से निहारा। वह नज़रें चुराते हुए बोला, ''यहाँ हॉजखास में अपनी किसी सहेली के घर टिकी है। पर कल यहाँ आई थी। उसी ने यह घर वगैरह सब ठीक-ठाक किया।''

''सेंडली... कहाँ की है वह?''

''सेंडली नहीं, सेंनली। आसाम की है वह।''

''ब्राह्मण है...?''

''हूँ...'' शुभांग ने गर्दन झटकी, हाथ हिलाते हुए बोला, ''मैं जातपात को नहीं मानता। सेंनली क्रिश्चयन है।''

''क्रिश्चयन ! कहाँ मिली वह तुझे?''

''हैदराबाद में, वह इंजीनियरिंग में मेरी बैचमेट थी।''

''हैदराबाद में... इसका मतलब पिछले दस सालों से तेरा उससे चक्कर है... और तूने कभी हमें बताया भी नहीं।''

''हम एक-दूसरे प्रति सीरियस अभी एक-डेढ़ साल पहले ही हुए हैं। और बाय-द-वे आप दोनों पहले भी उससे मिल चुके हो। जब पापा की दिल्ली पोस्टिंग थी... और मैं गर्मियों की छुट्टियों पर घर आया हुआ था... तो वह एक बार मुझसे मिलने यहाँ, इसी घर में आई थी।''

समय गुज़रे इतना लंबा समय हो गया था कि सुनिता को कुछ भी याद नहीं कि कभी सेंनली नामक किसी आसामी लड़की से वह मिली भी है। ख़ैर दूसरे दिन हैदराबाद से सुनिता की लड़की तुला भी दिल्ली अपने माता-पिता के साथ कुछ दिन बिताने के लिए पहुँच गई। दोनों बच्चे सान्निध्य में... इन क्षणों का सुनिता को बड़ी बेसब्री से इंतज़ार रहता था। अगले रोज़ ही अपने बेटे को प्रीतमपुरा भाई के घर माँ को लिवाने भेज दिया। माँ भी उसके पास पहुँच गई। माँ और बच्चे...। अगर विदेश में वह कुछ मिस करती थी तो अपने इन करीबी रिश्तों को...। उसने उन सबके बीच अपनी गृहस्थी ऐसे शुरू कर दी जैसे दिल्ली अपने इस अपार्टमेन्ट से वह कभी कहीं गई ही नहीं। हमेशा इसकी चारदीवारी के भीतर ही बँधी रही - घर सँवारती रही, सामान समेटती रही, खाना पकाती रही।

दो-तीन दिन गुज़रे तो बेटे से बोली, ''शुभी, जहाँ कहीं की भी वह हो, जो कुछ भी उसका नाम हो, हमें उससे मिला तो सही। हम दरअसल इस बार उसी से मिलने यहाँ आएँ हैं।''

''वह भी आप लोगों से मिलने ही बंगलौर से यहाँ आई है।'' कहते हुए शुभांग ने मोबाइल निकाला। सभी से थोड़ा दूर खिसक, एकान्त में जा उससे कुछ गूफ़्तगू की। और दूसरे दिन, दोपहर में सेंनली प्रकट हो गई।

सुनिता को सब अच्छी तरह मालूम था कि वह किस प्रदेश की है, किस जाति की है, क्या भाषा बोलती है। मगर चपटी नाक और छोटी-छोटी आँखों वाली सेंनली जब सामने आई तो सुनिता के दिल में साँप सूँघ गया। उसे लगा जैसे चीन, जापान, थाईलैंड या कोरिया देश की कोई विदेशी युवती

उसके सामने आ गई हो।

''तुम हिन्दुस्तानी हो?'' अन्यमनस्कता में मुख से प्रश्न निकल गया।

''असम इडिंया का ही पार्ट है,'' वह असमिया उच्चारण से बोली।

'यह हिन्दुस्तान भी कितना विचित्र देश है। कैसी-कैसी शक्लसूरत और स्वर वाले लोग यहाँ रहते हैं,'' सुनिता मन ही मन बुदबुदाई।

''जरनी कैसा था?''

''यात्रा हमारी अच्छी रही।''

वह बात भी कर रही थी तो टूटीफूटी हिन्दी में...। उफ्।

''तुम कहती हो कि तुम हिन्दुस्तानी हो पर तुम्हें हिन्दी तक बोलनी नहीं आती'' सुनिता तल्खी से बोली।

वह मुस्कुराते हुए बोली. ''शुभांग से हिन्दी सीख रही हूँ।''

''विदेश में कई भारतीयों के बच्चों को हमने देखा है। वे विदेश में जन्में व पले-बड़े हैं पर बहुत अच्छी हिन्दी बोलते हैं। तुम अपने देश में रहते हुए भी ढंग से हिन्दी बोलना नहीं सीखी?''

''विदेश में जो इडिंयन बच्चे हिन्दी बोलते होंगे उनकी मदर टंग हिन्दी होगी। मेरी मदर टंग असामीज़ है।''

''यह तो बड़ा तर्क करती है। लड़की तेज़ है।''

उसे भी सुनिता का बात करने का तरीका कोई पसन्द नहीं आया। उसे पूरी तरह उपेक्षित कर वह तुला और शुभांग की तरफ उन्मुख होकर उनसे बतियाने लगी - अंग्रेज़ी में। तीनों को आपस में फर्राटेदार अंग्रेज़ी में बात करते देख सुनिता को बड़ी कोफ्त हुई।''यह तुम लोग अंग्रेज़ी में क्या पटर-पटर लगाए रखे हो, अपनी हिन्दी में बात क्यों नहीं करते?''

''मम्मी, समझा करो। सेंनली को हिन्दी ढंग से नहीं आती।'' तुला बोली।

''पता है... बाहर देशों में, जहाँ भाषा अंग्रेज़ी नहीं है, वहाँ के लोग अंग्रेज़ी में बात करते हुए अपना अपमान समझते हैं। और यहाँ तुम हिन्दुस्तानी... अंग्रेज़ी बोलने और पढ़ने में बड़ा फख्र महसूस करते हो।''

''मम्मी, तुम उन छोटे-छोटे इसलामी व यूरोपीय देशों की तुलना भारत से मत करो प्लीज़...'' शुभांग ने जुबान खोली।''भारत एक बहुसंस्कृतियों, बहुभाषी, बहुजातीय और बहुधर्मों वाला देश है। यहाँ लोग एक नहीं, कई भाषाएँ बोलते हैं। यहाँ कई जाति व धर्म के लोग रहते हैं। यहाँ कई तरह की भोजन विधियाँ हैं। कई तरह के ड्रिंक्स लोग पीते हैं। यहाँ कई चरित्रों के लोग रहते हैं। यहाँ कई तरह के रंगरूप हैं...।''

सुनिता ने महसूस किया कि शुभांग को यूँ अपनी माँ के साथ तर्क करते देख सेंनली के चेहरे पर एक भीनी मुस्कान तैर गई थी।

बहरहाल शुभांग और तुला सेंनली से बतियाने में लगे थे। सुनिता की माँ नए मेहमान के स्वागत में रसोई में पकोड़े तल रही थी। और सुनिता के पति, पंकज शर्मा हाथों में डीजिटल केमरा पकड़े अपने लड़के के साथ सेंनली का पोज बनाए फोटुऐं खिंचने में लगे थे।

''चीज़ !''

शुभांग और सेंनली दोनों कहते-''चीज़ !'' और उनकी मुस्कुराते हुए फ़ोटो खिंच जाती।

सुनिता अकाट्य मौन साधे सोफे पर बैठी रही। शुभांग व तुला का सेंनली के साथ यूँ घनिष्ठता से बतियाना, पति का उसकी फोटुएँ खींचना और माँ का उसे चाय-पकोड़े परसना सब उसे बेहद अखर रहा था। सेंनली को बहू स्वीकार करने में उसका मन गवाही नहीं दे रहा था।

खैर चाय-नाश्ते के दौर के बाद सेंनली ने अपना पर्स उठाया और सोफे पर से उठ गई। नानी, तुला और पंकज शर्मा से स्नेह से मिलते हुए उसने विदा ली। सुनिता को बस दूर से ही उसने हल्के से हाथ जोड़े। शुभांग उसे टैक्सी स्टॉप तक छोड़ने चला गया।

सेंनली के प्रस्थान के बाद सुनिता अपनी जगह से हिली। सबसे पहले पति पर बिफरी, ''मुझे तो लड़की बिल्कुल नहीं सुहाई और तुम उसकी फ़ोटो पर फ़ोटो खिंचने में लगे थे।''

''अरे भई, अपने ऑफिस से जल्दी छुट्टी लेकर यह कह कर आया हूँ कि लड़के की सगाई करनी है। वहाँ लोग पूछेंगे तो कुछ फ़ोटो वगैरह तो उन्हें दिखानी ही पड़ेगी।''

''और तुला, ऐसा लगा कि तू तो उसे बहुत पहले से जानती है।''

''यस, ऑफकोर्स ! मैं उससे बहुत बार मिल चुकी हूँ। जब भी मैं बंगलौर भाई के पास जाती हूँ, हम तीनों एक साथ खूब घूमते हैं रेस्टोरेन्ट जाते हैं, पिक्चरें देखते हैं...। मटरगश्ती करते हैं।''

''तूने कभी हमें उसके बारे में बताया नहीं?''

''भाई की पर्सनल लाइफ मैं आप लोगों के साथ क्यों डिस्कस करूँ।'' तुला तुनक कर बोली।''वह खुद ही बताए तो ठीक हैं वर्ना मैं क्यों...।''

पर्सनल लाइफ ! ये छोटे-छोटे बच्चे कब इतने बड़े हो गए कि इनकी ज़िंदगी अपनी निजी ज़िंदगी बन गई, जिसमें माता-पिता का हस्तक्षेप भी गँवारा नहीं। पता नहीं कितने अर्से से उसका लड़का इस असमिया लड़की से बंधा है, उसे ज़रा भी खबर नहीं। और भी पता नहीं क्या-क्या गुलछर्रे उसके बच्चे उड़ा रहें है शायद उसे कुछ पता नहीं। सहसा उसके मस्तिष्क में कुछ कोंधा। बेटी से बोली, ''तुला, अब तू भी बता दे कि कहीं तेरा तो किसी से कोई चक्कर वगैरह तो नहीं है?''

''पर अतुल हिन्दू है... और हमारी तरह ब्राह्मण भी।'' वह ऐसे बोली जैसे समान जाति का होना कुछ कम हतप्रद बात होगी माँ के लिए।

सुनिता ने खामोश पंकज की तरफ देखा और पंकज ने उसकी तरफ। क्या कहें वे अपने जवान बच्चों को।

''यह अतुल... क्या तेरे साथ पढ़ रहा है?'' पंकज शर्मा ने बात का सूत्र पकड़ा।

''एक साल मुझसे सीनियर है,'' तुला शर्माते हुए सी बोली, फिर झट से उठी, अपना पर्स टटोला, और एक फोटो निकाल कर उनकी तरफ बढ़ा दी। सुनिता और पंकज शर्मा दोनों काफी देर फ़ोटो को निहारते गए। लड़का रंगरूप में उनकी लड़की से बीस ही था, उन्नीस नहीं।

''पर बेटा, यह तुम पढ़ाई के वक्त लड़कों के चक्कर में...'' सुनिता बेटी पर झुँझलाई।

''पढ़ाई भी हो रही है। सेकेण्ड इयर में अपने बैच में मेरी सेकेण्ड पोज़ीशन ऐसे ही तो नहीं आई।''

यह सही था कि तुला माता-पिता से दूर रहते हुए भी पढ़ाई में अव्वल थी। इस सन्दर्भ में उसके दोनों बच्चों ने अपने माता-पिता को कभी कोई शिकायत नहीं दी। मगर

बच्चों को यूँ किसी अन्य के साथ अपनी ज़िंदगी को जोड़ देना सुनिता के मन को थोड़ा क्षुब्द कर गया। हताशा से पति से बोली, ''इन्हें तो हमारी कोई ज़रूरत ही नहीं रही...। इन्होंने तो अपने हमराही खुद ही चुन लिए।''

सुनिता की माँ बीच में बड़बड़ाई, ''अब ज़्यादा लाग-लपेट और नखरे मत करो। खुद तो दोनों जनें विदेश में रहते हैं। यहाँ बच्चों को अकेला छोड़ा हुआ हैं। बच्चे करेगें ही अपनी मनमानी।''

''माँ, अगर हम यहाँ दिल्ली में भी रहते तो क्या बच्चे हमारे संग रहते? एक बंगलौर में रहता है और दूसरा हैदराबाद में...। यहाँ कितने माँ-बाप के जवान बच्चे उनके साथ रहते हैं?''

शुभांग जब सेंनली को छोड़ कर आया तो सुनिता उससे तरह-तरह के प्रश्न पूछ कर सेंनली से उसकी घनिष्ठता को जायज़ा लेने लगी।

''वह बंगलौर में तेरे घर से कितनी दूरी पर रहती है? उसका ऑफिस तेरे ऑफिस से कितना दूर है? कितना तुम परस्पर मिलते हो? कहाँ मिलते हो? कैसे मिलते हो? एक छत के नीचे कभी अकेले में...?''

शुभांग असहज हो गया प्रश्नों के जवाब देने में।

''ओहो मम्मी... इस तरीके से मत कुरेदो। अपने बेटे को कुछ ब्रीदिंग स्पेस दो।'' तुला चिल्लाई।

''ब्रीदिंग स्पेस... वह क्या होता है ?'' वह अनजान बनते हुए बोली।

माँ, पति व बेटी... तीनों ने मिल कर सुनिता को समझाया कि सेंनली चाहे किसी भी प्रदेश की हो और किसी भी धर्म की हो, शुभांग को पसन्द है। उनके बीच घनिष्ठता पता नहीं किस हद तक है। उनकी भलाई इसी में है कि चुपचाप उनके रिश्ते को स्वीकार कर ले और डेनमार्क जाने से पहले कुछ टीका वगैरह करके अपनी तरफ से उसे होने वाली बहू का दर्जा देदे। बुझे मन से सुनिता मान गई। विकल्प अधिक नहीं था। बेटा उसके प्रति प्रतिबद्ध था।

सेंनली को फिर आमंत्रित किया गया। इस बार वह तनछुई साड़ी में आई, साथ में माथे में बिन्दी लगाए। आसामी ब्यूटी ज़रूर थी पर सुन्दर लग रही थी। पर कहा जाता है कि सुन्दरता तो देखने वालों की आँखों में समाई रहती है। उसका चाईनीज़ों जैसा रंगरूप सुनिता को रह-रह कर अखर रहा था। ऊपर से उसका हिन्दी न बोलना...। स्पष्ट लफ़्ज़ों में अपने बेटे से बोली. ''शुभी भई, जब तक तेरी सेंनली ढंग से हिन्दी नहीं सीखती, मैं उससे बात नहीं कर सकती।''

पंकज शर्मा ने इस बार अंग्रेज़ी में उससे गंभीरता पूर्वक बात की। उसके राज्य के बारे में पूछा। उसके परिवार के बारे में पूछा। उसने बताया कि उसका परिवार मूलत: आसाम में ब्रह्मपुत्रा नदी के तटों से घिरा तटवर्ती शहर माजूली का है। वहाँ उनका पुश्तेनी घर अब भी खड़ा है और उसके दादा-दादी वहीं रहते हैं। पर उसके माता-पिता नौकरी के सिलसिले में गोहाटी बस गए थे। दो वर्ष पूर्व पिता एक हादसे में गुज़र गए। माँ गोहाटी के एक ऑफिस में कलर्क है। दो छोटी बहनें और एक छोटा भाई अभी पढ़ ही रहे है। छोटा भाई मात्र बारह साल का ही है।

हालाँकि सेंनली ने खुल कर कुछ कहा नहीं पर सुनिता व पंकज समझ गए कि सेंनली पर अपने परिवार की थोड़ी ज़िम्मेदारी है।

पंकज शर्मा ने जब पत्नी को इशारा किया तो सुनिता उठी, भीतर के कमरे में आकर आलमारी से सोने का सैट निकाला। जब वह रियाद में थी तो वहाँ ऐसे ही दो-चार सैट बनवा लिए थे कि एक होने वाली बहू को पहनाएगी, एक बेटी को देगी। एक सैट, सबसे खूबसूरत वाला, वह कोपनहेगन से साथ लेकर आई थी, इस इरादे से कि अगर सब ठीक-ठाक रहा तो होने वाली बहू को पहना देगी। पर बहू की शक्ल-सूरत देख कर उसका मन इस तरह खट्टा था कि पूरे सैट की बजाए सिर्फ अंगुठी ही उसे पहनाने के लिए निकाली, जैसे एक औपचारिकता अदा करनी हो।

सेंनली को टीका लगाया, और अँगूठी उसे पहना दी। सेंनली भी अपनी कुछ तैयारी के साथ आई थी। सम्भवत: शुभांग ने उसे फ़ोन पर पहले ही बता दिया हो। उसने अपने बैग से आसामी सिल्क की हल्के हरे रंग की एक खूबसूरत साड़ी निकाली, साथ में आसाम चाय के कुछ पैकेट। सुनिता को आदरपूर्वक थमा दिए। पंकज शर्मा ने फिर कुछ फोटुऐं खिंची। कुछ पोज़ बने। सेंनली को घेर कर सभी की विडियो फिल्म बनी। और सेंनली चली गई। मगर उन सभी से विदा लेते वक्त उसके मन में कुछ भाव फूटे। भावुक स्वर में सुनिता और पंकज से बोली, ''इट्स माय ग्रेट प्लेयर टू मीट यू। यू टू विल ऑल्वेज़ बी वैरी रिस्पेक्टड प्युपल फॉर मी... (आप दोनों से मिल मुझे अत्यंत खुशी हुई। आप दोनों मेरे लिए हमेशा बहुत आदरणीय रहेंगे)।''

''सेंनली, मैं भले ही विदेश में रहती हूँ पर मैं अंग्रेज़ी नहीं बोलती। मैं अपनी मातृ व राष्ट्र भाषा हिन्दी ही बोलती हूँ और इसी को सुनना पसन्द करती हूँ।''

सेंनली मुस्कुराते हुए बोली, ''बंगलौर जाते ही कोई हिन्दी लैंगुएज स्कूल ज्वाइन करूँगी और अच्छे से हिन्दी सीखूँगी। देखना... आपसे अगली मुलाकात होने पर मैं फर्राटे से आपसे हिन्दी में बात करूँगी।''

सेंनली और कितने दिन दिल्ली में टिकी, कब वह बंगलौर गई, सुनिता को कुछ नहीं मालूम। अपने बेटे से उसने कुछ पूछा भी नहीं। 'ब्रीदिंग स्पेस,' तुला की बात उसके दिमाग में मंडरा रही थी। वे एक महीने के लिए भारत आए थे। भारत आने के एक नहीं, कई मकसद हुआ करते थे। सो सेंनली से ध्यान हटा कर अन्य तरफ लगाया। रिश्तेदारों से मिले, ज़रूरी शोपिंग की, अपने शहर के डॉक्टरों से अपने कुछ मेडीकल टेस्ट्स करवाए, दाँत दिखवाए, नए चश्में बनवाए, हल्दीराम के यहाँ जाकर ज़ायकेदार भारतीय स्नैक्स खाए।

दस दिन माता-पिता के सान्निध्य में काट कर तुला हैदराबाद चली गई थी। बेटी-जवाँई के प्रस्थान के दिन करीब आने पर माँ भी अपने बेटे के पास प्रीतमपुरा लौट गई। शुभांग आख़िरी दिन तक उनके साथ बना रहा। उन्हें दिल्ली शहर में इधर से उधर घुमाता रहा। एक माह पलक झपकते ही बीत गया... और फिर एक शाम सुनिता और पंकज कोपनहेगन जा रहे प्लेन पर बैठे हुए थे। शुभांग उन्हें एयरपोर्ट तक छोड़ने आया। अगले रोज़ वह भी बंगलौर वापस लौट रहा था। दोनों में से किसी ने उससे नहीं पूछा कि उसका शादी को लेकर क्या इरादा है।

हवाईजहाज़ ने जब उड़ान भरी तो

सुनिता लंबी साँस भरते हुए पति से बोली, ''दोनों बच्चों ने अपने जीवनसाथी खुद ही तलाश कर लिए। हमारी तो उन्हें ज़रूरत ही नहीं रही...।''

पंकज बोले, ''शुभी की गर्लफ्रेन्ड को देख कर तो मुझे भी थोड़ा अफसोस हुआ- उसका आसामी होना, क्रिश्चयन होना, हमसे अलग रूपरंग का होना... पर तुला के ब्यॉयफ्रेण्ड को लेकर, सच कहूँ, तो मैं बहुत खुश हूँ। अरे लड़की अगले साल पढ़ाई पूरी कर रही है। कहाँ मैं उसके लिए लड़का खोजता? उसने खुद ही खोज कर हमारा काम हल्का कर दिया।''

भारत प्रस्थान करने से पहले सुनिता अपने घर की एक चाबी शीतल श्रीनिवासन को सौंप गई थी। उनकी अनुपस्थिति में शीतल उनके घर में लगाए पौधों को पानी देती, उनकी पोस्ट वगैरह चैक करती। उनके पहुँचने से पहले दूध और ब्रेड वगैरह खरीद कर उनके फ्रिज में उसने रख दिए। ड्राइंगरूप में एक बड़ी सी चिट लगा दी - 'वेल्कम बैक'।

इस तरह का सहयोग दोनों परिवार के बीच स्वत: ही कायम हो गया था। विदेशी भूमि पर थे। यहाँ भाई-बहन नहीं, माता-पिता नहीं, नज़दीकी रिश्तेदार नहीं, सिर्फ एक भारतीय दूसरे भारतीय की मदद करता है। सुनिता ने घर पहुँचते ही उसे फ़ोन लगाया। वह बड़े मनसुबे बाँध कर भारत गई थी। उससे कह कर गई थी कि अगर सब कुछ ठीक रहा तो भारत दो-चार महीने के लिए टिक जाएगी। बेटे की शादी करके ही लौटेगी।

''आप भी पंकज जी के साथ वापस आ गई?'' शीतल श्रीनिवासन ने सुनिता की आवाज़ सुनकर आश्चर्य से पूछा।

''हाँ।''

''बेटे की शादी का क्या हुआ?''

''बहू को अँगुठी पहना आए हैं।''

''अरे बधाई हो। आप इतनी अच्छी खबर इतने दुखी भाव से क्यों सुना रही हो?''

''वह ट्राइबल लड़की है।''

शीतल कुछ समझी सी नहीं।

''आसाम की है, ईसाई है। चाईनीज़ जैसे दिखती है।''

''कोई बात नहीं। दिल मिलने चाहिए। अच्छा आपके खाना वगैरह...?''

''खाना हम प्लेन में खा चुके हैं।''

''अच्छा आप कल दोपहर लंच पर हमारे घर आइए - सन्डे हैं, आराम से बैठेंगे, बातें करेंगे।''

अपने देश से कोसों दूर, यहाँ सिर्फ शीतल श्रीनिवासन थी जिससे सुनिता शर्मा अपने दिल की हर बात कह देती थी। दूसरे दिन भारत से लाए हल्दीराम मिठाई का डिब्बा एवं सेंनली की फोटुऐं व विडियो फिल्म लेकर उनके घर पहुँच गए, लंच पर। शीतल और उसके पति ने बड़ी दिलचस्पी से उनकी होने वाली बहू की तस्वीरों को निहारा। उनके बेटे की पसन्द को दाद दी।

''इस तरह की शादियाँ हमारे देश में होनी चाहिए ...। अब नई पीढ़ियाँ ही ऐसी अन्तरजातीय और अन्तरप्रान्तीय शादियाँ रच कर हिन्दुस्तान से जाति-धर्म के भेदभाव को दूर कर सकेगी। सदियों से पृथक हुई विभिन्न जातियाँ एक-दूसरे से ऐसे ही जुड़ेगी, परस्पर एकीकरण करेंगी।''

पैंतीस वर्षीया शीतल मेहरा ने खुद वेनू श्रीनिवासन से लवमैरिज की थी। वह पंजाबी थी और वेनू तमिल। पाँच साल पहले वे शादी करके मुंबई से कोपनहेगन आए थे। वेनू एक प्रतिष्ठित शिपिंग कंपनी में सोफ्टवेयर प्रोफ़ेशनल था। शीतल भी कोपनहेगन बिज़नेस स्कूल से दो साल का कोर्स करके संयुक्त राष्ट्र की एक शाखा में नौकरी करने लगी थी। उनकी दो साल की प्यारी सी बच्ची थी। सुनिता शीतल के लिए बड़ी बहन जैसी और उसकी बच्ची के लिए मौसी जैसी थी।

एक दिन जब सुनिता शीतल के साथ बैठी थी, मन के ऊहापोह उसके सम्मुख प्रकट करते हुए बोली, ''शीतल, तुम मुझसे काफी छोटी हो। आजकल के जवान बच्चों के नए तौर-तरीके मुझसे बेहतर समझती हो। तुला ने भी अपने लिए एक लड़का पसन्द कर लिया है और शुभांग तो उस लड़की से पता नहीं कबसे जुड़ा है...। कहीं उनके बीच यौन घनिष्ठता...।''

''आपको लगता नहीं कि भारतीय पुराने रीतिरिवाजों को अब थोड़ा बदलना चाहिए। आजकल आपकी तरह सत्रह-अठारह साल में तो लोगों की शादी होती नहीं। समाज में शादी की उम्र बढ़ रही है और लड़के-लड़कियाँ प्यूबर्टी जल्दी हासिल कर रहे हैं। फिर टीवी, फिल्में व इन्टरनेट का खुलाव... ऐसे में माता-पिता अपने बच्चों से यह उम्मीद लगाएँ कि उनके बच्चे तीस-बत्तीस सालों तक बिना सेक्स के रहे...। मैं तो समझती हूँ कि माता-पिता स्वयं ही अपने बच्चों को उचित यौन शिक्षा देकर उन्हें समझा दे। सभी स्कूलों को भी बढ़ते छात्र-छात्राओं को किशोर वय: पर होते शारीरिक विकास और यौन की अच्छी शिक्षा देनी चाहिए, ताकि उन्हें सही जानकारी मिलें। उनके मन में बेवजह का कोई अपराधीपन न पनपे। वे गलत राहों में न पड़े। भारत आज दुनिया के उन देशों में माना जाता हैं जहाँ एड्स के मरीज़ बड़ी तेज़ी से बढ़ रहे हैं।''

''शीतल... तुम्हारा भी वेनू से प्रेम काफी वर्षो तक चला था... उस दौरान कभी तुम दोनों के बीच...।''

एक पल के लिए शीतल ने सुनिता को निहारा। उसके प्रश्न को तौला।

''वैसे तो यह मेरी पर्सनल लाइफ है। पर आपकी मनस्थिति समझते हुए बता देती हूँ कि हाँ, शादी से पहले कई बार हमने सेक्स किया। हमारे घर वाले हमारी शादी के पक्ष में नहीं थे क्योंकि हम अलग-अलग जातियों के थे। शुरू के एक-डेढ़ साल तक तो हमने अपने पर संयम रखा, फिर एक बार हम अपने किसी कॉमन फ्रेन्ड के घर अकेले में मिले और वहाँ...। फिर न तो कोई झिझक रही और न संयम ही...।''

सुनिता सोचने लगी शीतल और वेनू एक आदर्श व समर्पित पति-पत्नी है। वे डेनमार्क में बसा एक ऐसा भारतीय युग्ल है जिस पर हर किसी भारती को गर्व है।

''सुनिता जी, आपका बेटा एक परिपक्व व पढ़ा-लिखा लड़का है। आप बेवजह की शंकाएँ पाल कर टेन्शन मत लीजिए।''

अगर ऐसे मित्र मिल जाएँ जो मन का बोझ हल्का करदे तो चाहिए ही क्या...। सुनिता ने अपना मोबाइल उठाया। सीधे भारत बेटे को फ़ोन मिलाया। पहले उससे कुछ इधर-उधर की बातें की, फिर उससे चहुल करते हुए बोली, ''तू अपनी सेंनली से मिल कर अपनी शादी की तारीख तय करके हमें बता दे। हम पहुँच जाएँगे तेरी शादी में भारत...।''

***

तुम सही हो लक्ष्मी

डॉ. रमाकांत शर्मा

वह इतनी दुबली-पतली है कि लगता है फूँक मारो तो उड़ जाएगी। उम्र यही होगी कोई पैंतीस के करीब। वर्षों से शहर में रहने के बाद भी उसके चेहरे-मोहरे और पहनावे में गाँव की मासूमियत और सादापन साफ झलकता है। वह बहुत कम बोलती है, पर जब बोलने लगती है तो फिर लगातार बोलती है। काम इतनी तेज़ी से और इतनी सुघड़ता से निपटाती है कि मैं चकित होकर रह जाती हूँ, पता नहीं बिहारी की नायिका-सी उसके शरीर में इतनी ताकत और फुर्ती कहाँ से आ जाती है।

हमारे घर बर्तन-चौके और झाड़ू-बुहारी का काम करने आने से पहले वह चार घरों का काम निपटा आती है। एक घर अस्सी वर्ष के उस बुज़ुर्ग का है जो अकेला रहता है। उसके लिए वह बाज़ार से सौदा-सुलफ लाने, घर की साफ-सफाई करने और रोटियाँ सेंकने का काम करती है। दूसरे घर में मियाँ-बीबी दोनों सुबह ही काम पर निकल जाते हैं। घर की एक चाबी उसके पास रहती है। वह उनके घर भी साफ-सफाई कर आती है। बचा चौथा घर जहाँ वह सिर्फ कपड़े धोने और सुखाने का काम करती है।

मैं सुबह जब अपने लिए चाय बनाती हूँ तो एक कप उसके लिए भी बना कर रख देती हूँ। वह चारों घर का काम निपटा कर थकी-हारी आती है। खुद ही गर्म करके चाय पी लेती है और फिर चुपचाप अपने काम से लग जाती है। कभी-कभी वह अचानक बोलना शुरू कर देती है तो मैं अचकचा जाती हूँ। जिन घरों में वह काम करके आती है, उनके बारे में बताने लगती है या फिर अपने गाँव-घर की ऐसी बातें शुरू कर देती हे जो उसके मन में घुमड़ रही होती हैं। मैं अपने काम निपटाते हुए या फिर डाइनिंग टेबल पर कुहनियाँ टिकाए उसकी बातें सुनती रहती हूँ। सच कहूँ तो मुझे न तो पड़ोसियों की बातें सुनने में मज़ा आता है और न ही उसके गाँव-घर की बातें सुनने में। मैं हाँ हूँ करती रहती हूँ तो वह समझती है आंटी उसकी बातें ध्यान से सुन रही हैं। बीच-बीच में वह अपनी बात का समर्थन कराने के लिए पूछती जाती है - ''है कि नहीं?'' और मैं समझे, बिना समझे गर्दन हिला देती हूँ।

डॉ. रमाकांत शर्मा, 402-श्रीराम निवास, टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी, पेस्तम सागर रोड नं.3, चेम्बूर, मुंबई - 400089
मोबाइल: 9833443274
ई-मेल: rks.mun@gmail.com

मन हुआ तो वह मेरे और भी ऐसे बहुत से काम कर जाती है जिसकी पगार उसे नहीं मिलती। बर्तन लगा जाती है, पंखे साफ कर जाती है और दाल-चावल बीन जाती है। सब्जी वाला, फल वाला नीचे आया हुआ है, यह भी बता देती है। मैं चूहों से बहुत डरती हूँ, एक बार चौथी मंज़िल के इस घर में पता नहीं कहाँ से चूहा घुस आया था। मैं तो डर के मारे घर से बाहर निकल कर खड़ी हो गई थी और उसने चूहे को घेर कर मार कर ही दम लिया था। फिर उसे कहीं दूर ले जाकर फेंकने का काम भी उसी ने किया। हम दोनों के बीच एक अलग सा बांड बन गया है। वह मुझे आंटी कहती है और मैं उसे लक्ष्मी बेटा।

उसके लिए दरवाज़ा खोलते समय मैं अकसर हँस कर कहती हूँ - ''हमारे घर लक्ष्मी आई है।'' वह मुस्कराते हुए अंदर आ जाती है। उस दिन भी मैंने वही वाक्य दोहराया, पर वह हमेशा की तरह मुस्कराई नहीं और सीधे जाकर अपने काम से लग गई। मुझे थोड़ा अजीब सा लगा। मैंने उससे पूछा - ''क्या बात है लक्ष्मी, तबीयत ठीक नहीं है क्या?''

पहले तो उसने जवाब ही नहीं दिया फिर मेरे दोबारा पूछने पर थालियाँ रगड़ते हुए कहा - ''आंटी, सिर्फ नाम ही लक्ष्मी है, ईश्वर ने वैसी तकदीर भी दी होती। पाँच घरों में नौकरानी का काम करके आठ-दस हजार रुपये कमाती हूँ। फिर अपने घर का सारा काम भी तो करना होता है। देर रात बिस्तर पर पड़ती हूँ तो सारा शरीर टूट रहा होता है। यह सोच कर नींद भी ढ़ंग से नहीं आती कि सुबह उठ कर फिर वही सब कुछ करना है। लेकिन, दो वक्त की रोटी तो खानी ही है न। है कि नहीं?''

''अरे, तेरा मरद है और फिर बीस बरस का बेटा भी। दोनों दो वक्त की रोटी का जुगाड़ नहीं करते?''

उसने एक गहरी साँस ली और कहा - ''आंटी तभी तो भाग्य के लिए रोती हूँ। मेरा मरद पीने के लिए कमाता है। अपनी कमाई में से शायद ही कभी कुछ मेरे हाथ पर रखता हो। यहाँ-वहाँ चौकीदारी का काम करता रहता है। हर दूसरे दिन पी कर आता है। जिस दिन पी कर काम पर चला जाता है, उसे अपनी नौकरी तक गंवानी पड़ती है। पर, तब भी उसे समझ नहीं आती। जब तक पैसा अंटी में रहता है, पीता है, खाता है और सो जाता है। फिर मुझसे माँग कर पीता है।''

''तू पीने के लिए उसे पैसा देती क्यों है?''

''गालियाँ खाता रहता है, मुझसे। गिड़गिड़ा कर पैरों में लोट जाता है तो क्या करूँ ? मेरे आँसू, मेरी गालियाँ और मेरा रूठना भी उस पर ज्यादा असर नहीं करता। जब बिलकुल पैसे नहीं होते तो फिर किसी सोसायटी, किसी बंगले या फिर दुकानों की चौकीदारी के लिए निकल जाता है।''

''और तेरा बेटा?''

''क्या करता है, कहाँ जाता है कभी बताता नहीं। खाना खाने और सोने घर आता है, बस। मुझसे ही लड़-झगड़ कर पैसे माँग कर ले जाता है, कभी एक पैसा भी मेरे हाथ पर लाकर नहीं रखा। नाम की ही लक्ष्मी हुई ना आंटी जी।'' उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे थे।

मैंने कहा - ''तू दोनों के साथ थोड़ी कड़ाई बरत लक्ष्मी बेटा, सब अक्ल आ जाएगी।''

उसने अपने गालों पर बहते आँसू पल्लू से पौंछते हुए कहा - ''मैंने कई बार दो-दो दिन तक घर में खाना नहीं बनाया। दोनों भूखे पेट सो गए पर मुँह से यह नहीं निकला कि अब आगे से ऐसा नहीं करेंगे। नशे में लड़खड़ाते घर आए मरद को तो मैंने कई बार जी कड़ा करके रात में घर में नहीं घुसने दिया। वह दरवाज़ा पीटते-पीटते थक गया तो सामने के पार्क की बेंच पर जाकर सो गया। सुबह जब वह घर में घुसा तो मैंने उससे कोई बात नहीं की। पर अंदर से जी कुड़कुड़ाता रहा। चुपचाप नाश्ता बनाया और उसके सामने रख दिया। बाप-बेटे दोनों ने बेशर्मों की तरह खा लिया। उनके माथे पर तो कोई शिकन ही नहीं होती। समझ में नहीं आता क्या करूँ। सच कहूँ आंटी, कई बार मन किया है कि सब कुछ छोड़-छाड़ कर भाग जाऊँ। पर, यही सोच कर रुक जाती हूँ कि जब मेरे सामने इनके ये हाल हैं तो मेरे जाने के बाद पता नहीं इनका क्या होगा।''

उसका दर्द मैं समझ सकती थी, इसलिए चुप होकर रह गई। पर, स्वार्थी मन यह सोचने लगा कि अगर यह सचमुच सब कुछ छोड़-छाड़ कर कहीं चली गई तो नई बाई ढूँढ़नी पड़ेगी। आजकल कामवाली बाई आसानी से मिलती ही कहाँ हैं और फिर लक्ष्मी जैसी सुघड़ काम करने वाली तो शायद ही मिले। मैं मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि हे भगवान्, इसकी समस्या का कुछ न कुछ समाधान जल्दी से कर देना नहीं तो मेरे सामने बड़ी समस्या खड़ी हो जाएगी। फिर मुझे अपनी सोच पर खुद ही शर्मिंदगी होने लगी, मैं सिर्फ अपने बारे में ही सोच रही थी। मैं कुछ कहने के लिए शब्द ढूँढ़ने लगी, तभी वह पौंछे के लिए बाल्टी में पानी भरने बाथरूम में चली गई।

दूसरे दिन वह नहीं आई तो लगा कोई ज़रूरी काम होगा या फिर उसकी तबीयत ठीक नहीं होगी। जब भी वह नहीं आती इन दोनों में से कोई एक कारण बताती है। पर, जब लगातार तीन दिन तक नहीं आई तो चिंता हो आई। जिन दूसरे घरों में वह काम करती थी वहाँ जाकर भी पूछ आई, वे लोग भी उसके न आने से परेशान थे। जब और दो-तीन दिन निकल गए तो मैंने सोचा उसके घर हो आऊँ, क्या पता सचमुच बीमार पड़ी हो। इतने दिन तो इससे पहले उसने काम से कभी नागा नहीं किया था। मुझे पता था, करीब एक किलो मीटर की दूरी पर कच्ची बस्ती में वह रहती थी। एक बार उसने अपने घर गणपति बैठाए थे। बड़े आग्रह से उसने मुझे गणपति दर्शन के लिए अपने घर बुलाया था। उसका मन रखने के लिए ही मैं चली गई थी।

मुझे देख कर वह बहुत खुश हुई थी। उसने अपने मरद और बेटे के साथ-साथ वहाँ इकट्ठी कुछ औरतों को भी गर्व से बताया था - ''ये चावला आंटी हैं, वह जो बड़ी सी सलेटी बिल्डिंग है, उसी के चौथे माले पर बड़े वाले फ्लैट में रहती हैं। मैं इनके घर काम करने जाती हूँ। आंटी मुझे अपनी बेटी मानती हैं। रोजाना चाय बना कर रखती हैं मेरे लिए।'' वह बड़े उत्साह से सबको बता रही थी, उसके चेहरे पर चमक साफ-साफ देखी जा सकती थी। इतने बड़े घर की मालकिन जो उसके घर आई थी।

गणपति की आरती में मैं भी शामिल हुई। अपने साथ प्रसाद के लिए कुछ फल ले

गई थी। उसने बड़े प्यार से उनका भोग लगाया। चलते समय उसने घर के बने मोदक मुझे पकड़ाते हुए कहा था – ''आंटी, धन्य भाग आज आप हमारी कुटिया में आईं।'' मैंने उसके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रख दिया था। मन किया था उसके मरद और बेटे से बात करके उन्हें समझाऊँ कि वे लक्ष्मी जैसी औरत की कद्र करें और घर चलाने में उसका हाथ बँटाएँ। पर, न तो वैसा मौका था और न ही मैं कहीं भीतर से उस पचड़े में पड़ना चाहती थी।

क्योंकि मैं पहले भी वहाँ जा चुकी थी इसलिए मुझे उसका घर ढूँढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई। घर का दरवाज़ा खुला हुआ था और उसका मरद फर्श पर बैठा बीड़ी फूँक रहा था। मुझे देखते ही हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ और बीड़ी फेंक कर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। मैंने वहीं खड़े-खड़े पूछा – ''लक्ष्मी है घर में? कई दिन से काम पर नहीं आ रही, क्या हुआ है उसको?''

वह हाथ मलता हुआ बोला – ''क्या बताएँ आपको। बड़ी झगड़ालू है, मुझसे झगड़ा करके भाई के घर गाँव जाकर बैठ गई है। बेटा-मरद चाहे भूखे मरें, उसे क्या? जबसे गई है चूल्हा नहीं जला है घर में। बड़ी बेशर्म औरत है, कह गई है जब तक हम दोनों उसका कहा नहीं मानेंगे, वह लौटेगी नहीं।''

''तो उसका कहा मान क्यों नहीं लेते?'' – मैंने भुनभुनाते हुए कहा।

''अरे, कोई ढ़ंग की बात करे तो मान भी लें। कमाती है तो रौब जमाती रहती है, औरत है तो औरत की तरह रहे घर में।''

मुझे गुस्सा आने लगा था – ''औरत कमाती है और तुम दोनों बैठ कर खाते हो, शर्म नहीं आती?''

वह हक्का-बक्का होकर मेरी शक्ल देखने लगा था – ''कमाता तो हूँ, सोसायटियों में चौकीदारी करने जाता हूँ।''

''और सारी कमाई पीने-पिलाने पर लुटा देते हो। कैसे मर्द हो तुम? समझ में नहीं आता तुम्हें, उसकी ज़िंदगी तो खराब कर ही रहे हो, पी-पीकर अपनी सेहत भी बिगाड़ रहे हो। थोड़ी भी शर्म और अक्ल है तो इज़्ज़त से ले आओ उसे और उसकी कमाई खाने की जगह मरद की तरह घर का खर्चा चलाओ।''

वह सिर झुकाए चुपचाप खड़ा था, उसे समझ आ गया था कि मुझे पूरी हकीकत मालूम थी। मैंने न चाहते हुए भी उस पर हिकारत की एक नज़र डाली और वापसी का रास्ता पकड़ लिया।

मैं रोज़ लक्ष्मी का इंतज़ार करती, पर निराशा ही हाथ लगती। अब तो उसे गए बीस दिन हो गए थे। लगता था, इस बार वह सचमुच सब कुछ छोड़-छाड़ कर चली गई थी। महीना बीतते-बीतते मैंने दूसरी कामवाली की खोज शुरू कर दी। तभी एक दिन अचानक वह सामने आ खड़ी हुई। मुझसे आँखें चुराती सी वह सीधे किचन में चली गई और जूठे बर्तन उठाकर माँजने लगी।

मैं भी उसके पीछे-पीछे किचन में चली आई। मन में बहुत सारे सवाल घुमड़ रहे थे। पर, सिर्फ इतना ही कह पाई – ''आ गई लक्ष्मी बेटा, तू तो तब तक नहीं आने वाली थी जब तक तेरा मरद और बेटा तेरी बात नहीं मान लेते। मान ली क्या उन्होंने तेरी बात?''

मैं उसके जवाब का इंतज़ार करती रही और वह सिर झुकाए बर्तन माँजने में लगी रही। मुझे झुँझलाहट चढ़ने लगी। इस बार मैंने थोड़े सख्त लहजे में अपनी बात दोहराई तो उसने सिर उठा कर सीधे मेरी आँखों में देखा। उन आँखों में नमी देख कर मैं चुप हो गई। उसने हाथ में लिए बर्तन सिंक में रख दिए और बोली – ''आंटी हर तरह से हार कर लौटी हूँ मैं। भाई के घर इतने दिन रही। उसने अच्छी तरह रखा। पर, जब दिन पर दिन निकलते गए तो मैंने भाई और भाभी की आँखों में सवाल उठते देखे। उन्होंने मुँह से तो कुछ नहीं कहा पर उनकी आँखें हरदम पूछती रहतीं – ''कितने दिन और रुकोगी यहाँ ? क्या अब हमेशा यहीं रहने का इरादा है?'' आंटी मैं उनकी आँखों के इन सवालों को समझते हुए भी टाल जाती। सच कहूँ तो मेरा दिल भी हमेशा यहीं लगा रहता, मेरे बिन कैसे रह रहे होंगे ये लोग। कैसे और कहाँ खाते होंगे। भूखे तो नहीं सो जाते होंगे? सपनों में मैं उन्हें भूख से तड़पते देखती तो उठ कर बैठ जाती। कभी सपना आता कि ये नशे में कहीं नाली में पड़े हैं और कोई उन्हें उठा नहीं रहा है तो मैं सपने में ही नंगे पैर भागी चली जाती। जाग कर सोचती काश ये लोग मुझे लेने आ जाएँ, पर जितना कड़ा दिल मैंने बना लिया था, उससे भी ज़्यादा कड़ा दिल इन दोनों ने बना लिया।''

''तो तुझसे रहा नहीं गया, इसलिए लौट आई तू?''

''आंटी, भाई के घर मैं ज़्यादा नहीं रहना चाहती थी। पति का घर ही अपना होता है ना? फिर शहर से हमारे गाँव का एक आदमी जब गाँव आया और उससे पता चला कि समय-असमय, कभी भी कहीं भी कुछ भी खाने-पीने और कई दिन तक अधपेट-भूखेपेट रहने के कारण कृपा, मेरा मरद बीमार हो गया है और बेटा उसका ध्यान रखने के बजाय कई-कई दिन तक घर नहीं आता तो मैं उठते-बैठते खुद को कोसने लगी। फिर मुझसे रुका नहीं गया आंटी।''

मैं समझ नहीं पा रही थी कि वह भाई के अनकहे शब्दों को समझ कर वहाँ से चली आई थी या फिर अपने मरद की बीमारी की बात सुन कर। खैर, कुछ भी कारण रहा हो, वह लौट आई थी और आकर उसने अपना काम सँभाल लिया था, मैं इसी में खुश थी।

लक्ष्मी अब पहले जैसी लक्ष्मी नहीं रह गई थी। वह शांति से बैठकर चाय पीने और काम खत्म करके थोड़ी देर सुस्ताते हुए मुझे इधर-उधर की सुनाने के बजाय अपना काम करके तुरंत निकल जाती। बीच-बीच में वह एक-एक, दो-दो दिन के लिए गायब भी हो जाती। वह नहीं आती तो उसका सारा काम मुझे ही निपटाना पड़ता। कई बार सोचती जब काम मुझे ही करना है तो फिर इसे रखने का फायदा ही क्या।

उस दिन भी जब वह दो दिन की नागा करने के बाद आई तो मुझसे रहा नहीं गया, मैंने कहा – ''लक्ष्मी बेटा, ऐसे तू बार-बार गोत मचाएगी तो कैसे चलेगा? मुझ बूढ़ी को निपटाना पड़ता है तेरा काम।''

''क्या बताऊँ आंटी, मेरा मरद सचमुच बहुत बीमार है। दवाखाने के चक्कर लगा-लगा कर परेशान हो जाती हूँ। डाक्टरों ने बताया है, इतना पीने से उसके शरीर के अंदर के अंग गल गए हैं। कह रहे थे बड़ी बीमारी हो गई है उसे। वही हुआ जिसका डर था। खूब खरी-खोटी सुनाती हूँ उसे।

बीमारी से वो भी डर गया है, कहता है – अब नहीं पियूँगा, पर मुझे पता है वह बोतल के लिए अब भी तड़पता है। मेरी गालियाँ खाकर पहले वह भी उलट कर गालियाँ देता था, अब इतना कमज़ोर हो गया है कि पलट कर गाली भी नहीं दे पाता। बेटे के हाथ-पैर जोड़ती हूँ कि वह बाप के पास बैठ जाए तो मैं काम निपटा आऊँ। कभी मेरी बात मान लेता है तो कभी नहीं। घरों का काम करने आती हूँ तो उसे अकेला छोड़ना पड़ता है। कई बार सोचती हूँ, काम छोड़ दूँ, पर अब तो उसकी दवाइयों का खर्चा भी है।''

उसकी बातें सुनकर मेरा सारा रोष जाता रहा। पता नहीं इतनी परेशानियों के साथ यह सींक जैसी औरत कैसे चार घरों का और खुद अपने घर का काम निपटाती है। मैं जड़ होकर चुपचाप सुनती रही और सोच में डूब गई। वह कब उठ कर अपने काम से लग गई, मुझे पता ही नहीं चला।

उस दिन घंटी बजने पर जब मैंने दरवाज़ा खोला तो देखा लक्ष्मी के चेहरे पर घबराहट साफ झलक रही थी। उसकी आँखों में आँसू थे और हाथ काँप रहे थे। उसकी हालत देख कर मुझे भी घबराहट हो आई। अंदर आते ही वह धम्म से फर्श पर बैठ गई। मैंने उसकी पीठ पर हाथ रखते हुए पूछा – ''क्या बात है लक्ष्मी बेटा, क्या हुआ है? तेरा मरद तो ठीक है?''

''वो ठीक है आंटी।''

''फिर?''

''मैं जिस बूढ़े अंकल के घर काम करती हूँ ना आंटी, वो कल बाथरूम से निकलने के बाद अचानक गिर गए। मैंने उनके मुँह में पानी डाला और उन्हें उठाने की कोशिश की, पर वे लंबी-लंबी साँस लेने लगे। मैं पड़ोस के लोगों को बुलाने भागी। डाक्टर आया तो पता चला उन्होंने तो अपना शरीर छोड़ दिया था।''

''अरे, यह क्या कह रही है तू?''

''सच कह रही हूँ आंटी। रात भर सो नहीं पाई। पाँच साल से ऊपर उनके घर काम कर रही थी। बड़े बुज़ुर्ग थे, उनका काम करके मुझे खुशी मिलती थी। लगता है, जैसे कोई अपना ही चला गया है।'' उसकी आँखें फिर भरने लगी थीं।

मुझे भी पता नहीं क्यों अजीब सा लगने लगा था। हालाँकि मैंने उन्हें कभी देखा नहीं था, पर लक्ष्मी उनके बारे में इतना कुछ बताती रही थी कि मेरे मन में उनका चित्र सा खिंच गया था। कभी वे उसे डाँट देते थे तो वह उनसे झगड़ कर आती थी और बड़ी देर तक उनकी गुस्सैल छवि को लेकर बड़बड़ाती रहती थी। वे ज़रा उसकी प्रशंसा कर देते तो वह काम करती रहती और उनकी तारीफ के पुल बाँधती रहती।

उस दिन उसका मन उखड़ा-उखड़ा सा रहा और वह बेमन से काम करती रही। दूसरे दिन वह काम पर नहीं आई। तीसरे दिन जब काम पर आई तो बहुत उदास नज़र आ रही थी। मैंने उसे समझाते हुए कहा था – ''लक्ष्मी बेटा, यह दुनिया ऊपर वाले की है, वह जैसे अपनी दुनिया चलाएगा वैसे ही चलाएगा। हमें बेकार में ही अपने दिल पर कोई बोझ लेकर नहीं जीना चाहिए। सब कुछ भूल जा और मस्त रह।''

उसने शायद मेरी बात सुनी ही नहीं थी और अचानक पूछा था – ''आंटी सबको मरना होता है न? मैंने पहली बार अपने सामने किसी को इस दुनिया से जाते हुए देखा है। पल भर में जीती जागती ज़िंदगी हमेशा के लिए खुद को खामोश कर लेती है। भगवान् ने क्यों बनाई है, यह दुनिया?''

''तू तो बहुत सोच रही है लक्ष्मी बेटा। इस दुनिया को न तो तू बदल सकती है और न मैं। हर दिन कितने ही लोग जन्म लेते हैं और कितने ही मरते हैं। अगर सब तेरी तरह से सोचते बैठे रहें तो फिर बता कैसे चलेगी ज़िंदगी ?''

उसने मेरी बात पर ध्यान दिए बिना बर्तन माँजना रोकते हुए कहा – ''आपको पता है आंटी जब तक वे जिंदा थे और मुझे डाँटते थे तो बहुत बुरे लगते थे। कई बार मैंने सोचा था कि उनका काम छोड़ दूँ। पर, अब उनके जाने के बाद मुझे लगता है, वे कहीं से आ जाएँ, मुझे खूब डाँटें। आंटी जब तक कोई हमारे साथ होता है, हम उसकी कदर नहीं करते, उसकी गलतियाँ निकालते हैं, उससे गुस्सा होते हैं और कई बार तो यहाँ तक सोच जाते हैं कि यह मर-मरा जाए तो पिंड छूटे। है कि नहीं आंटी? पर, उसके जाने के बाद उसकी बहुत याद आती है। उसकी बुराइयाँ नहीं अच्छाइयाँ याद करते हैं हम, उसके साथ समय न बिता पाने को लेकर अपनी बेबसी पर कसमसाते रहते हैं, हम। जिंदा आदमी को इस तरह प्यार क्यों नहीं करते, क्या यह सब उसके मरने के बाद के लिए बचा कर रखते हैं?''

वह इतनी बड़ी-बड़ी बातें कर रही थी। हैरत से भरी मैं उसकी शक्ल देखे जा रही थी। उसकी आँखों से टपाटप आँसू बरसने लगे तो वह सिंक से हट कर वहीं ज़मीन पर बैठ गई। मैं उसकी मनोदशा को ठीक-ठीक समझने की कोशिश कर रही थी। जिस आदमी के पास कुछ अर्सा हर दिन कुछ घंटे काम किया हो क्या उससे इतना लगाव हो सकता है, या फिर वह पहली बार अपने सामने हुई मौत देख कर बौखला गई थी।

उधर वह बार-बार पल्लू से अपनी आँखें पोंछ रही थी, पर उन्हें सुखा नहीं पा रही थी। उन्ही आँसुओं के बीच उसने सुबकते हुए कहा था – ''आंटी, मेरे मरद को डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। कहते हैं, कुछ हफ्ते से लेकर कुछ महीने ही वह जिंदा रहेगा। आंटी, अब तो उसने पीना छोड़ दिया है, फिर भगवान् उसे माफ क्यों नहीं कर देते? वह कैसा भी है आंटी पर मुझे दिल से चाहता है। इस मुई शराब ने उसे बरबाद कर दिया, बस। नहीं तो वह आदमी कहीं से बुरा नहीं है। मैं ही बुरी हूँ आंटी, जब उसे मेरी सबसे ज्यादा ज़रूरत थी तब मैं मायके जाकर बैठ गई थी। जैसे भी दिन कट रहे थे, साथ तो कट रहे थे। नहीं जाती तो शायद आज यह दिन देखने को नहीं मिलता। आंटी हमारे पास जितने भी दिन बचे हैं, मैं उन्हें जी भर कर जीना चाहती हूँ। मैं नहीं चाहती, उसके जाने के बाद वह सब याद करके रोऊँ जो मैं अब कर सकती हूँ फिर भी नहीं करूं।''

वह कहते-कहते रुकी, फिर बोली – ''आंटी मैने अपनी माँ नहीं देखी। आप मेरी माँ की तरह हो। घर चलाने के लिए मुझे काम तो करना है। पर, किसी दिन ना आ पाऊँ या देर से आऊँ तो नाराज मत होना। शायद कुछ हफ्ते, कुछ महीने बस।''

मैं उठ कर उसके पास चली गई थी और उसे अपने अंक में भर लिया था। मेरे आँचल में वह अपने भीतर का सारा दु:ख उड़ेल रही थी और मैं अनायास बुदबुदा रही थी – तुम सही हो लक्ष्मी बेटा, काश सब तुम्हारी तरह सोच पाते।

***

जुड़े गाँठ पड़ जाए....

ज्योति जैन

जैसे ही अनुभा ने कविता समाप्त की, तालियों से वो छोटा सा हॉल गूँज उठा। उसने दोनों हाथ मिलाकर हल्के से सिर झुकाकर सबका अभिवादन किया और अपने स्थान पर बैठ गई।

''वाह क्या बात है अनुभा जी बहुत ख़ूबसूरत कविता है उतने ही ख़ूबसूरत आपके विचार। काँग्रेचुलेशन्स।'' कहते-कहते जुबेर ने अपना हाथ अनुभा की ओर बढ़ा दिया।

''थैंक्स कहते हुए अनुभा ने भी हाथ मिलाया और धीरे से छोड़ दिया।

''क्या अनुभा जी! आप तो बड़ी छुपी रुस्तम हैं, रंगोली, डिबेट, स्पोर्ट्स और अब कविता भी और क्या-क्या प्रतिभा है आपमें? आप सचमुच बहुमुखी प्रतिभा की धनी हैं। अगली बार फिर कुछ नया।''

''अरे, ऐसा कुछ नहीं सर, आप मुझे संकोच में डाल रहे हैं।'' अनुभा ने बात काटते हुए कहा। अपने से सीनियर के मुँह से प्रशंसा सुन वो सचमुच संकोच का अनुभव कर रही थी।

''अरे सच अनुभा तुम तो ऑल इन वन हो, टू इन वन भी नहीं भई।'' अनुभा की एक और सीनियर वैजयंती ने कहा और सबने हँसकर उसका समर्थन किया और सभी अपनी ओर से अनुभा को बधाई दे रहे थे। सबसे मुस्कराकर बधाई स्वीकारती अनुभा की नज़र सामने की ओर उठी तो उसे घेरकर खड़े सारे सहयोगियों के कुछ पीछे हो या यानी दूसरे घेरे में खड़ा हो गया जुबेर उसे ही एकटक देख रहा था। निगाहें मिलते ही वो थोड़ी झेंप गई और फिर धीरे-धीरे सब इधर-उधर हो गए। एक्टिविटी आवर खत्म हो चले थे।

दरअसल जिस ऑफिस का हिस्सा अनुभा व जुबेर थे, वहाँ उनकी बॉस दत्ता मैडम थी। बेहद शानदार व्यक्तित्व की धनी थी दत्ता मैडम। थोड़ी सी गोल मटोल, मगर फुर्तीली सलीके से पहनी साड़ी, मोटी फ्रेम का चश्मा, माथे पर बड़ी सी बिन्दी, हाथ में पहना लाल-सफेद कड़ा व उनका उच्चारण उनके बंगाली होने की चुगली करते थे। दत्ता मैडम कला व साहित्य प्रेमी थी। और उनका मानना था कि दफ़्तर के एक सरीखे रुटीन से एम्प्लॉयज़ को बोरिंग लगता है। सो उन्होंने हर दूसरे शनिवार के तीन घण्टे तय कर रखे थे जिसमें दफ्तर के लोगों को अपना हुनर दिखाने का मौका मिले। डिबेट, भाषण, कविता, कथा, रंगोली, स्पोर्ट्स, गीत आदि स्पर्धाएँ होती थीं तथा साथ ही कभी-कभी सोशल एक्टिविटी।

अपनी बॉस की तरह अनुभा भी कला व साहित्य से गहरा लगाव रखती थी व हर क्षेत्र में सक्रिय रहती थी। हर विधा में वो अपनी छाप छोड़ रही थी और आज की कविता के लिए तो उसे बड़ी वाहवाही मिली थी। बॉस की ओर से भी। और जुबेर तो उसकी तारीफों के पुल बाँधता नहीं थकता था।

जुबेर उसके बारे में सोचते-सोचते अनुभा की नज़रों के सामने फिर उसका चेहरा, और खुद के चेहरे पर गढ़ी उसकी आँखे आ गई।

ओफ् मैं ये क्या, और क्यों सोच रही हूँ ? स्टूपिड कहीं की और उसने अपने हाथ से धीरे से स्वयं के सिर पर चपत मारी।

लगभग एक वर्ष होने को आया था अनुभा को इस दफ़्तर में। एमबीए करके पहला जॉब यहीं लगा था। अच्छी सेलरी थी दफ़्तर का वातावरण अच्छा था और सबसे बड़ी बात उसकी बॉस बहुत अच्छी थी। ''औरत ही औरत की शत्रु होती है'' वाली कहावत को धता बताती उसकी बॉस की अपने सभी मातहतों (विशेषकर लड़कियों) के साथ बड़ी अच्छी ट्यूनिंग थी। एक आदर्श बॉस के सारे गुण दत्ता मैडम में थे। पिछले कुछ माह से उन्होंने ये नए इवेन्ट शुरू करवाए थे। कभी कोई एक्टिविटी ऑफिस वालों के लिए तो कभी समाज सेवा भी मसलन किसी लेडी डॉक्टर को बुलाकर लड़कियों के सरकारी स्कूलों में हेल्थ अवेरनेस के प्रोग्राम कभी मुफ्त सेनेटरी नैपकिन बँटवाना इत्यादि।

ज्योति जैन, 1432/24, नन्दानगर, इन्दौर-452011 मप्र
मोबाइल: 9300318182
ई-मेल : jyotijain218@gmail.com

ऐसी बॉस के साथ अनुभा अपने जॉब से बहुत खुश और बेहद संतुष्ट थी। ऑफिस के बाकी सहयोगी भी सब अच्छे थे। सब कुछ अच्छा ही चल रहा था। लेकिन पिछले कुछ दिनों से अनुभा जुबेर की आँखों में कुछ महसूस कर रही थी और वो ऐसी नादान भी नहीं थी। वैसे भी स्त्री की छठी इन्द्री तेज़ होती है और देखकर ही समझ जाने का ईश्वर प्रदत्त गुण उनमें रहता है। वह भाँप लेती हैं कि किसकी नज़रें पाक हैं व किसकी आँख में सुअर का बाल है!

तो उसने जुबेर की निगाहों के शब्द पढ़ तो लिए थे, पर वह उन्हें समझना नहीं चाह रही थी। जानती थी कि विधर्मी के प्रति उसके परिजनों की क्या राय होगी। और वो घर में कोई भूचाल नहीं लाना चाहती थी।

लेकिन कहते हैं ना कि प्यार अंधा होता है तो कभी-कभी लगता है प्यार नासमझ भी होता है। समझ रहे हैं कि ग़लत है, फिर भी उस राह पर चल पड़े। वैसे जुबेर उसे भी अच्छा व एक सुलझा हुआ इन्सान लगता था। दोनों ही एक-दूसरे के धर्म का सम्मान करते थे। धीरे-धीरे उन्हें लगने लगा था कि वे एक-दूसरे के साथ खुश रहेंगे। हिन्दू व बोहरा परिवार का मेल जरा मुश्किल ही लगता था लेकिन दफ़्तर वालों को जब पता चला तो उन्हें हैरानी हुई कि दोनों के परिवार वाले इस विवाह को राज़ी हो गए थे। कैसे क्या पहले विरोध फिर पुत्र व इकलौती पुत्री मोह इन सारी अटकलों के साथ आख़िरकार ये रिश्ता तय हो गया था।

दोनों प्रसन्न थे। भावी जीवन के सपनों का नीड़ बुनने लगी थी अनुभा। रिश्ते को सामाजिक सहमति मिल जाए तो ठीक रहता है। यही अनुभा महसूस कर रही थी। 'रोका' जैसा हो जाना यानी साथ आने-जाने, घूमने का सर्टिफिकेट मिल जाना। सब कुछ शीतल, मद्दम बहती बयार सा चल रहा था, पर अचानक ही जैसे शांत झील में मानों किसी ने कंकड़ फेंक दिया था।

उस दिन ऑफिस के बाद सबका कॉफी पीने जाने का प्रोग्राम बन गया। सब अनुभा व जुबेर को छेड़ रहे थे कि दो कंजूसों ने मिलकर एक पार्टी तक नहीं दी।

''अरे कॉफ़ी ही पिला दो भाई।'' वैजयंती पीछे पड़ी और धीरे-धीरे उन 8-10 जनों का ग्रुप तैयार हो गया कॉफ़ी पीने जाने को।

सबने अपने-अपने ऑर्डर किए और गपियाने लगे। आज तो जाहिर है उनका टारगेट अनुभा व जुबेर ही थे।

''ते हिम्मत तो बहु करी जुबेर।'' लोचन, जो कि गुज्जु थी, ने जुबेर से कहा।

''शायद तुम्हारे यहाँ से इतना आसान नहीं था न?'' रोशन ने पूछा।

''अरे, आसान तो अनुभा के यहाँ भी नहीं था? इसके पापा ओ माई गॉड क्यों अनुभा?'' वैजयंती ने अनुभा की ओर देखकर पूछा।

''आसान तो कुछ भी नहीं था, पर थैंक गॉड, अभी सब ठीक है।'' अनुभा ने मुस्कराकर जुबेर की ओर देखा।

''पर यार।'' दीपक जुबेर से मुखातिब था- ''मैंने सुना है तुम्हारे यहाँ बड़ा कट्टर मामला रहता है.... तेरे पेरेन्ट्स ।''

''हाँ वो तो है कुछ मुश्किलें तो थीं पर पेरेन्ट्स मान गए तभी तो इतना समय लग गया यार उन्हें मनाने में तो निकाह से पहले, बस एक छोटी सी फार्मेलिटी रहेगी अनु के धर्म परिवर्तन की बस फिर तो कोई अड़चन नहीं।''

अनुभा के हाथ से कॉफी छलक गई ''क्या ? जुबेर !'' उसे अपनी ही आवाज़ अनजान लग रही थी।

कुछ सेकेण्ड्स का मानों मौन हो गया था। कुछ के चेहरे असमंजस में थे, और कुछ चेहरों पर ऐसे भाव थे ''हमें तो पता था यही होगा।''

हालाँकि दोनों ने इतनी समझदारी दिखाई कि कोई भी डिस्कशन सबके सामने न हो। माहौल को सामान्य बनाने का भरसक प्रयास करते हुए पार्टी खत्म हुई सब अपनी-अपनी गाड़ी की ओर बढ़ गए। और जुबेर अनुभा को छोड़ने अपनी गाड़ी की ओर बढ़ा।

जैसा उसे व अन्य लोगों को अंदेशा था, अनुभा ने एक बार भी उसके साथ जाने से इन्कार नहीं किया व सबको बॉय बोल गाड़ी का गेट खोलकर जुबेर के बगल वाली सीट पर जा बैठी।

कुछ देर के मौन के बाद जुबेर ने गला खँखारकर कुछ बोलने का उपक्रम किया लेकिन उससे पहले ही अनुभा ने संयमित स्वर में कहा- ''सुनिए, जुबेर वहाँ पार्क वाली साइड पर गाड़ी रोकिएगा।''

जुबेर ने गाड़ी साइड में रोक ली। और कहा - ''बात इतनी सी है अनु कि क्या फर्क पड़ता है। यार निकाह के बाद तो तुम आज़ाद ही रहोगी अपने धर्म का पालन जैसे चाहो करना बस फिलहाल के लिए और मैं तुम्हें बताने ही वाला था।''

''देखिए जुबेर अनुभा का स्वर बेहद संतुलित था। आप मुझे बताने वाले थे या नहीं बताया या क्यूँ नहीं बताया से ज़्यादा मायने मेरे लिए इस बात के हैं कि मैं क्या चाहती हूँ । और मैं तुम्हारे बल्कि हर धर्म का सम्मान करती हूँ, लेकिन मैं अपने धर्म का भी उतना ही सम्मान करती हूँ। मेरी आस्थाएँ मेरे रग-रग में बसती है, उन्हें एक ही झटके में तोड़ देना नामुमकिन है।''

''अरे तोड़ने या छोड़ने को कौन कह रहा है यार।'' जुबेर ने समझाना चाहा।

''सॉरी जुबेर पर मैं ये सांकेतिक रूप से भी नहीं कर पाऊँगी मेरे पेरेन्ट्स ने मेरी खुशी चाही इसलिए उन्होंने इस रिश्ते को हाँ कहा लेकिन उनकी कोई शर्त नहीं थी। वो बस अपनी बेटी की खुशी चाहते हैं, लेकिन ऐसी कोई शर्त रखते हैं, तो प्यार कहाँ है?''

''ये प्यार ही तो है अनु जो मैंने तुम्हें देखते ही तुम्हारे लिए महसूस किया था।'' जुबेर का स्वर अब कुछ भीगा हो चला था। शायद उसमें प्यार की नमी भी थी।

''नहीं जुबेर'' अनुभा अब तटस्थ थी। ''वो फिर प्यार नहीं सिर्फ आकर्षण रहा होगा। प्यार होता तो आप मेरे धर्म को मान देते।'' अब उसका स्वर भी भीगने लगा था।

''पता है जुबेर हमारे धर्म में धागों और गाँठों का बड़ा महत्त्व है। नज़र के धागे, रक्षाबंधन पर धागे, वट सावित्री पर धागे और गाँठें, यहाँ तक कि विवाह में सप्तपदी में भी गठबंधन यानी गाँठ ही होती है। और वो गाँठ होती है प्यार और विश्वास की एक दूसरे के मान की। लेकिन कहते हैं कि प्रेम के धागे को नहीं तोड़ना चाहिए क्योंकि फिर वो जुड़ता नहीं और जुड़ता है तो गाँठ पड़ जाती है और वैसी गाँठ वाला रिश्ता मुझे क़ुबूल (मंज़ूर) नहीं।''

''सो अब हम इस बारे में कोई बहस न करें और अब प्लीज़ मुझे छोड़ दो अपने घर।''

***

छोछक

रेनू यादव

'बधाई हो, लाला हुआ है' अस्पताल के रिसेप्शन के सामने सरोज की सास प्रेमावती अपनी समधिन मनोहरी देवी से गले मिलते हुए कहती हैं।

'आपको भी बधाई बहन जी... कौन-से रूम है लाला' ?

'रूम नं. 205'।

अस्पताल में अंदर बढ़ते हुए प्रेमावती को याद आया कि समधी कहीं पीछे ही छूट गए हैं, 'कहाँ रह गएँ भाई साहब' ?

पीछे मुड़ कर देखा तो तीन-चार झोलों के बोझ से लदे-फदे धीरे-धीरे कदम बढ़ाते समधी हरिराम हॉस्पिटल से अंदर की ओर प्रवेश कर रहे थे। बोझ का दबाव महसूस करते ही झट से प्रेमावती ने तुरन्त अपने बेटे मनोज को झोला उठाने का आदेश दे दिया। मनोज एक हाथ से अपने श्वसूर हरिराम का पैर छूते हुए दूसरे हाथ से झोला पकड़ लिफ्ट की ओर बढ़ गया। हरिराम भी पीछे-पीछे लिफ्ट की ओर बढ़ गए।

रूम नं. 205 में पहुँचते ही मनोहरी देवी ने बेड पर लेटी अपनी बेटी सरोज को झुक कर गले लगाया, उसके सर पर हाथ फेरा। बगल में झूले में झूलते लाला को उठाकर पुचकारा और उसकी गर्दन सँभालते हुए हरिराम को थमाने का प्रयास करने लगीं। हरीराम लाला के माथे को प्यार से चूमने लगे, 'युग-युग जियो लाला। हमेशा खुश रहो, सुख-समृद्धि आए।'

सुख-समृद्धि कहते-कहते उनकी आँखें नम हो गईं, आवाज़ गले में अटक गई, चेहरा पीला पड़ गया। मनोहरी देवी हरिराम की स्थिति भाँपते हुए बात बदलने लगीं, 'बहुत भाग्यशाली होगा लाला... सबका नाम रोशन करेगा'। कहते हुए लाला को अपनी गोदी में थाम सरोज के पास जाकर बैठ गई। हरिराम की रुलाई पकड़ी न जाय इसलिए वह अपने चेहरे को गमछे से पोंछते हुए तेज़ी से कदम बढ़ाकर कमरे से निकल गए और अस्पताल के पीछे जाकर ही रुके। अपने गमछे से मुँह दबाकर फफक-फफक कर रो उठे हरिराम। जी शांत होने पर वापस कमरा नं. 205 में पहुँच गए, जैसे कि कुछ हुआ ही न हो। उन्होंने देखा कि समधिन प्रेमावती उन सभी झोलों में से सामान निकाल-निकाल कर सामान के वज़न का अंदाज़ा लगाते हुए आलमारी में रख रही थी, 'छुहारे पाँच किलो से कम नहीं होंगे, है न ?... बादाम और काजू भी लगभग आठ किलो होगा ही... सात डिब्बे घी लाने की क्या जरूरत थी समधी जी ? वैसे... घर का बनाया हुआ शुद्ध देसी घी लग रहा है...।'

'क्या अम्मा... रखना है तो ऐसे ही रख दो... गिनती करने की क्या जरूरत है' !

रेनू यादव, फेकल्टी असोसिएट, भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग (हिन्दी), गौतम बुद्ध युनिवर्सिटी, यमुना एक्सप्रेस-वे, गौतम बुद्ध नगर, ग्रेटर नोएडा - 201 312
मोबाइल: 9810703368
ई-मेल: renuyadav0584@gmail.com

चिड़चिड़ाते हुए मनोज ने कहा।

'देखना पड़ता है न लाला... हम सबके लिए इतनी खुशिहाली की बात है। ऐसे ही थोड़े भाई साहब झोला भर-भर कर सामान लाए हैं। कितने सारे ताज़े फल, गोद के लड्डू और भी कितने खाने के सामान ले आए हैं अपनी लाली के लिए। गोद के लड्डू तो छः महीने से कम नहीं चलेगा।'

'ये तो हमारे लिए सौभाग्य की बात है बहन जी' मनोहरी देवी ने अपने पति का चेहरा निहारते हुए ठंडे स्वर में कहा।

दोनों समधिन आपस में गाल बजाने लगीं (बातों में व्यस्त हो गईं) और हरिराम धीरे- धीरे सीढ़ियों से उतरते हुए अस्पताल के बाहर आ गए। वहाँ मनोज अपने गाँव वालों के साथ खड़ा मिला। इतने सारे लोगों को सड़क के किनारे पेड़ की छाँह में बैठे-लेटे देख हरिराम के मुँह से निकल पड़ा, 'ये तो लग रहा है पूरा दादरी उलट पड़ा है' ?

'नहीं पापा जी, ये तो सिर्फ हमारे गाँव के लोग हैं' ? मनोज का उत्तर सुन कर सब लोग हँसने लगें। देश-दुनियाँ की बातें करते हुए लोगों ने घंटों गुज़ार दिए लेकिन सबके बीच चुप्पी साधे हरीराम अफनाहट के मारे धरती में धंसे जा रहे थे।

शाम के समय घर लौटते हुए भी हरिराम की खामोशी ने मनोहरी देवी को चिंतित कर रखा था। घर पहुँच कर लोटा में पानी थमाते हुए आख़िर मनोहरी देवी ने पूछ ही लिया, 'क्या बात है सरोज के पापा, आपको लाला होने की खुशी नहीं है' ?

'कैसी बात करती हो, खुशी क्यों नहीं होगी...'

'आपका चेहरा तो कुछ और ही कह रहा है' !

रात को भैंसों को सानी देकर हरिराम खाट पर लेटे-लेटे आकाश में गुमसुम चाँद तारों को एकटक निहारे जा रहे थे। उन चाँद-तारों को रह-रह कर अख़बार की वे ख़बरें ढक लेतीं, जिन्हें हरिराम ने कुछ समय पहले ही मोटे-मोटे अक्षरों से लिखे हेडिंग में पढ़ा था 'मनचाहा छोछक न मिलने पर विवाहिता को आत्महत्या के लिए ससुराल वालों ने उकसाया', 'छोछक में कार नहीं मिलने पर विवाहिता की हत्या', 'छोछक के लिए जलाकर मारा'...।

अचानक से चाँद-तारे खून से लथपथ

हो गए... सरोज हरिराम की बाँहों पर लुढ़क पड़ी, उसके कपड़े खून से तर-बतर है... चारों ओर खून ही खून पसरा पड़ा है। हरिराम मन में ही चिल्ला पड़े 'नहीं... नहीं... मैं तुझे कुछ नहीं होने दूँगा...' वे इस भयानक स्वप्न से काँप उठे। उनकी आँखें फिर से चाँद पर आ टिकीं।

उन्होंने खुद को झुठलाते हुए सोचा 'ये तो सिर्फ मेरे मन का वहम है...। देखो कितनी सुन्दर चाँदनी छिटकी है...। चाँदनी जीवन में रोशनी और शांति दोनों फैलाती है। हमारी सरोज भी तो ऐसे ही चाँदनी के समान पवित्र है...' अचानक से पवित्र चाँदनी की रोशनी आग के गोले में तबदील हो गई। चाँद धू-धू करके जलने लगा उसमें से सरोज चिल्लाने लगी, 'पापा जी...बचा लो... मुझे बचा लो' पूरे आसमान में आग की लपटें फैल गईं। हरिराम आग में कूदना चाह रहा है पर कूद नहीं पा रहा... उसके कदम भारी हो गए... हाथ हिल नहीं रहा... पूरा ज़ोर लगाने के बाद भी उसके शरीर में कंपन नहीं हो रही... वह तड़फड़ा रहा है, सरोज कहीं दिखाई नहीं दे रही सिर्फ उसकी आवाज़ सुनाई दे रही है... वह अपने आपको झटकने की पूरी कोशिश कर रहा है पर शरीर पथरा गया है...। तब तक किसी ने उसे ज़ोर से हिलाया और वह अचकचा कर उठ बैठा।

'कुछ तो बताइए सरोज के पापा ? क्या बात है' ? मनोहरी देवी की आवाज़ कानों में गूँजी।

'तुम कब आई, सोई नहीं अभी' ? हरिराम काँपती आवाज़ में बोल पाए।

'आप इतने चिंता में हैं, नींद कैसे आ सकती है' ?

'चिंता मत करो... मैं ठीक हूँ। तुम सो जाओ'।

बहुत देर तक बैठने के बाद भी जब हरिराम से कोई जवाब नहीं मिला तब वह उठकर घर में चली गई। हरिराम सोने का बहाना बहुत देर तक नहीं कर सकें, करवटें बदलते हुए पूरी रात गुज़र गई।

सिर्फ छः महीने ही तो बीते हैं रेशमा का विवाह हुए। छोटी बेटी थी इसलिए हरिराम ने सभी परेशानियों को दरकिनार कर दिल खोल कर खर्च किया था। दहेज देने के लिए उन्होंने अपने पूरे जीवन की बचत पी.पी.एफ. निकाल कर दे दिया। आख़िर पोस्ट-मैन की कमाई ही कितनी होती है। दिन भर धूप में जल-जल कर जितना कमाया वह परिवार के गुज़ारे में लगा दिया, जो बचा था मात्र पी.पी.एफ.। इतना ही नहीं अपने पुरखों की ज़मीन गिरवी रख दी, ताकि दरवाज़े पर बारात की इज़्ज़त हो सके। आख़िर पूर्वजों ने जो इज़्ज़त कमाई है उसे दाँव पर यूँ ही तो नहीं लगा सकते। जिस लड़की की शादी है अगर सिर्फ उसके बारात और रिश्तेदारों को देखना हो तो अलग बात..., यहाँ तो हर शादी में सभी रिश्तेदारों को देखना पड़ता है ! हरिराम ने खुद की पाँच बहनों और बहनोईयों को करीब दस तोले के गहने दे दिए, हालाँकि तीन बहनों का काम अँगूठी से चल सकता था लेकिन दो बहने बड़े घर में ब्याही गई थीं। उन्हें तो सोने की चेन देने ही थे फिर तीन बहनों के साथ ना-इंसाफी कैसे की जा सकती थी ! अपनी लाली सरोज भी किसी ऐरे-गैरे घर में तो ब्याही नहीं गई, उसके भी श्वसुर का पूरे गौतम बुद्ध नगर में नाम है। सो उसने भी अपनी अम्मा से कहलवा भेजा, 'सोने के कड़े देना पापा जी, वरना ससुराल में मेरी नाक कट जाएगी'। फिर क्या था उसे मोटे-मोटे दो कड़े बनवाने पड़े और दामाद को चेन। कपड़े लत्ते और हाथ पर धरने के लिए कम से कम दस-दस रुपये के छुट्टे अलग से, इनकी तो कोई गिनती ही नहीं होती।

दो साल पहले राहुल के विवाह के लिए बैंक से लोन लिया था वह भी पूरा ही नहीं हुआ। अब तो बैंक वाले घर तक आने लगे

हैं। उसकी दुल्हन सुनीता के कुआ पूजन के लिए मनोहरी देवी को अपने कुछ गहने भी बेचने पड़े। राहुल कमाता-धमाता तो है नहीं, घर में बैठे-बैठे उसकी और उसके पत्नी की ज़रूरतें पूरी करते रहो। उसकी लाली की पढ़ाई की चिंता भी नहीं है उन्हें।

मनोहरी देवी हरिराम का मुँह देख कर बार-बार उनसे पूछती, 'खुश नहीं हो क्या?'

'कौन-सा बाप होगा जो अपने लाला-लाली की खुशी में खुश नहीं होगा। मैं चाहता हूँ कि मेरे तीनों बच्चे खुश रहें, खूब बरक्कत हो'। आधी बात मुँह से कहकर हरिराम आधी बातें मुँह में दबा ले गए, 'कैसे कहूँ कि रिटायर होने में सिर्फ दो साल बाकी है, बैंक का लोन चुकता नहीं हुआ, खेत गिरवी है। अब ये छोछक...।'

करीब सप्ताह भर में हरिराम बुलन्दशहर के सभी बैंकों के चक्कर लगा आए पर कहीं से लोन नहीं मिला। फिर वे अपने नाते-रिश्तेदारों के वहाँ मिठाई ले ले कर जाने लगे और सबको खुश हो-होकर लाला के जन्म की ख़बर सुनाने लगे। एक दिन बड़े घर में ब्याही बहन कुमकुम के घर पहुँच गए, 'मेरी लाली सरोज को लाला हुआ है। बड़ा ही सुन्दर है। हम बड़े खुश हैं। आपको तो पता ही है कि सवा महीने में कुआ पूजन के दिन छोछक ले जाना होता है। अब बड़े घर में ब्याही है तो छोछक भी ऐसा ले जाना होगा कि दुनियाँ देखती रह जाए।'

'हाँ हाँ क्यों नहीं... ससुराल वालों के मान-मर्यादा का खयाल तो रखना ही पड़ता है। आपके भी पुरखों को देश-जवार जानता ही था, आखिर उनकी भी इज्ज़त का सवाल है'। कुमकुम के पति शेखर ने जवाब दिया।

'इसीलिए तो हमने राहुल और रेशमा के विवाह में कोई कसर नहीं छोड़ी, हमने आप लोगों के लिए भी आप सबकी हैसियत के हिसाब से ही जेवरात बनवाए थे... सुना था आप सबके घर वाले चेन देख कर बड़े खुश हो गए थे।'

'हाँ हाँ... मेरा भी चेन देखकर लोग कहते कि क्या चेन मिला है और कुंकुम के गले में हथेली भर का लटकता लॉकेट देख कर कुछ लोग तो ह हा ही गए कि इतना बड़ा लॉकेट का माला...' !

'तो आपको क्या लगता है कि छोछक में क्या-क्या ले जाना चाहिए ताकि हमारा भी नाम हो और हमारी लाली का भी मान-सम्मान बढ़ जाए। आखिर दादरी से दनकौर है ही कितनी दूर... दोनों जगह के रीति-रिवाज लगभग एक जैसे ही होते हैं... सो आपको यहाँ की सारी स्थिति पता ही है।'

'देखिए हरिराम जी... यहाँ किसी के पास पैसों की कमी तो है नहीं। ग्रेटर नोएडा का जब नगरीकरण हो रहा था तब अथॉरिटी से गाँव वालों को उनके ज़मीन के बदले सरकारी मुआवजा मिला है। उसी से अधिकतर लोगों ने आलीशान बँगले बनवा लिया और दो-दो चार-चार गाड़ियाँ खरीद लीं। गाड़ियाँ किराए पर चलती हैं तो आमदनी भी अच्छी हो जाती है। अब खाए-पीए-अघाए लोगों को कम क़ीमत का सामान देंगे तो इज्ज़त तो करेंगे नहीं। इसीलिए जो भी देना है उन्हें उनकी हैसियत से थोड़ा बढ़कर ही देना होगा।'

'मैं भी यही चाहता हूँ। लेकिन एक मजबूरी है।'

'जन्मजात रईस हैं आप लोग तो, फिर आपको क्या मजबूरी हो सकती है' ? शेखर ने अपने दाएँ पैर के ऊपर बायाँ पैर चढ़ाते हुए कहा।

'समय एक जैसा नहीं रहता। इधर कुछ परेशानियों ने घेर लिया है।'

'ऐसी क्या बात हो गई ? हम रिश्तेदार हैं आप बेझिझक कह सकते हैं।'

'सोच रहा हूँ कैसे कहूँ।'

'हम लोगों से नहीं कहेंगे तो किससे कहने जाएँगे, यदि हमसे कुछ हो पाएगा तो हम ज़रूर करेंगे।'

'आप तो जानते ही हैं कि हम लोग एन.सी.आर. में रहते हैं। जितनी तेज़ी से इसकी प्रगति हो रही है उतनी ही तेज़ी से यहाँ की मँहगाई बढ़ रही है। दो साल पहले राहुल का विवाह किया था, इस साल रेशमा का। कर्ज़ से लद गया हूँ। अब छोछक के लिए कहाँ से पैसे ले आऊँ समझ में नहीं आ रहा।'

'.....'

'मैं समझता हूँ कि आप बड़े लोग हैं और जो जितना बड़ा होता है उनका खर्चा भी उतना ही बड़ा होता है। लेकिन रिश्तेदारी के नाते कह रहा हूँ कि अगर कुछ...'

'.....'

'.....'

'आज कल हमारी भी हालत थोड़ी खस्ता है। मैं देखूँगा अगर कुछ कर सका तो। आख़िर रिश्तेदार सहायता नहीं करेंगे तो कौन करेगा। चिंता मत कीजिए... मैं समझ गया... अभी आप निश्चिंत होकर घर जाइए। मैं बताऊँगा।'

हाथ जोड़ हरिराम चल तो दिए पर शेखर के बातों पर भरोसा नहीं हो पा रहा था और अगर शेखर ने इंतज़ाम किया भी तो कितना करेगा कुछ निश्चित नहीं था।

हफ़्ते भर तक कुछ जवाब न मिलने पर हरिराम ने अपने दोस्तों के घर जाना शुरू कर दिया। बुलन्दशहर में जिनको-जिनको वे जानते सबके घर मिठाई पहुँचा आए। जो भी पैसे थे मिठाई में उड़ गए। कहीं से कोई बात न बन पाई। अब हरिराम थक-हार कर घर बैठ गए।

कुआ पूजन में बस दस दिन बचे थे। हरिराम को चिंता से बुखार आ गया। उन्होंने पचास-पचास हज़ार में अपनी दो गाभीन भैंसों को बेच दिया। आज के समय में एक लाख न तो हरिराम की इज्ज़त बचा सकते थे न ही सरोज के परिवार वालों के लिए काफी था। मनोहरी देवी ने हरीराम की स्थिति भाँप ली। उन्होंने पीहर से मिले अपने गहने बेचकर एक लाख जुटाया।

दो लाख की रकम लेकर पति-पत्नी अपने परिवार के सामने बैठे। हरिराम ने मंत्रणा करते हुए कहा, 'हमारे पास अब दो लाख हैं। इस दो लाख में कितने गहने और कितने कपड़े हो पाएँगे, ये सोच समझ कर बताओ। हम चाहते हैं सस्ते में सब निपट जाए।'

'बहुत बड़ा परिवार है सरोज के पापा। सस्ता-सस्ता सामान भी अगर खरीदेंगे तब भी नहीं हो पाएगा। और अगर सस्ता सामान देंगे तो सरोज की उसके घर में क्या इज्जत रह जाएगी !'

'उसके घर में आदमी कितने हैं और औरतें कितनी ? सबसे पहले यह देखना होगा।'

'सरोज के पति खुद तीन भाई और तीन बहन हैं, उसके श्वसुर तीन भाई और उनकी दो बहने हैं। बड़े श्वसुर के तीन लड़के और एक लड़की और छोटे श्वसुर के दो लड़के

ही हैं। उनकी आजी अभी जिन्दा ही हैं। उस तरह मिलाकर ग्यारह मर्द और उनकी पत्नियाँ ग्यारह हुईं, छः बहनें, एक आजी और घर में सबके मिलाकर पच्चीस बच्चे हैं, जिनमें से बारह लड़के और तेरह लड़कियाँ हैं।'

'इस तरह अगर हम सबके लिए अच्छे कपड़े खरीदना चाहें तब भी नहीं हो पाएगा। सस्ते में खरीद लें तो हो जाएगा। लेकिन मिठाई और गहनें ?'

'.....' कुछ देर तक खामोशी छाई रही।

कुछ देर के बाद राहुल की पत्नी सुनीता ने कहा, 'पापा जी, आप चाहो तो मेरे गहने बेच दो।'

'नहीं बेटा... तुम्हारे गहनों पर सिर्फ तुम्हारा हक है। हम कुछ न कुछ इंतजाम कर लेंगे।' कहते हुए हरिराम उठ कर वहाँ से चले गए। पीछे-पीछे मनोहरी देवी भी पहुँची, 'अब क्या करेंगे हम ? हमारी लाली की इज्जत क्या रह जाएगी उसके ससुराल में। पहला बच्चा है उसका?'

हरिराम चुपचाप आँख बंद कर दीवार से सिर सटा कर बैठ गए।

ज़मींदार, साहूकार कबके मर चुके हैं पर उनकी आत्माएँ अभी भी कुछ लोगों में जीवित हैं। जो ज़रूरत के समय हरिराम जैसे लोगों को थाम लेते हैं। हरिराम को उन्हीं आत्माओं ने याद किया और हरीराम पहुँच गए धनाढ्य राम नारायण जी के पास। खेत से लेकर बिजनेस तक सब की पाई- पाई जानकारी रहती है उन्हें। जैसे पैसा देते हैं वैसे ही वसूलना भी जानते हैं। उनकी निगाहों से कोई भी ज़रूरतमंद बच नहीं पाता, एक न एक दिन उनका शरणार्थी हो ही जाता है। सच तो यही है कि चाहे क़ीमत कोई भी चुकानी पड़े लेकिन ऐसे समय में राम नारायण जैसे लोग ही भगवान् बनकर खड़े होते हैं। समय पर खड़े होकर बहुतों की नाक कटने से बचा ली है राम नारायण ने। जैसा नाम वैसा ही काम... सृजन और संहारक।

'क्या भाई हरिराम ! अब ऐसे समय में भी बताने में संकोच करोगे।' गद्दीदार सोफे पर बैठते हुए राम नारायण ने कहा।

'सोचा था इंतजाम हो जाएगा, लेकिन...' कहते-कहते चुप हो गए

हरिराम।

'बैठो बैठो भाई। इतने दिनों से हमें चिट्ठी पहुँचाते हो और जरूरत के समय याद भी ना किया'

'.....'

'मैं जानता नहीं हूँ क्या कि कितनी कमाई होती है इस पोस्ट-मैनी से...। (कुछ सोचते हुए) पुरखों में एक पीढ़ी निकम्मी निकल गई तुम्हारी। धन-दौलत शराब में गेर (डाल) दिया। वरना कौन नहीं जानता था तुम्हारे खानदान को।'

'.....'

'बिटिया को लाला हुआ और मिठाई भी नहीं लाए।' हँसते हुए चिढ़ाया राम नारायण ने। शरमा के रह गए हरिराम। घर से निकलते समय मिठाई के विषय में उनको ख़्याल तक नहीं आया था।

'अच्छा कोई बात नहीं... मैं समझता हूँ समय को... समय बहुत बलवान होता है। तुम पर भी लक्ष्मी जी की कृपा होगी।'

'मेहरबानी होगी आपकी, जो इस समय...'

'अरे भाई... मेहरबानी की क्या बात है। तुम्हारे परेशानियों का पता चलते ही तुम्हें तुरन्त बुलवा भेजा, वरना तुम तो इधर लाला की खुशखबरी भी सुनाने नहीं आते। अच्छा बताओ कितने दिन बचे है कुआ पूजन में?'

'सिर्फ दो दिन?'

'ओ हो ! अब तक तो सारा इंतजाम हो जाना चाहिए था। जाकर खरीदारी करो। कितने पैसों की जरूरत है' ?

'मेरे पास सिर्फ दो लाख हैं...'

'अरे भाई... आज के समय में दो लाख में क्या होता है ! अपने खानदान की और लाली के खानदान की इज्जत भी तो बचानी है। अच्छा बताओ कितने लोग हैं घर में?'

'ग्यारह मर्द, अट्ठारह औरतें, सरोज के लाला को छोड़ कर घर में बारह लाला हैं और तेरह लाली।'

'यह तो बड़ी समस्या है, बहुत पैसे लग जाएँगे। सबको कपड़े लत्ते और छोटे-मोटे जेवर दोगे ही। लाली और उसका लाला... और उसकी सास को भारी जेवर ले जाना ही पड़ेगा। साथ में कुछ तो कैश देना ही पड़ता है।'

'इतना तो रिवाज है ही'

'इतना ही रिवाज नहीं है बल्कि बहुत लोग तो इलेक्ट्रॉनिक सामान भी देते हैं और इन सबमें फल और मिठाई की कहीं गिनती ही नहीं। हम तो कहते हैं भाई कि अब ये रीति-रिवाज टूटना चाहिए, आदमी कंगाल हो जाता है।... पता नहीं किसने बनाई ऐसी रीतियाँ।... पर क्या करें नहीं निबाहेंगे तो समाज जीने नहीं देगा... कहने के लिए एन.सी.आर में हैं पर सोच तो अभी भी पुरानी ही है... हमें तुम्हारे लिए दुःख है हरिराम... वैसे ये दहेज में तो गिना नहीं जाता खुशी में जितना चाहो लुटा दो।'

'खुशी तो बहुत है, लेकिन परिस्थिति खुश नहीं होने दे रही...' मायूस से हो गए हरीराम।

'अच्छा बताओ कितने पैसों में हो जाएगा तुम्हारा काम' ?

'यही कोई पाँच-सात लाख का इंतजाम हो जाए तो हम किसी तरह निपटा लेंगे।'

'अरे भाई... इतने बड़े घर में छोछक ले जा रहे हो, भला पाँच-सात लाख में क्या होगा ? सस्ते के चक्कर में मत पड़ना पूरे जात-बिरादरी में थू-थू हो जाएगी। ऐसा न हो कि पैसे भी खर्च करो और लोग तुम पर हँसे भी... ऐसा ही था तो बड़े घर में लाली को ब्याहना ही नहीं चाहिए।'

'इससे अधिक कर्ज ले लिया तो चुकाएँगे कैसे' ?

'उसकी चिंता क्यों करते हो। ज़मीन जायदाद तो है ही तुम्हारे पास।'

'कहाँ... सब गिरवी पड़ा है। बैंक से लोन ले रखा है।'

'और घर'

'एक घर ही तो बचा। अब इसे भी...'

'कैसी बात करते हो भाई। किसने कहा कि घर को दाँव पर लगाओ। अब दस लाख से कम क़र्ज़ हम दे नहीं पाएँगे, यह तो हमारा नियम है...। पैसों के बदले कुछ तो हमारे पास होना चाहिए... अब तुम कह रहे हो कि सिर्फ घर ही बचा है तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ।... सोच-विचार कर लो... ये पेपर रखा है, इस पर साइन करो और पैसे ले जाओ। लेकिन सोच लेना चौदह परसेंट ब्याज भी है। बाद में यह मत कहना कि मैंने बताया नहीं।'

'चौदह परसेंट' !

'हाँ भाई... आख़िर बैंक तो लोन दे नहीं रहा। हम दे रहे हैं तो बैंक से थोड़ा अधिक ही परसेंट ब्याज रखेंगे। और हम तुम्हारे ऊपर कोई दबाव तो डाल नहीं रहे। तुम्हारी मर्ज़ी है। तुम्हारी इज़्ज़त बचाने के लिए यह कदम उठाया है।'

'पर हम चुकाएँगे कैसे?'

'अरे भाई ! अभी नौकरी के दो साल बचे हैं तब तक तो चुका ही दोगे।'

'लेकिन हम बैंक का लोन कैसे चुकाएँगे।'

'ओह हो... जब सर पर पड़ता है तो सब हो जाता है। और एक नालायक बेटे को बैठा कर खिला रहे हो, भेज दो उसे काम पर। कहीं काम न मिल रहा हो तो बताओ मैं देता हूँ उसे काम।'

'मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा कि क्या करूँ!' सर पर हाथ रख कर बैठ गए हरिराम।

'समझना क्या है... इन रीति-रिवाजों में ही हम सबकी औकात पता चलती है वरना कौन झाँकने आता है घर में... नमक रोटी खा रहे हो या दाल-भात।'

'सही तो कह रहे हैं राम नारायण। एक बार यह छोछक दे आएँ उसके बाद कोई न कोई इंतजाम करेंगे। इज्जत का सवाल है, बेटी के मान-सम्मान की बात है। इसके अलावा आखिर कोई उपाय भी तो नहीं। सबके आगे हाथ पसारे, पर किसी को तरस नहीं आया। मैं नहीं चाहता कि मेरी बेटी भी इज्जत के लिए तरसे या अखबारों में उसकी भी कोई बुरी खबर छपे ...'। मन में सोच-विचार करने के बाद हरिराम ने पेपर पर साइन कर दिया और पैसे लेकर कुछ भारी मन से तो कुछ उत्साह के साथ घर लौट

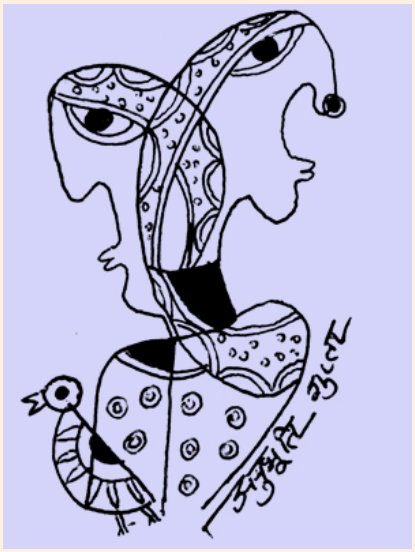

आए। दूसरे दिन गहने कपड़े, फल-मूल, मिठाई खरीद कर परिवार वालों के साथ गाड़ी में बैठ कुआ पूजन के लिए चल पड़ें।

कुआ पूजन के बाद छोछक का सामान थालियों में सजाया गया। घर आए मेहमानों, गाँव वालों के सामने प्रेमावती थाल घुमा-घुमा कर दिखाने लगी, 'देखो छोछक आया बहू के मायके से... घर भर के लिए कपड़े-गहने आया है।'

'आपके लिए बहुत मोटी चेन है...' ... 'बहुरिया के लिए क्या हथेली भर का लॉकेट है, बड़ा पैसा खर्च किए हैं आपके समधी जी ने...' 'लाला के लिए तो सात तरह के जेवर है... और इतनी मोटी चेन... यह जवान होने पर ही पहन पाएगा। बधाई हो... बधाई हो...'

यह सब सुन कर फूली नहीं समा रही प्रेमावती। अचानक से उनकी नज़र हरिराम पर पड़ी। उन्हें सुनाते हुए गाँव की औरतों से कहने लगीं, 'बहुत कुछ ले आए हैं हमारे समधी जी... हमारी इज्जत रख ली। लेकिन बाकी बहुरियों की पाजेब थोड़ी पतली हो गई है और कपड़ों की क्वालिटी में वो दम नहीं जो होना चाहिए। ... पहनेंगी तो क्या इज्जत रह जाएगी... लेकिन चलो कोई बात नहीं अब वे हमारी बराबरी तो नहीं कर सकते.....।'

हरिराम जैसे कुर्सी पर बैठे-बैठे ही बेहोश हो जाएँगे। उनके हाथ से कोल्ड्रिंक का ग्लास छूटते-छूटते बचा। टूट गए हरिराम... बिखर गए...। बिना खाना खाए ही घर लौट आए। रात भर उनके कानों में समधन की आवाज़ गूँजती रही। इज़्ज़त, बराबरी, गहने, कपड़े...। घर की ओर देखा तो घर पराया-सा लगने लगा। घर कहीं दूर छिटक चुका था। खुद को रिफ्यूज़ी सा महसूस करने लगें। इन सबसे उनका दम घुटने लगा। बहुत टहलने के बाद भी साँस कहीं फेफड़े में ही फड़फड़ाती-सी महसूस होती।

सुबह-सुबह चाय की चुस्कियाँ लेते समय राहुल की लाली हरिराम की गर्दन पकड़ झूल गई, 'दादा... जब मेरी शादी हो जाएगी तब क्या मेरे लिए भी छोछक ले आओगे'

'हाँ...हाँ... क्यों नहीं। जरूर ले आएँगे'

'क्या-क्या लाओगे ? मेरे लिए ना एक लाल रंग की लहँगा पहने गुड़िया ले आना और उसके लिए भी हार और मेरे लिए हार ले आना...।'

'अच्छा... (हँसते हुए) और क्या चाहिए मेरी लाली को..'?

'ऊँ... एक हारमोनियम और एक गाड़ी जो चाबी लगाने से दूर तक चले और...।'

उन्हीं बातों के बीच मनोहरी देवी फ़ोन पर बात करते हुए खुशी से बधाई देते हुए कहती आ रही थीं, 'बड़े भाग्य हमारे... जो रेशमा के जीवन में भी खुशियाँ आ गईं। हम तो धन्य हो गए सुनकर।'

लाली ने झट से हरिराम की गर्दन छोड़ मनोहरी देवी का हाथ पकड़ लिया, 'क्या बात है दादी, रेशमा बुआ को क्या हुआ ?'

'रेशमा बुआ को भी सरोज के लाला की तरह लाला आने वाला है या फिर... तुम्हारी तरह मेरी प्यारी सी लाली।'... प्यार से माथे पर पुचकारते हुए मनोहरी देवी ने कहा।

'क्या ? (खुशी से उछल पड़ी लाली) ये..ये...ये... अब तो रेशमा बुआ के घर भी छोछक जाएगा... मम्मी सुनो... रेशमा बुआ के घर भी छोछक जाएगा...।'

प्रफुल्लित होकर मनोहरी देवी हरिराम की ओर मुड़ते हुए कहने लगीं, 'सुनते हैं सरोज के पापा... रेशमा भी अब माँ बनने वाली है...बड़े भाग्य हमारे, हमारी दोनों लालियों.... (मुड़कर देखा तो चौंक गई) अरे... क्या हुआ आपको...।'

हरिराम के हाथों से चाय का प्याला छूटकर नीचे गिर चुका था, उनका सिर कुर्सी से लुढ़क चुका था।

***

बोआई की खुशबू

पंकज त्रिवेदी

परेश को हमने कभी इतना उदास नहीं देखा था। पिछले साल ही उन्हें चपरासी की सरकारी नौकरी मिली थी। वो भी विद्यालय में। सामान्य परिवार से आते परेश के लिए यह ज़रूरत थी। शहर के नज़दीक का गाँव। विद्यालय भी नया ही खुला था। सारे युवा कर्मचारी थे। सभी को कार्य करने का उत्साह था। प्रिंसिपल भी युवा थे। स्वभाव से सख़्त मगर बड़े प्यार से बात करने का अंदाज़ था। किसी शिक्षक को अगर दो शब्द कहने पड़ें तो बेझिझक कहते मगर उनकी सख़्त भाषा में भी धैर्य और स्वस्थता भी होती थी। इस बात की अनुभूति सामने वाली व्यक्ति के हृदय तक पहुँच जाती। परिणाम यही आता कि सामने वाला व्यक्ति प्रिंसिपल की बात को बड़ी गंभीरता से समझ लेता। गलतियों का पुनरावर्तन उनके विद्यालय में नामुमकिन था।

परेश के लिए परिवार के सदस्यों ने एक सुन्दर लड़की देखी थी। यूँ तो उनके दूर के रिश्ते के चाचा जी ही प्रस्ताव लेकर आए थे। उन्हें दोनों पक्षों के प्रति समभाव था। दोनों परिवारों के बीच में सरलता से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया। शुभकार्य को पुष्टि देने दोनों परिवार वालों ने गुड़ खाकर वचन के बंधन से रिश्ता स्वीकार लिया। उन दिनों में ही किसी पत्रकार ने परेश के माता-पिता को ख़बर दी। यह लड़की बदचलन है। उसे पहले से किसी के साथ गलत संबंध था। बात सुनते ही पूरा परिवार चिंता में डूब गया। परेश तो घर का माहौल देखकर ही घबरा गया। अभी तो ज़िंदगी के राह पर कदम रखकर आजीवन उत्तम साथी के सपने देख रहा था। ऐसे में परेश ने जब से यह बात सुनी, उनका मन उदास हो गया था। रिश्ता तोड़ने की भी बात होने लगी। मगर रिश्ता जोड़ने वाले परिवार के चाचा जी ही थे। अगर जल्दबाज़ी में कोई कदम उठाया जाए तो उनके परिवार के साथ भी रिश्ता टूटने की सँभावना थी। लड़की अगर कुसूरवार हो तो ठीक मगर उस बात में सच्चाई न हो तो? परेश के बड़े परिवार के हर घर में यही चर्चा ज़ोर पकड़ने लगी। दूसरी ओर पारिवारिक संबंध ख़राब होने की सँभावना भी थी। परेश के माता-पिता असमंजस में थे।

विद्यालय में भी परेश का व्यवहार बदलने लगा। रोज़मर्रा के कार्य में भी उनका मन नहीं लगता, परिणाम स्वरूप प्रत्येक कार्य में गैरज़िम्मेदाराना हरकत और उनके खिलाफ़ शिकायतें। प्रिंसिपल ने उन्हें पास बुलाकर बिठाया। उनके साथ बात की। परेश की बात सुनकर वो चौंक गए। क्योंकि जिस पत्रकार के द्वारा उस लड़की के चरित्र पर आशंका जताई गई थी, वह खुद यल्लो जर्नालिज़्म के लिए कुख्यात था। प्रिंसिपल तो उन्हें पूरी तरह से जानते थे। तुरन्त उन्होंने परेश को कहा; ''तुमने लड़की देखी? इस बारे में कोई बात उनसे हुई है?''

''हाँ।'' परेश ने कहा, ''लड़की तो मुझे पसंद है और यह रिश्ता मेरे दूर के चाचा जी ही लाए हैं। मैंने खुद लड़की को पूछा था। तब उसने मुझे इतना बताया था कि- ''अगर मेरे बारे में आपको कोई सबूत मिले तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। मुझे हकीक़त में किसी से कोई संबंध नहीं है। वो पत्रकार मेरे पीछे पड़ा था। मैंने कभी उसे जवाब नहीं दिया। एक बार शहर में नाटक का शो था। कॉलेज के कई छात्रों ने हिस्सा लिया था। मैं भी थी, उस कार्यक्रम की तसवीरें लेने के लिए अपने अख़बार के बहाने वो पत्रकार आया था। उस वक्त मेरे साथी कलाकार के साथ मेरी तसवीरें खींची थीं। अब वो मुझे ब्लेकमेल करना चाहता है। कहता है कि मेरे साथ संबंध नहीं रखोगी तो मैं तुम्हारी तसवीरें अखबारों में छाप दूँगा। और तुम्हारी मंगनी भी नहीं होने दूँगा। ऐसी बात मुझे कई लड़कियों ने भी कही है, जिनके जीवन को बर्बाद करने पर वो तुला है।''

परेश नर्वस हो गया।

प्रिंसिपल ने देखा कि परेश की मानसिक स्थिति ज़्यादा अस्वस्थ हों उससे पहले उसे सँभाल लेना चाहिए। उन्होंने परेश को कहा-''तुम्हें तो लड़की पसंद है न? उसके चारित्र्य के बारे में कोई आशंका है...?''

पंकज त्रिवेदी C/o. संपादक - विश्वगाथा
(त्रैमासिक पत्रिका)
गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फूट रोड,
सुरेंद्रनगर - 363002 गुजरात
मोबाइल : 88490 12201
ई-मेल: vishwagatha@gmail.com

''सर, मुझे तो पसंद है और लोगों की बातों में मुझे कोई भरोसा नहीं। मगर साबित कैसे करूँ?''

''एक बात ठीक से समझ ले। लड़की कॉलेज में पढ़ती थी, उस वक्त वो किसी के साथ बात ही न करें? जिस लड़की के लिए अगर कोई चर्चा ही न हो तो वो लड़की किस काम की? जिसकी चर्चा हो उसका मतलब वो दूसरों से अलग है, उनके अन्दर कोई विशेष प्रतिभा है जो दूसरों को रास नहीं आती। सुनो, कोई भी लड़का या लड़की पवित्र ही है, उसके बारे में जानने के लिए कोई यन्त्र होता है? अतीत को खँगालने से भयानक आशंकाओं के सिवा कुछ भी हाथ में नहीं आएगा। वर्तमान को सँभाल लोगे तो भविष्य अपने आप उज्ज्वल होगा। उसमें पवित्रता होगी तो पूरे जीवन में उजास फैलेगा।''

''दूसरी बात तो यह है कि तुम्हें तो लड़की को लाना है। फिर कौन सी चिंता? ऐसे प्रश्न से तो लड़की के माता-पिता घबरा जाएँ। उन्हें ज़्यादा चिंता होती है। लड़की बदनाम हो जाएगी तो कोई दूसरा लड़का भी हाथ नहीं पकड़ेगा। तुम्हारे पास ऐसा कोई ठोस सबूत है जिसके कारण तुम इस रिश्ते को तोड़ना चाहो? तुम्हारी मंगनी को कितने छह माह हुए?'' प्रिंसिपल ने पूछा।

''हाँ, इतना ही वक्त !''

''तुम दोनों कहीं घूमने गए होंगे, फिल्म देखने गए होंगे, कुछ बातें हुई होगी...''

''हाँ, वो सब तो इस ज़माने में सहज हैं। उनके माता-पिता ही मेरे साथ उन्हें भेजते थे। परेश ने कहा।

''तो फिर एक बात समझ लो। उनके साथ घूमते-फिरते तुम्हें कहीं कुछ गलत महसूस हुआ? उनके माता-पिता ने तुम्हारे साथ रिश्ता तय किया, चाचा जी मध्यस्थी बनें। कितना विश्वास होगा उन्हें? शायद यही कारण से वो तुम्हारे साथ अपनी बेटी को फिल्म देखने के लिए भी भेजते होंगे। अब मान लो कि तुम्हारे साथ रिश्ता टूट गया तो उस लड़की का क्या कुसूर? तुम्हारे साथ घुमाने-फिरने के बाद यही लोग उसे बदचलन कहेंगे न? ज़माने के साथ लोगों के मानस बदल रहे हैं और ऐसे में हमें भी खुद को बदलना होगा। सोच लो। वो अब मन से तुम्हारी हो गई है। अब उसकी सारी ज़िम्मेदारी तुम्हारी बनती है। तुम्हें ही उनका रक्षक बनकर उस ब्लेकमेलर को मुँह तोड़ जवाब देना होगा। जैसी भी है, वो लड़की अब मेरी पत्नी है। अगर ऊँगली उठाई तो काट दूँगा। आत्मविश्वास और खुद्दारी से कह दे उस पत्रकार को ! ये तो जीवन की शुरूआत है। ऐसी छोटी सी बात में उलझ जाओगे तो जीवन को कैसे जिओगे? मुश्किलों से कैसे मुकाबला करोगे? हिम्मत से जवाब देना और अपना रास्ता खुद तय करना सीख ले।''

प्रिंसिपल की बात सुनकर परेश में छुपी सुषुप्त हिम्मत जाग उठी।

''सर, मैं अब उसी के साथ शादी करूँगा, आप सिर्फ मेरे माता-पिता का संदेह दूर कर दीजिए....।'' और प्रिंसिपल परेश के घर गए और सारी बातें विस्तार से समझा दी।

''परेश तो आपका बेटा है, उनकी जगह अगर आपकी बेटी होती तो? आप ही सोचिए कि खुद लड़की कह रही है कि मैं बदचलन हूँ ऐसी आशंका न रखें, अगर ऐसा सबूत मिलेगा तो मैं आत्महत्या करूँगी। मान लीजिए कि आपने रिश्ता तोड़ भी दिया तो मैं उस कलंक के साथ जी लूँगी मगर कहीं और शादी नहीं करूँगी। क्या आपने अपने जीवन में कभी किसी से मुक्त मन से बात नहीं की होगी? अपने अतीत के पन्नों को देखिए। दोस्ती के संबंधों को कोई अगर कलुषित कर दें तो आपका हृदय स्वीकार करेगा?''

परेश के माता-पिता तो प्रिंसिपल की बात समझ में आ गई। उन्हों ने कहा; ''सर, आप सही कह रहे हैं। परेश की शादी होगी और उसी लड़की से।''

''मैं आपको कहना चाहता हूँ कि ऐसे हलकट लोगों की बातों में आकर अपनी मासूम बेटी का भविष्य ख़राब करने के लिए तैयार होना ठीक नहीं। अभी जल्दबाज़ी में कोई कदम उठाने के बाद भविष्य में ऐसा साबित हो जाए कि कंचन जैसी शुद्ध लड़की है, तब? उस वक्त उसे जो बदनामी की आग लग जाएगी उसे कौन बुझाएगा? आपकी संवेदना की कोई दवाई उस ज़ख्म को मिटा नहीं सकेगी। इससे समाज में एक ऐसी नारी का जन्म होगा जो पुरुष जात का भोग बनेगी। उससे वो कलंकित होगी और आख़िर में सब कुछ सहन करने के बाद मौन रहने वाली नारी कभी ज्वालामुखी बनकर प्रकोप दिखाएगी तब लोगों के घर जल जाएँगे। कइयों के गृहस्थ जीवन बिखर जाएँगे। अनेक बालक अनाथ स्थिति में जाएँगे और वो सारा पाप किसके सर पर होगा? विश्वास होता है, वहाँ श्रद्धा होती है और तब ही ईश्वर का वहाँ स्थान होता है। हमें कहाँ रहना, कैसे रहना, ये तो हमें ही तय करना होगा। अब परेश की शादी करेंगे न?'' प्रिंसिपल ने बेबाक राय दे दी।

फिर प्रिंसिपल ने परेश के सामने देखकर कहा- ''सुनो, तुम्हें उसी लड़की के साथ शादी करनी होगी। उसके साथ रहकर तुम दोनों के जीवन को खुशी से भर दो। इससे तुम्हारी बड़ी सी बड़ी कमज़ोरी को भी वो स्वीकार कर लेगी। उसी में आनंद मिलेगा। मेरे विद्यालय का कर्मचारी डरपोक नहीं होना चाहिए। वो पत्रकार अगर आ भी जाएँ तो उसे स्पष्ट शब्दों में कह दो कि अब लड़की के सामने देखा भी तो आँखें निकाल देंगे। वो हमारे परिवार की बहू से ज़्यादा बेटी है। आप उनकी ज़िम्मेदारी लेना सीखिए। आपको किसी प्रकार की परेशानी हो तो मैं आपके साथ ही हूँ।''

परेश की आँखों में हर्षाश्रु बहाने लगे। अपने विद्यालय के प्रिंसिपल ने पारिवारिक स्वजन बनकर जो हिम्मत दी और एक लड़की के जीवन को बर्बाद होने से बचा लिया, इस घटना को समझने के बाद परेश धन्य हो गया। उसे लगा कि मेरे विद्यालय के प्रिंसिपल में ऐसी ख़ुमारी हो तो मुझमें कमज़ोरी क्यों? और उसने प्रिंसिपल को वचन दे दिया।

''सर, आपके विचारों ने मेरे जीवनपथ को ही बदल दिया है। मन की गहराई में थोड़ी सी आशंका थी उसे भी आपने ख़त्म कर दी। अब हम अच्छे जीवन की शुरूआत करेंगे। लोग भी कहेंगे कि जीवनसाथी ऐसे होने चाहिए। मैं अपने जीवन से समाज के लिए बड़ा उदाहरण साबित करूँगा।''

प्रिंसिपल ने परेश के कंधे पर हाथ रखा। आँखों में दिव्य दृष्टि का तेज़ भरकर परेश को पुत्रवत् अपने सीने से लगाकर पीठ थपथपाई। उस वक्त धरती ने भी बोआई की खुशबु फैलाई।

***

ऊब

राजेश झरपुरे

वह एकटक सीलिंग फैन को देख रही थीं।

फैन की तीनों ब्लेड एक बड़ा सा वृत्त बना चुकी थी। उसे अच्छे से याद है... उन ब्लेड में से किसी एक में हल्का सा लाल धब्बा है। उसने अपना ध्यान लाल रंग पर केन्द्रीत करना चाहा। खूब ध्यान से देखा। देखने के पहले, अपने आपको पूरी तरह एकाग्रचित्त किया फिर कोशिश की... कि उस लाल रंग के धब्बे वाली ब्लेड को पकड़ सके पर बारबार कोशिश करने के बाद भी असफ़लता हाथ आई। वह जिस भी ब्लेड को चिह्नित करतीं, वह उसके दाईं ओर होती या बाईं ओर। कई बार के अभ्यास के बाद वह थक गई। उसका थकना स्वभाविक था। कारण... इस खेल की आयोजक वही थीं। खेल की प्रतिभागी और निर्णायक भी वही थीं। खेल में हारने या जीतने वाली भी वही एक मात्र प्रतिभागी थीं। उसकी जीत ही, उसकी हार थीं और उसकी हार भी उसकी जीत ही होती। वह न जीत के दायरे से बाहर थीं, न हार के दंश से मुक्त्। वह चिढ़ गई।

अब क्या करे...? यही एक प्रश्न था जो गाहे-बगाहे उसके सामने आकर खड़ा हो जाता। वह परेशान हो उठती। खाली बैठना उसे पसंद नहीं था। वह सदैव व्यस्त रहना चाहती। व्यस्त व्यक्ति अपने साथ होता हैं। जो सदैव अपने साथ होता वह द्वैत में नहीं होता। उसे अद्वैत होना पसंद था। वह सुबह उठकर हर वो काम जो एक गृहणी का होता बिना किसी झुँझलाहट या परेशानी के निपटा देती। बच्चे तैयार होकर स्कूल-कॉलेज चले जाते। चाय-नाश्ते के बाद पति का टिफ़न तैयार हो जाता। वे समय पर ऑफ़िस के लिए चल पड़ते। बस! यहीं से एकाकीपन के सन्नाटे का हृदय विदारक शोर आरम्भ होता, जिसकी ज़द में उसकी मानसिक तन्द्रा छिन्न-भिन्न हो जाती।

उसका मकान खूब लम्बा-चौड़ा था। पूरी तरह सामानों से अटा हुआ। वह बेज़ुबान चीज़ों से बुरी तरह घिरी हुई थीं। अकेलापन उसे कचोटता। मन करता... छः-सात घण्टों के खाली समय का कोई सार्थक उपयोग करे। कोई कम्प्यूटर कोर्स, पेंटिंग या सिलाई-बुनाई की क्लास या किसी महिला मंडल को ही ज़्वाईन कर ले। कम से कम ये बौहारा समय तो कटे, जो काटे नहीं कटता।

उसके जीवन में आया यह कालखंड ग्रहण समान था। इस पहर के बोझिल पल उसे पशोपेश में डाल देते। उसकी दुविधा बढ़ने लगती। भटकाव के मार्ग बढ़ते जाते। उसे लगता, सुविधा की चाह में, वह दीवारों में क़ैद होकर रह गई है।

पति, पत्नी की मनोदशा को भली-भाँति जानता था। वह अपने तईं इस समस्या का समाधान भी खोजने का प्रयास करता पर खोज नहीं पाता।

यह हमारे जीवन का बहुत बुरा समय हैं। घर को सूना और बिना किसी की देखरेख में छोड़ना, चोरों को न्यौता देने जैसा हो गया। इधर आपने घर को पीठ दिखाई नहीं कि उधर चोर घर की सुई तक उठा ले जाते हैं। कॉलोनी में इस तरह की कई घटनाएँ घट चुकी थीं। परिणाम हाथ मलने के सिवाय कुछ नहीं होता ...यही सब सोच-सोचकर वह डर जाती।

उन्हें किराए के मकान से अपने घर तक आने में उम्र का एक लम्बा-चौड़ा पड़ाव पार करना पड़ा। बहुत सी ज़रूरतों का त्याग करना पड़ा। बैंक लोन के बोझ तले, निर्माण की

राजेश झरपुरे, वार्ड नं.40, तात्या टोपे वार्ड, सुन्दर देवरे नगर, छिन्दवाड़ा, पोस्ट एवं जिला-छिन्दवाड़ा,
मप्र 480001
मोबाइल: 09425837377
ई-मेल: rajeshzarpure@gmail.com

जटिल प्रक्रिया में धैर्य और प्रतीक्षा की पूँजी लगानी पड़ी, तब कहीं जाकर घर बन पाया। त्याग तो घर के सभी सदस्यों ने किया पर सबसे ज़्यादा बलि उसी की इच्छाओं की चढ़ी। वह अपने सपनों के आशियाने को किसी भी तरह से क्षति पहुँचते नहीं देख सकती थीं।

पति, पत्नी की मानसिक अवदशा से परिचित थे और ख़ुश भी। वह अपने घर को लेकर घर जैसा ही देखती है।

हालाँकि कई बार उन्होंने बेमन से अपनी पत्नी से कहा ''...समय देखकर कभी-कभार आस-पड़ोस और बाज़ार-हाट तक हो आया करो। परिचय बढ़ता हैं। बाज़ार का रूख़ और तेवर का भी पता चल जाता हैं।'' पत्नी जानती थीं- बहुत बेमन से मन धरने के लिए कहे गए शब्द हैं ये। घर के अकेले और सूने होने के ख़तरे से वह भी भली-भाँति वाकिफ़ है। इस तरह के मन बहलाऊ विचारों से वह और अधिक अकेली पड़ जाती।

टीवी सीरियल, फ़ेसबुक और वाट्सअप की संस्कृति उसे नहीं भाती थीं। रिश्ते-नातेदार से मोबाइल पर बात हो जाती। बात क्या होती...बस! चूल्हा-चक्की के आसपास सिमटकर रह जाती। उसे दु:ख होता... उसके साथ जुड़े हुए सम्बन्धों में स्त्रियों की सोच चूल्हे से चलकर रसोई के दरवाज़े तक आती और फिर चूल्हे की तरफ़ ही लौट जाती हैं। स्कूल-कॉलेज की सहेलियाँ दूर-दराज़ ब्याही थीं। उनसे मोबाइल तक ही सम्बन्ध थे और सीमित भी। पास-पड़ोस में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी। सभी पड़ोसी परिवार बाज़ार की गिरफ़्त में थे। किसी ने घर के सामने के कमरे में ब्यूटीपार्लर खोल रखा था, किसी ने बुटीक। किसी के पास बीमा कम्पनी की एजेन्सी थी तो किसी के पास धन दुगना-तिगुना करने की आकर्षक योजना। उन्हें अपने पड़ोसी ग्राहक के रूप में सुहाते थे।

वह पड़ोसियों की व्यावसायिक बुद्धि से भी वाकिफ थी। उसे अपनी और अपने परिवार की वास्तविक ज़रूरतों का भान था। किसी भी तरह का आकर्षण और प्रलोभन उसे लुभा नहीं पाता। वह बाज़ार द्वारा सायास पैदा की जा रही ज़रूरतों से किनारा कर जाने की कला में माहिर थीं। उसकी मुक़म्मिल जानकारी और पहचान सीधे तौर पर व्यावसायिक पड़ोसियों के हित पर प्रहार करतीं। वे सब जानते थे... अनावश्यक से जब तक 'न' नहीं हट जाता और चीज़ें 'आवश्यक' नहीं हो जाती, उसके घर का दरवाज़ा नहीं लाँध सकती। विरोध की एक यह भी पहचान उसके एकाकीपन के लिए ज़िम्मेदार थीं। वह वक़्त और माहौल के अनुसार अच्छी पड़ोसन नहीं बन पाई थीं।

उसे विविध भारती में गाने सुनना पसंद था पर इन दिनों उसने रेडियो के तरफ़ देखना भी बंद कर दिया था। उसका मकान कॉलोनी का पहला फ्लैट था। पहला होना, कई सुविधाओं के साथ होना था। यह सुविधा उन्हें सहज ही लॉटरी सिस्टम के कारण मुहैया हुई थीं। हर सुविधा अपने साथ कुछ दिक़्क़तें साथ लेकर आती हैं। वे यहाँ भी आई।

ठीक कॉलोनी की दीवार से सटकर एक पान-बीड़ी-सिगरेट वाले ने गुमठी लगा रखा था। वह सुबह गुमठी खोलने के साथ ही रेडियो का स्विच ऑन करता तो देर रात दुकान बंद करने के वक्त् ही ऑफ़ करता। अच्छे भले गाने फुल साउंड में बजने से अप्रिय हो जाते। शुरू-शुरू में अपने अकेलेपन पर इस तरह के प्रहार से वह बौखला गई। मन विद्रोह करने की ठान बैठा। विद्रोही हो उठे पलों में उसने सोचा घर से निकलकर सीधे उसकी गुमठी में पहुँच जाए और जमकर कनपटी पर चार-पाँच थप्पड़ लगा दे। मान जाए तो ठीक... नहीं तो सीधे पैर की जूती निकालकर जड़ दे उसके सिर पर। पर उसने ऐसा नहीं किया। विरोध के इन्हीं पलों में कोई सकारात्मक भाव ने उसके ज़ेहन में प्रवेश कर लिया होगा और कुछ ही दिनों में उसे यह प्रहार सुकून देने लगा। गुमठी से आने वाली गीत-संगीत की धुन से उसके एकाकीपन की चुपचाप मित्रता हो गई। पर यह मित्रता ऐसी नहीं थी कि वह उसे उसके एकाकीपन से पूरी तरह मुक्ति दिला सकने में सफल हो। बावजूद इसके, उसके घर के सन्नाटे सीधे उस गुमठी से जुड़ चुके थे।

आज गुमठी वाले का रेडियो बंद था। पिछले डेढ़ साल में ऐसा कभी नहीं हुआ। उसने सोचा उसकी गुमठी की लाईन काट दी गई होगी। कॉलोनी वाले कई बार शिकायत कर चुके हैं। वह तेज़ आवाज़ में रेडियो बजाता हैं। उसने कॉलोनी के पास अनाधिकृत रूप से क़ब्ज़ा कर रखा है। पर कुछ नहीं हुआ। कुछ होता भी नहीं...ऐसे लोगों का। उसने पूरी तैयारी के साथ और हर नियम और कानून को साधकर वहाँ गुमठी लगाई थी।

दो घण्टे से अधिक समय हो गया तो उसने सोचा... हो सकता हैं, उसका रेडियो खराब हो गया हो। अपने अकेलेपन में वह इससे बेहतर और कुछ सोच नहीं पा रही थीं। उसने अपने आप से एक सवाल किया ''...क्या वह ऊँची आवाज़ में गाने सुनने की अभ्यस्त हो चुकी है?'' पर इसका स्पष्ट जवाब उसके पास नहीं था। गाने ही सुनना है तो घर का रेडियो ऑन किया जा सकता है... जैसा भी उसने सोचा पर किया नहीं। वह दीवान पर ही लेटी रहीं। हालाँकि तत्क्षण वह लेटकर उठ गई फिर न जाने क्या सोचकर लेटी ही रही। रेडियो पर गाने सुनना चाहिए या नहीं...वह तय नहीं कर सकी थी।

निशब्द का शोर उसे लगातर विक्षिप्त कर रहा था। वह बहुत देर तक दीवान पर लेटी नहीं रह सकी और उठकर फ्लैट के पूर्व की तरफ़ खुलने वाली खिड़की का पल्ला थोड़ा सा ढुलका कर पान की गुमठी की तरफ़ सरसरी नज़र से देखने लगी। वहाँ चार-पाँच लोग खड़े थे। वे एक दूसरे से बेहद अभद्र और अश्लील भाषा में बात कर रहे थे। उसने तुरन्त पल्ला पूर्ववत् बंद कर दिया। इतने दिनों के अकेलेपन के साथ जुड़े वह जिस शोर के खिलाफ़ थी आज उसी के समर्थन में बेहद उतावली हुई जा रही थीं। क्या यह सच हैं... 'नहीं...' उसने अपने आप से कहा। लेकिन तत्क्षण अन्दर से आवाज़ आई....'हाँ!'

दरअसल वह किसी निर्णय तक नहीं पहुँच पा रही थीं। ऊब के घनीभूत होने से उपजी व्यग्रता वास्तव में अकेलेपन के ख़िलाफ़ थी या गुमठी वाले के रेडियो न बजने के कारण, वह समझ नहीं पा रही थी। बस! जीवन में कुछ कम हैं या कुछ भी नहीं है...जैसा एहसास उसे साल रहा था।

बच्चों के स्कूल-कॉलेज से लौटने में अभी दो घण्टे और बाकी थे। प्रतीक्षा के इन पलों में अकेलापन उसे खाने के लिए

दौड़ता। वह घर में इस कमरे में, उस कमरे में दौड़ती फिरती। कभी रसोई में भी चली जाती, कभी बेडरूम में घुस जाती। हॉल में आती तो टी. वी. का स्विच ऑन कर देती। बेचैनी उसे किसी एक चैनल पर रुकने नहीं देती। ऊँगलियाँ एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे और सारे चैनलस् के द्वार खोलकर रख देती। वह किसी एक में भी प्रवेश नहीं कर पाती।

सबके साथ होने और सबके बिना होने के एहसास को उसकी तरह, उसका पति भी बेहतर तरीके से समझता था। वह जब भी अपनी पत्नी के अकेलेपन के बारे में कुछ अच्छा सोचता, बुरा होने की आशंका उसे भी आ घेरती। वह पत्नी के साथ होते हुए भी पत्नी के साथ नहीं हो पाता।

आदमी जोड़-तोड़कर मकान बनाता हैं। मकान में आदमी अकेला तो रह सकता है पर घर में नहीं। भरे-पूरे परिवार में दोपहर का यह समय बेहद उबाऊ और वक़्त को दाँत से काटने के समान होता। अपने खालीपन के शून्य में होना बेहद त्रासद होता। विलगता का एहसास निशब्द करवट बदलता रहता।

उसकी निगाह फिर सीलिंग फैन पर अटक जाती है। इस बार उसने बहुत गौर से देखा और लाल रंग के धब्बे वाली ब्लेड को एक पल में ही ताड़ लिया। वह ख़ुशी से चहक उठीं। लेटे-लेटे ही दीवान के पास लगे स्वीच बोर्ड से फैन का स्विच ऑफ़ किया और पूरी एकाग्रता से लाल धब्बे वाली ब्लेड को देखने लगी। फैन की गति शनैः-शनैः कम होती जा रही थी। उसका पूरा ध्यान लक्ष्य की ओर था। जब फैन की ब्लैड एकदम थम गई तो उसने महसूस किया कि उसने पूरी तरह अपने लक्ष्य को भेद दिया है। लाल रंग वाली ब्लेड और उसकी नज़र एक सीध में थी और उसकी आँखों में ढेर सारा लाल रंग उतर आया।

डोरबेल बजी और बजती चली गई। वह अपने सन्नाटे में कैद थीं। उसे न डोरबेल की आवाज़ सुनाई दी, न ही अचानक गुमठी में चालू हो चुके रेडियो के गाने की आवाज़। बच्चे घर के बाहर खड़े दरवाज़ा खुलने का इंतज़ार कर रहे थे और अन्दर एक स्त्री देह बेसुध दीवान पर चित्त पड़ी थी।

***

लघु कथा

मंदिर की पवित्रता

सुभाष चंद्र लखेड़ा

वर्षों बाद वह एक मंदिर के पास से गुज़रा तो उसे लगा कि आज उसके पास भगवान् के दर्शन करने के लिए समय है। तभी उसकी नज़र मंदिर के दरवाज़े के पास खड़े उस बच्चे पर पड़ी जो मंदिर के अंदर प्रवेश करने वाले लोगों के आगे कुछ पाने के लालच में हाथ फैला रहा था। उस बच्चे की उम्र यही कोई नौ - दस वर्ष रही होगी लेकिन उसका कृशकाय शरीर उसे व्याकुल करने लगा। उसने जेब में हाथ डाला तो उसके पास सिर्फ पचास रुपये थे।

वह बच्चे के पास गया और उसे हाथ पकड़कर मंदिर से कुछ दूर स्थित भोजनालय में ले गया। उसने बच्चे के लिए दूध और कुछ खाने का सामान लिया और फिर उसे प्यार से खिलाने लगा। इस कार्य में उसके छयालीस रुपये खर्च हो गए थे।

बिल अदा करने के बाद उसे न जाने कौन सा काम याद आया कि उसने भगवान् का दर्शन करने का इरादा बदल दिया। खैर, अभी वह मंदिर से बीस मीटर दूर पहुँचा था कि किसी ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा, ''वर्षों बाद मिलने आए थे लेकिन फिर मुझसे मिले बिना वापस क्यों जा रहे हो ?''

उसने मुड़कर देखा तो उसे आश्चर्य हुआ। उसके कंधे पर हाथ रखने वाला वही बच्चा था जिसे उसने कुछ देर पहले दूध पिलाया था। हाँ, उसका कद अब बढ़कर उसके बराबर हो चुका था। उसने आश्चर्य में डूबते हुए उस बच्चे की आँखों में देखा तो वह बच्चा मुस्कराते हुए बोला, ''तुम्हारे जैसे लोगों को मंदिर में आना चाहिए क्योंकि इससे मंदिर की पवित्रता बनी रहती है। अक्सर मेरे पास जो भी आता है, वह मुझसे कुछ न कुछ माँगता है और सोचता है कि मेरे दर्शन मात्र से वह पाप मुक्त हो जाएगा।''

वह जवाब में कुछ कहता कि उसने देखा कि वहाँ तो अब कोई नहीं है। उसने मंदिर की तरफ नज़र दौड़ाई तो उसे यह देख फिर अचंभा हुआ कि वह बच्चा तो अभी भी मंदिर के दरवाज़े के पास हाथ फैलाए खड़ा था। ''यकायक उसे वर्षों पहले अपने पिता द्वारा अक्सर दोहराए जाने वाले ये शब्द याद आ गए - ''न जाने किस रूप में नारायण मिल जाएँ ?''वह मुस्कराते हुए अपने गंतव्य की तरफ चल पड़ा।

***

सुभाष चंद्र लखेड़ा, सी - 180, सिद्धार्थ कुंज, सेक्टर - 7, प्लाट नंबर - 17, द्वारका, नई दिल्ली - 110075, ई-मेल: subhash.surendra@gmail.com

मेरे साक्षात्कार

अश्विनीकुमार दुबे

मेरे साक्षात्कार से आप यह मत समझिएगा कि विभिन्न लोगों ने, जो समय-समय पर मेरे साक्षात्कार लिए होंगे, मैं उनका ज़िक्र करने जा रहा हूँ। जी नहीं, मेरे साक्षात्कार से यहाँ तात्पर्य है विभिन्न लोगों के साक्षात्कार जो मैंने लिए और मेरे नाम से पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। 'मैंने लिए' यह कहते हुए मुझे कोई संकोच नहीं है जबकि मैंने किन्हीं से कोई साक्षात्कार कभी नहीं लिए। ये साक्षात्कार कुछ इस प्रकार के शीर्षकों से छपे : 'महान् कवि फलानेजी से मेरी बातचीत', 'प्रसिद्ध उपन्यासकार ढिकानेजी से लम्बी चर्चा', 'गीतकार नीरवजी से कुछ बातें', 'व्यंग्यकार हँसमुख लाल से एक मुलाकात' इत्यादि। आप सोच रहे होंगे कि इतने महान् कवि, उपन्यासकार, गीतकार और व्यंग्य लेखक से मैंने मुलाकात की होगी, घंटों उनसे बातचीत की होगी, तब कहीं जाकर बना होगा वह साक्षात्कार। नहीं, मैंने कभी किसी से मुलाकात नहीं की और मेरे नाम से वह साक्षात्कार छपा। अधिकांश पत्रिकाओं से प्रकाशित रचना का पारिश्रमिक भी मुझे मिल चुका है।

मैंने कविता की झील में तैरने का प्रयास किया, सफलता नहीं मिली। छंदबद्ध कविता से लेकर छंदमुक्त कविता, नई कविता, प्रगतिशील कविता, अकविता, यहाँ तक कि कुकविता तक मैंने लिख डाली, परन्तु हाय! मुझे किसी ने कवि के रूप में स्वीकार नहीं किया। फिर मैंने कहानी के क्षेत्र में हाथ आजमाने की कोशिश की। पहले मैंने देवकीनंदन खत्री टाइप तिलस्मी कहानी लिखने का प्रयास किया। लोगों ने उसे पढ़कर कहा, इसमें तिलस्म को छोड़कर कुछ भी नहीं है। ज़माना यथार्थवाद का है। तुम प्रेमचंद की तरह यथार्थवादी कहानी लिखो। मैंने प्रयास किया। लोगों ने उसे पढ़कर बताया, इसमें ज़रूरत से ज़्यादा यथार्थ है। यह तो सबको पता है। आगे मैंने नई कहानी, समानान्तर कहानी, आंचलिक कहानी से लेकर ऐतिहासिक कहानी तक लिख डाली, परन्तु किसी ने मुझे कहानीकार नहीं माना। किसी अदना पत्रिका ने मुझ घास तक नहीं डाली। सब जगह से मेरी कहानियाँ सखेद वापस आ गईं। मुझे बहुत दु:ख हुआ। रंगीन पत्रिकाओं में छपने वाले नाम मुझे चिढ़ा रहे थे। मैं भी उन पत्रिकाओं में छपना चाहता था। अपने मित्र-परिचितों को उत्साहपूर्वक बताना चाहता था कि मेरी रचना भी फलाँ पत्रिका में छपी है। पाठकों के पत्र कॉलम में कभी-कभार मेरा कोई पत्र छप जाता तो मैं फूला न समाता। परन्तु उतने से पत्र से क्या? मैं तो फुल पेज की रचना छपाना चाहता था किसी पत्रिका में। मेरी फ़ोटो के साथ कहीं रचना छपे तो कहना ही क्या! मैंने विभिन्न मुद्राओं में फ़ोटो उतरवाए, यथा ठुड्डी पर हाथ रखे हुए, आसमान की ओर देखते हुए, अत्यंत गंभीर मुद्रा में, चिन्तक टाइप और ज़ोरदार ठहाका लगाते हुए भी। सम्पादक को जो फ़ोटो अच्छा लगे, सो छाप दे, मैं कृतज्ञ हो जाऊँगा।

वर्षों मेहनत करने के पश्चात् किसी भी पत्रिका में न मेरी रचना छपी और न फ़ोटो। मैं कुछ-कुछ निराश हो चला था कि एक दिन एक आलोचक महोदय से भेंट हो गई। उन्होंने मेरी समस्या को गंभीरता से लिया। गोया वे इस स्थिति से गुज़र चुके थे।

अश्विनीकुमार दुबे, 525-आर,
महालक्ष्मीनगर, इंदौर-452010 मप्र
मोबाइल: 9425167003
ईमेल: ashwinikudubey@gmail.com

उन्होंने प्यार से समझाया- ''जो कवि, कहानीकार और उपन्यासकार आदि नहीं हो पाते, वे आलोचक हो जाते हैं। तुम आलोचक हो जाओ। तुम्हारी लिखी हुई समीक्षाएँ और आलोचनात्मक लेख बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में छपेंगे।''

''परन्तु आलोचक को बहुत पढ़ना पड़ता है। आपकी टेबल पर भी इतनी सारी किताबें बिखरी पड़ी हैं। इन्हें देखकर ही मुझे पसीना आने लगता है। पढ़ना मेरे लिए बहुत मुश्किल काम है।'' मैंने अपनी समस्या उन्हें बताई।

''धीरे-धीरे आदत हो जाएगी। लिखे हुए पर फिर लिखना, यही आलोचना है। इस क्षेत्र में बड़ी संभावनाएँ हैं। कवि त्रिलोचन का यह सॉनेट तुमने नहीं सुना? लो सुनो, 'आलोचना जमेगी/ आलोचक का दर्जा/ मानो शेर जंगली सन्नाटे में गर्जा/ इतना रुतबा कहाँ किसी ने पाया है?' सभी विधाओं में तुमने हाथ चला के देख लिए। कहीं बात नहीं बनी। अब आलोचना लिखो। बड़े-बड़े लेखक तुम्हारे आगे-पीछे घूमेंगे। समझे।'' आलोचक महोदय ने अपनी हेडमास्टरीय शैली में मुझे समझाया।

अब आलोचना लिखने के लिए पढ़ना तो पड़ेगा ही। यह काम मुझसे नहीं हो सकता। मैं तो सीधे-सीधे लेखक बनना चाहता हूँ। अपने साहित्यकार मित्रों के नाम जब मैं पत्र-पत्रिकाओं में देखता हूँ तो बड़ी ईर्ष्या होती है। मैं इसे तकदीर का खेल मानता हूँ। इन दिनों अपने सितारे ज़रा गर्दिश में हैं। कभी तो सितारे अनुकूल होंगे, तब देखना अपना भी नाम इन्हीं पत्रिकाओं में प्रमुखता से छपेगा।

कॉलेज के दिनों में प्रोफ़ेसर बनवारीलाल मुझे सामान्य हिन्दी पढ़ाया करते थे। साइंस की कक्षाओं में उनका इकलौता पीरियड रेगिस्तान में बरसाती फुहारों की तरह हुआ करता था। वे अपने पीरियड में कविताएँ गाकर सुनाया करते थे। गला उनका बहुत मधुर था। रीतिकालीन काव्य उनका प्रिय विषय था। भले ही वे प्रेमचंद पढ़ा रहे हों परन्तु किसी भी प्रसंग में वे रीतिकालीन कविताएँ सुनाना नहीं भूलते थे। वे छात्र-छात्राओं में समान रूप से लोकप्रिय थे। प्रेम पत्र आदि लिखने में उनके शिष्य उनकी सेवाएँ प्राप्त किया करते थे। सचमुच उनके सुझाव अत्यंत उपयोगी हुआ करते थे। मुझे एक दिन उनकी सहसा याद हो आई। वर्षों हो गए मुझे कलम घिसते हुए, परन्तु मेरी रचनाएँ कहीं नहीं छपीं। मैंने इस समस्या पर उनसे विचार-विमर्श करने का मन बनाया। मैं जब उनके घर गया, तब वे बिहारी को गुनगुना रहे थे। विद्यापति की पोथी उनकी टेबल पर रखी हुई थी। मुझे देखकर प्रसन्न हुए। बोले- ''कैसे आना हुआ?''

पास की कुर्सी पर बैठते हुए मैंने उन्हें अपनी समस्या बताई और पूछा- ''पत्रिकाओं में अपना नाम कैसे छपे? इस सन्दर्भ में कोई उपाय बताएँ? कॉलेज के दिनों में आपने हम छात्रों की बहुत समस्याएँ हल की थीं। मुझे मालूम है कि आपकी सलाह बहुत उपयोगी होती है। इसी विश्वास के साथ आपके पास आया हूँ।''

''लेखक बनना कठिन है पर मैं तुम्हें सरल उपाय बताता हूँ।'' ऐसा कहते हुए बनवारीलालजी ने मेरा उत्साह बढ़ाया। एक बनारसी पान का बीड़ा मुँह में रखते हुए व बोले- ''तुम परिचर्चाएँ आयोजित करो। इसमें कुछ भी नहीं करना पड़ता। एक विषय ले लो, जैसे 'भ्रष्टाचार मिटाने में युवा वर्ग की भूमिका'। कॉलेज के कुछ लड़के-लड़कियों से उनके विचार इस विषय पर आमंत्रित कर लो। दूसरे शहर के युवाओं को भी फोटो सहित अपने विचार भेजने के लिए आग्रह कर सकते हो। बस, जैसे ही आठ-दस लोगों के विचार तुम्हारे पास आ जाएँ, तुम अपना फ़ोटो संयोजक के रूप में लगाकर किसी भी पत्रिका में भेज दो। तुम्हारी यह रचना फटाफट छप जाएगी और पारिश्रमिक का चेक आने में देर नहीं लगेगी।''

मुझे उनका यह सुझाव बहुत अच्छा लगा। मैंने इस पर अमल करने में कोई देर नहीं की। मैंने युवा वर्ग में लोकप्रिय विषय चुने, जैसे 'प्रेम विवाह कितना सार्थक?' युवक-युवतियों ने इस परिचर्चा के लिए उत्साहपूर्वक विचार भेजे। मैंने फटाफट पूरी सामग्री (अपना फ़ोटो सहित) एक व्यावसायिक पत्रिका में भेज दी। पत्रिका के अगले ही अंक में वह परिचर्चा छप गई। मुझे अतीव प्रसन्नता हुई। कहाँ पाठकों के पत्र कॉलम में चार लाइनें मेरे नाम से छप जाएँ तो मैं गद्‌गद् हो जाता था। इधर चार पृष्ठों में मेरे नाम और फ़ोटो के साथ यह परिचर्चा छपी है। मेरी छाती तो छप्पन इंच चौड़ी हो गई। मैंने मन ही मन बनवारीलालजी को धन्यवाद दिया और नए-नए विषयों पर परिचर्चाएँ आयोजित करने की योजनाएँ बनाने लगा। मैंने अपनी परिचर्चाओं में समाज के सभी वर्गों को सम्मानपूर्वक सम्मिलित किया। विवाहिताओं के लिए मैंने विषय चुना 'ससुराल में मेरा पहल दिन', होली के अवसर पर मैंने पतियों को विषय दिया- 'साली के संग, होली के रंग'। सासों से मैंने जानना चाहा, 'आपकी बहू आपकी नज़र में'। रिटायर बुजुर्गों से मैंने पूछा- 'कैसे दिन बीते नौकरी में'। अलग-अलग वर्ग के लोगों को मैंने विषय दिया- 'मेरे सपनों का भारत'। इस प्रकार मैं विभिन्न व्यावसायिक पत्रिकाओं में लगातार छपने लगा। अब तो लोग परिचर्चा के लिए मुझसे सम्पर्क करते रहते हैं। कुछ लोग विषय भी सुझाते हैं और परिचर्चा में शामिल होने वाले लोगों के नाम-पते भी ले आते हैं। इस प्रकार मेरी नित नई परिचर्चाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपती ही रहती हैं। इन रचनाओं पर पारिश्रमिक भी लगभग ठीकठाक मिल जाता है।

मुझे साहित्य के क्षेत्र में भी नाम कमाना है। यह मेरे लिए विकट समस्या है। मैं अपनी समस्या को लेकर पुनः प्रो. बनवारीलालजी के पास जाता हूँ। वे मेरा विचार जानकर प्रसन्न होते हैं और गुरु गंभीर शैली में मुझे समझाते हैं- ''तुम बड़े-बड़े लेखकों के साक्षात्कार लो। इससे साहित्य की दुनिया में तुम्हारा नाम छा जाएगा।'' मैंने शंका व्यक्त की- ''इसके लिए मुझे उन बड़े-बड़े साहित्यकारों के पास जाना होगा। उनसे मिलना होगा। उनका इंटरव्यू लेना होगा। कठिन काम है यह। मुझसे न होगा।''

बनवारीलालजी ने हँसते हुए मुझे समझाया- ''ऐसा कुछ नहीं करना पड़ेगा तुम्हें। तुम एक प्रश्नावली टाइप कराओ। थोड़ा-बहुत रद्दो-बदल करके उसे विभिन्न साहित्यकारों को भेज दो। प्रश्नावली पर भी ज़्यादा मेहनत करने की ज़रुरत नहीं है। वही सदा से दोहराए जाने वाले प्रश्न : 'आपकी पहली रचना कब और कहाँ छपी?', 'आपके लेखन की प्रेरणा : पत्नी या प्रेयसी?', 'कृपया अपनी रचना प्रक्रिया के

विषय में कुछ बताइए।', 'इन दिनों आप क्या लिख रहे हैं?', 'साहित्य के क्षेत्र में पुरस्कारों के विषय में कुछ कहें। आपको बहुत देर से मिला। क्यों?', 'वस्तु और शिल्प में आप किसे प्रमुखता देते हैं?', 'अपने पाठकों से आप कुछ कहना चाहेंगे?' साक्षात्कार के प्रारंभ में लेखक के विषय में कुछ लिखना हो तो नेट से जानकारी निकाल लो। इतना पर्याप्त है किसी भी बड़े लेखक का बढ़िया साक्षात्कार तैयार करने को।''

मेरी समझ में बात आ गई। मैंने बनवारीलालजी के चरण स्पर्श किए और घर आकर साहित्यकारों से साक्षात्कार के लिए प्रश्नावली बनाने में जुट गया। प्रश्नावली तैयार करने में मुझे ज़्यादा समय नहीं लगा। मैंने एक साथ कई साहित्यकारों को वही प्रश्नावली भेज दी। कुछ दिनों पश्चात् ही मेरे पास साहित्यकारों के फ़ोन आने लगे। लोगों ने उत्साहपूर्वक कहा, ''हम जल्द ही आपके प्रश्नों के उत्तर आपको भिजवा रहे हैं।''

मेरी प्रसन्नता का पारावार न था। इस प्रकार लगभग सभी साहित्यिक पत्रिकाओं में मेरे द्वारा लिए गए ये साक्षात्कार प्रमुखता से छपने लगे। अब साहित्य जगत् में मुझे कौन नहीं जानता? सब जानते हैं। लिखना मुझे कभी नहीं आया। पढ़ने में मेरा मन नहीं लगता। मैंने पहले ही कहा कि किताबें देखकर मुझे पसीना छूटने लगता है। डर लगता है मुझे किताबों से। प्रोफ़ेसर बनवारीलालजी की कृपा से पहले मैं व्यावसायिक पत्रिकाओं में छा गया। बड़ी से बड़ी पत्रिका ने मेरी परिचर्चा उत्साहपूर्वक छापी। इधर हर साहित्यिक पत्रिका मेरे लिए हुए साक्षात्कार खुशी-खुशी छाप रही है। जबकि मैंने आज तक किसी साहित्यकार से कभी कोई इंटरव्यू नहीं लिया। इसकी ज़रूरत भी नहीं है।

'मुलाकातें' शीर्षक से ऐसे बीस साक्षात्कारों की मेरी एक किताब एक बड़े प्रकाशक ने सहर्ष प्रकाशित की है। इन दिनों साहित्य जगत् में इस किताब की बड़ी चर्चा है। पूरी संभावना है कि इस वर्ष साहित्य का कोई बड़ा पुरस्कार मुझे इस किताब पर मिलेगा। बनवारीलालजी ने इसके गुर मुझे भलीभाँति समझा दिए हैं।

***

लघु कथा

परख

डॉ. प्रदीप उपाध्याय

सुनयना ने अपनी खास सहेली सुलेखा से पूछा कि-''इस बार तो यह तय माना जा रहा था कि तुम्हारा रिश्ता पक्का हो ही जाएगा। दोनों परिवार एक दूसरे से मिल भी चुके थे और तुम्हारी उस लड़के से दो बार बात भी तो हो चुकी थी। यहाँ तक कि तुम्हारे पापा ने उन लोगों को लंच पर भी बुलाया था। तब क्या बात हुई कि बात आगे नहीं बढ़ी और बिना कोई कारण बताए दोनों तरफ से मनाही हो गई!''

''अरे क्या बताऊँ! शायद गलती मुझसे ही हुई। ज़्यादा परखने के चक्कर में मैंने ही सोचा कि लड़के का पास्ट भी पता कर लेना चाहिए। मैंने कुछ इस तरह से पूछ लिया जिसमें उससे यह कहकर कबूलवाना चाहा कि देखिए मेरा कॉलेज के दिनों में सहपाठी से ही प्रेम हो गया था लेकिन उसकी नौकरी लगी और माँ-बाप की मर्ज़ी से उसने दूसरी जगह शादी कर ली। जिससे मेरा उसका रिश्ता समाप्त हो गया। यदि हमारी शादी होती है तो उसके बारे में सोचूँगी भी नहीं। क्या आपके भी कोई सम्बन्ध हैं या पहले थे! तब उसने जवाब दिया कि हाँ पहले थे लेकिन अब नहीं है। और हाँ उसने यह भी कहा कि चूँकि वह बिजनेस करता है तो कभी कभार पार्टी में ड्रिंक्स ले लेता है,इससे कोई दिक्कत तो नहीं होगी। तब तो हमने कोई जवाब एक दूसरे को नहीं दिया लेकिन इन्हीं बातों पर हमने सोचा कि यह रिश्ता जोड़ना ठीक नहीं होगा। मेरी ओर से गलती यही हुई कि मैंने लड़के के चालचलन को जानने के लिए अपनी झूठी बात कही लेकिन वह लड़का तो चरित्र के मामले में ऐसा निकला।''

''लेकिन यह भी तो हो सकता है कि लड़का भी तुम्हें परखने के लिए झूठ बोल रहा हो।'' सुनयना ने कहा तो सुलेखा कुछ बोल न सकी। शायद इसके पीछे कहीं पछतावे का भाव छुपा हुआ था।

***

डॉ. प्रदीप उपाध्याय, 16,अम्बिका भवन,उपाध्याय नगर, मेंढकी रोड़, देवास, म.प्र., 455001 मोबाइल: 9425030009
ई-मेल: pradeepru21@gmail.com

मंशायाद ने अपनी पहली कहानी 1955 में लिखी। इनका पहला कहानी संग्रह 1975 में प्रकाशित हुआ। अभी तक उनके 9 कहानी संग्रह जिनमें एक पंजाबी कहानी संग्रह भी शामिल है, प्रकाशित हो चुके हैं। साथ ही पंजाबी नॉवेल 'तनवन तनवन तारा' पर कई टीवी सीरियल भी बन चुके हैं। सन् 2004 में उन्हें उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए राष्ट्रपति अवॉर्ड 'प्राइड ऑफ परफोर्मेंस' दिया गया। इसके अलावा भी उन्हें कई साहित्यिक सम्मानों से सम्मानित किया गया। जिनमें 2007 में मिला आलमी फ्रॉग-ए-उर्दू अदब अवॉर्ड का लाइफ टाइम अचीवमेंट अवॉर्ड भी शामिल है। 15 अक्टूबर 2011 को आपका इस्लामाबाद में देहांत हो गया।

ई-मेल: 786shahadatkhan@gmail.com

अपना घर

मूल कथा : मंशायाद

अनुवाद- शहादत

मैं गंदगी और बदबूदार नालियों में चारों तरफ से घिरा हुआ तालाब...

बारिश और ताज़ा पानी की बूँदों को तरसता हुआ...

एक जैसी सुबह एक जैसी शामें...

वही घर और वही आँगन। वही शहर और सड़कें...

वही हर तरफ मदारियों की तरह चतुर चालाक आदमी और आसमान में थिगली लगाने वाली तेरह तालन औरतें...मुनाफिकत से अटी हुई सूरतें...खुदगर्जी के जाले... साजिशों की मकड़ियाँ और वही टाँगे खींचने और मेरे उठने-बैठने की जगहों पर मुर्गियों की तरह गंदगी फैलाते खानदान वाले। वही हर रोज़ एक ही तरह सोकर उठना और वही सत्तरसत्तर कदम पीछे हटकर एक दूसरी से टक्करें मारती घर की दिवारें।

भागभाग दफ़्तर के लिए तैयार होना...

वही मेज़ और वही एक जैसा नाश्ता...

वही दफ़्तर और वही मुर्दार के इंतज़ार में बैठे हुए गिद्धों की तरह बड़े अफसर की नज़रें। वही फ़ाइलें और वही एक जैसे कै किए हुए लफ्ज़ों से उनका पेट भरना। बाहर से थककर घर आना और घर से उकता कर बाहर निकल जाना।

कोई सा काम भी करता। लगता सदियों से यही कर रहा हूँ। दफ़्तर में टेलीफ़ोन सुनते वक्त हैलो कहता तो मालूम होता जब से पैदा हुआ हूँ हैलो हैलो कर रहा हूँ। डिपो से आटा लेने के लिए कतार में खड़ा होता तो लगता जब से खड़े होना सीखा है आटा लेने के लिए कतार में लगा हूँ और कभी बारी नहीं आएगी।

मुँह का ज़ायका बदलने के लिए किसी दोस्त के घर जाता तो वहाँ भी वही सब कुछ पुराना और बर्ता हुआ मालूम होता...

वही मेज़ और कुर्सियाँ और वही उनकी हमेशा से दिखती हुई तरतीब। बातों के एक जैसे मौजूआत (विषय)। वही हर घर की अपनी एक अलग तरह की खुश्बू या बदबू... एक जैसी चाय और चाय के बर्तन, वही एक तरह मेज़बान का हर बार झुककर इस्तकबाल करना और खैरियत पूछना और वही एक जैसे खोखले और बनावटी कहकहे!

उकताहट और बेजारी की बारिश से बचने के लिए मैं नई-नई मसरूफियात और मसलों की छतरियाँ तलाश करता हूँ... गहरी खामोशी और सन्नाटे में पत्ता भी गिरे तो आवाज़ चौंका देती है। गुप अँधेरे में जुगनू भी दिया मालूम होता है। मैं घर में कपड़े लटकाने वाली नई खोंटी लाकर ठोंकता या बीवी नए रुमाल में लपेटकर रोटी लाती तो कुछ देर के लिए घर नया-नया लगने लगता। हम दोनों मियाँ बीवी कमाते और छोटी बड़ी चीज़ें खरीद खरीदकर घर को बासी होने से बचाने की कोशिश करते रहते। मगर हर नई चीज़ अगली सुबह को पुरानी हो जाती। फिर हम मेज़ों, कुर्सियों, सोफों और पलंगों की तरतीब बदलकर काम

चलाते। आपस में लड़ते। जिन से लड़ाई होती उनसे सुलह कर लेते और जिनसे गाढ़ी छन रही होती उनसे दुश्मनी मोल ले लेते, लेकिन बात न बनती। मज़ा न आता... लगता... जैसे हम एक बड़े सारे कुएँ में कैद है और बाहर निकलने के लिए दिन- रात हाथ पाँव मारते और लहुलूहान होते रहते हैं।

एक रोज़ मैंने एक किताब पढ़ी और जल्दी से बंद करते हुए कहा, ''पता चल गया।''

उसने पूछा, ''किस बात का?''

''बासी हो जाने का।''

''वो कैसे?''

''वो इस तरह कि हमने अपने लिए बहुत सी दुश्वारियाँ और मुश्किलात खुद पैदा की हुई है। हमें आराम और आशाई की ज़िंदगी तर्क करके सादा और फितरी ज़िंदगी गुज़ारनी चाहिए। आसाईशों और सहूलियतों ने हम से सच्ची ज़िंदगी का ज़ायका छीन लिया है। इसलिए सादगी की शुरुआत आज से ही होनी चाहिए।''

उसने कहा, ''क्यूँ न हम छुट्टियाँ लेकर कुछ दिनों के लिए गाँव चल चलें और सादा और फितरी ज़िंदगी गुज़ारने की आदत डालें और खोए हुए सच्चे ज़ायकों से आशनाई हासिल करें।''

मैंने कहा, ''बिल्कुल ठीक है... मुझे भी गाँव गए हुए कई बरस हो गए है। गाँव वाले जब भी आते हैं शिकायत करते हैं कि मैं गाँव को भूल गया हूँ... मुमकिन है हवा के बदलाव से बासी और बदबूदार होने का ये एहसास कम हो जाए, जो हमें एक जैसे बाहर से चमकते मगर अंदर से काले लोगों में रहते हुए दिन रात घेरे रखता है।''

उसने कहा, ''प्रोग्राम बनाए... मैं भी एक जैसे बर्तनों में आलू गोश्त और गोश्त आलू पका-पकाकर उकता गई हूँ। कहे कब चलना है?''

''तुम तैयारी शुरू करो'', मैंने जवाब दिया। और गाँव जाने की तैयारी शुरू हुई।

खर्चों का अंदाजा लगाया गया। हमने अपने-अपने दफ़्तरों में छुट्टी की दरख्वास्ते दीं और मंजूर कराई। रेल कार की सीटें बुक कराईं और एक दोस्त से कहकर एक काबिल भरोसेमंद किस्म का आदमी तलाश किया, जो हमारी गैरहाज़िरी में घर की चौकीदारी कर सके। उसे दो तीन रोज़ पहले बुलाकर सब कुछ समझा दिया गया कि पानी का नल और रसोई गैस का चूल्हा किस तरह बंद करते हैं। उसे ताकीद कर दी कि रात को ज़्यादा देर तक बत्ती न जलाए रखे। दूध वाले से एक पाव से ज़्यादा दूध न ले। अख़बार वाले को मना कर दिया है मगर वह गलती से अख़बार डाल जाए तो उसे दुकान पर जाकर वापस कर आए। मुर्गियों को दाना डालता रहे और कसाई की दुकान से छिछड़े लाकर बिल्ली और कुत्ते को डालना न भूले। उसे डाक के बारे में भी बता दिया गया कि कहाँ और कैसे सँभाल कर रखे और वापसी के खत किस तरह वापस करने हैं। और अगर कोई मेहमान आ जाए तो उसके मर्तबे का अंदाज़ा किस तरह लगाना और उसके साथ कैसा सुलूक करना है। टेलीफ़ोन किस तरह सुनना और क्या जवाब देना है और रांग नंबर से किस तरह निपटना है।

चौकीदार शरीफ़ और अच्छा आदमी मालूम होता था। फिर भी हमने पड़ोसियों को इशारों-इशारों में ताकीद कर दी कि वो हमारे घर और चौकीदार की निगारी करते रहे और अगर वो अपनी ड्यूटी पूरी ज़िम्मेदारी के साथ न निभा रहा हो तो हमें गाँव के पते पर तार दें।

इस के बाद सामान बँधने लगा। बच्चों के लिए खास तौर पर ऐसे कपड़े सिलाए गए जो गाँव की गलियों के किचड़ों और गर्द गुबार में भी काम दे सके। अपने लिए हमने रेशमी और कीमती कपड़ों के अलावा सीधे-सादे और रात को पहनने वाले कपड़े भी साथ रख लिए। तौलिये, बनियानें, अंडर वियर, जुराबे, मफलर, कम्बल, टाइयाँ, इज़ारबंद, सूट, कोट और पतलूनें। इसके अलावा असली और नकली ज्वैलरी, मेकअप का सामान, स्वेटरें, कोटियाँ, पाजामें, शलवारें, कुर्ते और हर किस्म के जूते और चप्पलें। पता नहीं किस चीज़ की कब जरूरत पड़ जाए। आख़िर गाँव में हमें वालिदैन के घर में तो बंद नहीं रहना था और फिर गाँव वाले क्या सोचते कि इनके पास बस यही दो चार जोड़े कपड़ों के हैं; जिन्हें बदल-बदलकर पहनते रहते हैं।

इस ख़्याल से कि गाँव में अच्छी किस्म की चाय की पत्ती नहीं मिलेगी, हमने चाय के दो एक डिब्बे भी साथ रख लिए और इस ख़्याल से कि ख़ालिस दूध की चाय शायद बच्चों को हज़म न हो या हमें उस दूध से महक आए, सूखे वलायती दूध का एक डिब्बा भी रख लिया। पप्पू के लिए दो चार निप्पल फालतू रख लिए और ज़िद करने की सूरत में उसे मनाने के लिए टाफियाँ, बिस्किट और च्यूंगम भी। बल्कि कुछ एक गुब्बारे भी रख लिए। वो जब भी ज़िद करता था गुबारे ले कर बल्कि फाड़कर चुप होता था। ताहम हमने गुब्बारों में हवा नहीं भराई क्योंकि हम हवा बदलने के लिए तो जा रहे थे और गाँव में शहर की निस्बत ज़्यादा साफ और काफी मात्रा में उपलब्ध है।

गाँव की छोटी सी दुकान पर चीज़ें अच्छी नहीं मिलती और फिर महँगी भी होती है। इसलिए कपड़े धोने का पाउडर, नहाने का साबुन, शैम्पू... और हेयर क्रीम, टूथपेस्ट और मंजन, शेविंग और मेकअप का सामान भी हमने साथ रख लिया। रेडियो ट्रांजिस्टर और टेप रिकॉर्डर तो बहरहाल ज़रूरी चीज़ें थी। गाँव में गुज़ारे हुए लम्हों को महफूज़ करने के लिए कैमरे में नई फिल्म भी डलवा ली। बड़े लड़के को अरसे से बंदूक का धमाका सुनने की ख्वाहिश थी, इसलिए कुछ कारतूस और बंदूक भी साथ रख ली। क्या पता कुछ शिकार वगैरहा भी मिल जाए। गाँव में जूते जल्दी खराब और मैले हो जाते हैं, इसलिए मुख्तलिफ रंगों की पॉलिश और ब्रुश भी ज़रूरी थे। लिखने-पढ़ने का सामान राइटिंग पैड, दो चार खूबसूरत बॉल पॉईंट, सादा और डाक के लिफाफे और टिकटें। गाँव में बैठकर दोस्तों और जानने वालों को खत लिखेंगे और गाँव की सादा और फितरी ज़िंदगी की तस्वीर से अवगत कराएँगे।

पढ़े-लिखे आदमी के लिए ज़रूरी होता है कि वो कभी लिखता या पढ़ता हुआ दिखाई भी दे। अब गाँव में अख़बार मिलने का तो कोई इमकान ही नहीं था। चुनांचे हमने कुछ पत्रिकाएँ, शायरी और कहानी संग्रह, अंग्रेज़ी के कुछ एक नॉवेल जिन्हें खरीद कर महज सजावट और भ्रम के लिए कायम रखने के लिए बुकशेल्फ में रखा हुआ था, साथ ले लिए... कि फुरसत होगी और इन्हें पढ़ेंगे। साथ ही सादा लोगों को हैरान करेंगे कि ये मोटी-मोटी किताबों के इतने

बारीक-बारीक अल्फाज़ कैसे पढ़ लेते हैं। बीवी को कभी-कभी पित का दर्द हो जाता था इसलिए फौरी तौर पर आराम पहुँचाने वाली गोलियों की शीशी, नन्हें का गला खराब हो जाने के इमकान के पेशनज़र उसका सिरप और हंगामी सूरत की दूसरी दवाए और थर्मामीटर... गाँव में अच्छी ब्रांड के सिगरेट कहाँ, चुनांचे दोचार कार्टन सिगरेटों के... खुश्बूदार गैस लाइटर और लाइटर की गैस की शीशी।

बच्चे नाश्ता में डबल रोटी के आदी थे चुनांचे रस और डबल रोटियों का इंतज़ाम भी कर लिया गया। कस्टड पाउडर, सवेया और खुश्क मेवे हम वैसे ही गाँव वालों के लिए तोहफे के तौर पर ले जा रहे थे और घर में डिपो से मंगाकर जो चीनी रखी हुई थी वो भी साथ रख ली बल्कि बीवी ने बहुत सी आउट ऑफ फैशन हो जाने वाली क्रॉकरी भी एक बड़े सारे डिब्बे में बंद कर ली। उसका इरादा था वो वापसी पर ये क्रॉकरी वहीं छोड़ आएगी और डिब्बे में चावल भर लाएगी।

जिस रोज़ हमें जाना था उस रात को बारिश हो गई।

रेल से उतरकर गाँव जाने के लिए बस का सफर करना पड़ता था और ऐसे मौसम में फिसलन की वजह से बस के हादसे का डर था। हमने रेलकार के टिकट वापिस किए और रेलवे के एक बड़े अफसर से सिफारिश कराके दो रोज़ बाद की सीटे बुक कराई... मगर उसी शाम को अचानक वालिद साहब आ गए।

उन्हें मामूली और मैले-कुचले कपड़ों में देखकर लगता था जैसे वो हल चलाते या चारा काटते हुए अचानक कोई बुरी खबर सुनकर उठ खड़े हुए हो और कपड़े बदले बगैर आ गए हो। उनके पास कोई सामान भी नहीं था। हम परेशान हो गए। खुदा खैर करे।

सलाम दुआ के बाद पूछा तो कहने लगे, ''आज सुबह निलाई करते हुए अचानक तुम लोगों और बच्चों को देखने के लिए दिल मचला... मैंने घर जाकर तुम्हारी वालिदा को बताया। फिर उससे किराया लिया और चला आया... सोचा अपने ही घर तो जा रहा हूँ।''

***

लघु कथा

बेटे होकर

सुमन कुमार

''बाबूजी का फ़ोन आया था। कह रहे थे- माँ बहुत बीमार रहने लगी है। चुपचाप पड़ी रहती है। बस, हमसे- बच्चों से मिलने का बहुत मन करता है।''

''तो चलो, घूम आते हैं। छुट्टियाँ भी आ गई हैं।'' नीता ने पति करण से कहा।

''मैं नहीं जाने वाला अब गाँव-बाँव में। घूमने भी चलेंगे तो दार्जिलिंग, नैनीताल वगैरह कि...। गाँव-घर के लोग तो मुझे वही 'करना' कहके बुलाएँगे। इतना बड़ा अफ़सर हूँ, मुझे अब वहाँ के रहन-सहन से घिन-सी आती है।''

यह बात सुनकर नीता कुछ सोचने लगती है। फिर बोलती है, ''करण! ज़रा सोचो। तुम नहीं गए तो माँ-बाबूजी सारी ज़मीन तुम्हारे भाई के नाम कर देंगे तो...? फिर माँ जी के पास गहने-जेवर भी कुछ कम हैं क्या...?''

''अरे, यह तो मेरे दिमाग में ही नहीं था। थैंक्स माई स्वीट डार्लिंग।'' करण नीता को बाँहों में लेकर लगभग नाच उठा था।

''वाह करण! वाह!! अगर यही बात मैं कहती तो लोग बहू समझकर मुझपर थूकते, पर तुम बेटे होकर...। कुछ नहीं, कल ही घर चलने की तैयारी करो।''

***

सुमन कुमार, सी/ओ- नरेश राय, एस/ओ - बालकिशुन राय, देवी स्थान, मोहनपुर, पुनाईचक, न्यू कैपिटल, पोस्ट- एल. बी. एस. नगर, पटना - 800023 (बिहार)
मोबाइल: 7488272208
ई-मेल : suman.writer54@gmail.com

पहाड़ी सुंदरी ग़ुस्से में है!

मुरारी गुप्ता

जिस तेज़ी से पहाड़ों की रानी मसूरी अपना रंग, ढंग और रूप बदल रही है, लगता है आने वाले कुछ सालों में पहाड़ों की रानी के हुस्न से मोहब्बत करने वाले इससे मुँह मोड़ लेंगे। और यह खुद भी लोगों से किनारा कर लेगी। पहली बार मसूरी साल 2015 में आना हुआ। उसके बाद अब यानी वर्ष 2019 के जुलाई महीने में फिर से यहाँ आने का अवसर मिला। मगर इन चार सालों में मसूरी ने जिस तेज़ी से नई शक्ल धारण की है, वह प्रकृति को प्यार करने वाले पर्यटकों के लिए किसी सदमे से कम नहीं है। पहाड़ों की इस सुंदरी की वादियों की गंध को महसूस करने के लिए माल रोड पर कदम रखते ही डीजल की गाड़ियों से निकलने वाला गंध का चकराने वाला भभका आपका स्वागत करता है। यह पहाड़ी सुंदरी हर रोज़ न जाने कितनी बार इस गंध से रू-ब-रू होती है। लगभग दो किलोमीटर लंबे माल रोड पर कदम बड़ी सावधानी से इसलिए रखने पड़ते हैं, कि कहीं पीछे से आ रही कोई गाड़ी आपके पैरों को कुचलती हुई न गुज़र जाए।

माल रोड, हर पर्वतीय पर्यटन स्थल की यूएसपी यानी विशेषता होती है। यानी उस पर्वतीय स्थान को जानने, समझने, महसूस करने और यादों में बसाने के लिए ही इस रोड की खोज की जाती है। देश के हर पर्वतीय पर्यटन स्थल पर आपको माल रोड मिलेगा। और वही उस स्थल की पहचान भी होता है। कह सकते हैं वह उसकी आत्मा होता है। नैनीताल हो या फिर शिमला हर जगह माल रोड उस स्थल का सबसे आकर्षक बिंदु होता है। मगर,

मुरारी गुप्ता, ई-37 ए, शंकर विहार, एयरपोर्ट के सामने, जयपुर-302017, राजस्थान
मोबाइल: 9414061219
ईमेल: murliyyou@gmail.com

पिछले कुछ वर्षों में व्यवसायीकरण की खुली होड़ ने इन पर्वतीय पर्यटक स्थलों को बुरी तरह नुकसान पहुँचाया है। इसके पीछे के खेल को समझना है, तो अलग से चर्चा करनी पड़ेगी।

चिंता सिर्फ यहाँ आने वाले पर्यटकों को अच्छा माहौल मिले, इतनी भर नहीं है। पर्यटक तो अच्छा वातावरण और माहौल के लिए किसी दूसरी जगह को भी तलाश लेंगे। लेकिन प्रकृति के साथ हम जो व्यवहार कर रहे हैं, लगता है हम उसके प्रतिशोध से लगभग बेखबर है। हम भूल जाते हैं केदारनाथ त्रासदी। हज़ारों लोगों की मौत। विस्थापन। विध्वंस। प्रकृति का रौद्र स्वरूप। हम भूल जाते हैं कि हर साल बढ़ती गर्मी, पिघलते ग्लैशियर, सूखती नदियाँ, तालाब, पोखर, कटते जंगल और बढ़ते प्रदूषण से मुकाबला करने के लिए हमारी आने वाली पीढ़ियों के पास आने वाले सालों में पास कोई साधन नहीं बचेंगे। हम उन्हें क्या धरोहर सौंपकर जाएँगे? यह बड़ा सवाल है। जिसका जबाव खोजने की चिंता कहीं नज़र नहीं आती।

फिर से मसूरी पर लौटता हूँ। दो किलोमीटर लंबे माल रोड पर लगभग एक घंटे की चहल कदमी में लगातार डेढ़ सौ दो सौ मीटर लंबा एक भी पैच ऐसा नज़र नहीं आता जहाँ से पहाड़ों की सुंदरी को ताज़ी साँस के साथ महसूस किया जा सकते। माल रोड के दाईं और बाईं, दोनों ओर पहाड़ों पर, उन्हें खोदकर, उन्हें गहरा कर, उनके ऊपर, उन्हें हटाकर और न जाने कैसे-कैसे तरीकों से आलीशाल होटल, रेस्त्राँ, पार्किंग उगा

डाले गए हैं। यह सही है कि हमने सुख सुविधाएँ विकसित करने में कोई कमी नहीं रखी है। और स्थानीय निकाय, या सरकार को इससे भरपूर राजस्व भी मिलता होगा। आने वाला पर्यटक यहाँ एक दिन की बजाय दो दिन ठहरता होगा। मगर, क्या इस मसूरी के कंधों में इतना सब झेलने की वाकई में ताकत है! दूसरी ओर माल रोड पर पूरे दो किलोमीटर की लंबाई में हज़ारों की संख्या में छोटे-बड़े-बहुत बड़े वाहन दोनों दिशाओं से एक के पीछे एक लगभग धकियाते हुए रैंगते हुए आगे बढ़ते नज़र आते हैं। संभव है इनमें बहुत से वाहन स्थानीय भी होंगे। चिंता की बात यह है कि क्या इस छोटी सी पहाड़ी सुंदरी के सीने में इतना सब कुछ सहने की क्षमता है! इतना कार्बन। इतनी गर्माहट। कहीं ऐसा नहीं हो कि वह बिफर पड़े। और किसी दिन इंद्र देवता के सहयोग से अपना रौद्र और वीभत्स रूप धारण कर लें। उस वक्त हमारे पास बचने के कोई भी साधन काम न आएँगे।

चूँकि हिमालयन रेंज की पहाड़ियाँ अभी भी अपने अंतिम रूप में नहीं पहुँची हैं। इसे आसान शब्दों में कहें तो यहाँ के पहाड़ अभी तक उतने पक्के नहीं है, जितने की अरावली या दक्षिण की दूसरी पर्वतमालाएँ। यहाँ की पहाड़ियाँ अभी तक कच्ची हैं। इसलिए हर बारिश में पहाड़ियाँ ढह जाती है। इसे अंग्रेज़ी लैंड स्लाइड कहते हैं, जो बारिश के दिनों में यहाँ और समूचे उत्तर पूर्व में आम बात है। इसलिए इन पर पक्का निर्माण कार्य बहुत अनुशासन के साथ करने की ज़रूरत होती है। पहाड़ों पर रहने वाले लोग जानते हैं कि पहाड़ों का सम्मान कैसे किया जाता है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में पहाड़ों और खासकर हिमालयन रेंज की पहाड़ियों का सम्मान व्यवसायीकरण की आंधी में खत्म सा हो गया है। पर्यावरणविद मानते हैं और चेताते भी हैं कि जिस तेज़ी से मसूरी सहित हिमालयी पर्वतमालाओं के पर्वतीय कस्बों में पक्का निर्माण कार्य हो रहा है, वह यहाँ के पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बिलकुल अनूकूल नहीं है। आवश्यकता से अधिक वाहन का रेलमपेल और उससे निकलने वाला कार्बन और गर्मी इस खूबसूरत पहाड़ी की सेहत के लिए बहुत खतरनाक है। एक और तथ्य जो यहाँ नज़र आता है वह है यहाँ के ड्रेनेज सिस्टम में फंसा प्लास्टिक, बोटल और कचरा। हमें फिर से केदारनाथ की त्रासदी अपने ज़ेहन में रखनी चाहिए। कहने को तो एमडीएमसी यानी मसूरी देहरादून म्युनिसीपल कार्पोरेशन के तहत इस छोटे पहाड़ी कस्बे का ख्याल रखा जाता है। लेकिन सच्चाई यह कि आपको पावभर भी जामुन लेने हैं तो वह भी यहाँ प्लास्टिक की थैली में बहुत आसानी से और खुलेआम मिल जाएगा। हम अनुमान लगा सकते हैं कि दिन भर में कितना प्लास्टिक कचरा यहाँ एकत्र होता होगा। इस मामले में कुछ पर्वतीय स्थलों के प्रशासन ने अच्छा अनुशासन दिखाया है। और वहाँ प्लास्टिक का इस्तेमाल पूरी तरह प्रतिबंध किया है। क्या कम से कम अपने पर्वतीय धरोहरों को ज़िदा रखने के लिए इस तरह का अनुशासन हम यहाँ लागू कर सकते हैं?

अब थोड़ी चर्चा, मसूरी के उन पहलुओं

की जो प्रकृति के अलावा इसके इतिहास को भी जानने में दिलचस्पी रखते हैं। इसका लिखित इतिहास पढ़े बिना भी माल रोड से गुज़रते वक्त स्थान-स्थान पर ऊँचे स्थान पर एमडीएमसी की ओर से शीशे में बंद इस कस्बें की कुछ धरोहरों से यहाँ के इतिहास को जाना और महसूस किया जा सकता है। अंग्रेज़ी शासनकाल में उन्नीसवीं सदी के आख़िर में इस कस्बे को पर्वतीय स्थल के रूप में पहचान मिली। उस वक्त यहाँ आने वाले लोगों के सामने सबसे बड़ी समस्या आती थी आवागमन के साधनों की। 1890 में एक भारतीय व्यापारी के दिमाग में इस समस्या के समाधान के लिए एक हाथ से खींचे जाने वाले रिक्शे का विचार आया। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने इसके लिए उसे तत्काल अनुमति दे दी थी। ब्रिटिश हुकुमत ने उसे इसके लिए चार्लीविले होटल में किराए पर एक वर्कशॉप लगाने की भी इजाज़त दे दी थी। उस वक्त की चार्लीविले होटल आज का लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी यानी नौकरशाहों को प्रशिक्षण देने का स्थल है। यह हाथ से खींचे जाने वाला रिक्शा जल्द ही यहाँ आवागमन का प्रमुख साधन बन गया था। बल्कि जल्द ही इसने स्टेटस सिंबल के तौर पर पहचान कायम कर ली। इन हाथ रिक्शाओं को खींचने वाले मज़बूत युवा व्यक्ति को झंपनीज कहा जाता था। उनके लिए एक निर्धारित ड्रेस होती थी। शुरुआत में दो सीटों वाले रिक्शा को खींचने के लिए ब्रिटिश सरकार ने पाँच झंपनीज को नियुक्त किया था। इसी तरह एक सीट वाले रिक्शा के लिए पाँच लोगों को लगाया था। 1903 आते-आते मसूरी के माल रोड पर तीन सौ से ज़्यादा हाथ रिक्शा नज़र आने लगे थे। माल रोड पर एक हाथ रिक्शा अभी भी बंद शीशे में रखा है, जो उस दौर को वर्तमान समय में ले आता है।

एमडीएमसी के लगाए ऐतिहासिक धरोहरों में ही यहाँ के सिनेमा इतिहास का भी पता चलता है। मसूरी में पहला सिनेमा हॉल कब शुरु हुआ होगा? सोचिए। यह 1912 का वक्त था। पिक्चर पैलेस के नाम से 1912 में मसूरी में पहला सिनेमा हॉल शुरू हुआ था। उसके बाद 1920 और 1930 के बीच यहाँ कई और भी सिनेमा घर खुले। इनमें रोक्सी सिनमा, रियाल्टो, केपिटल, मैजेस्टिक, बसंत और जुबली सिनेमा घर शुरु हुए। ये सभी माल रोड पर मौजूद थे और इनमें वर्षों तक बॉलीवुड और हॉलीवुड फिल्में लोग देखते रहे हैं। पिक्चर पैलेस उत्तर भारत का पहला ऐसा सिनमाघर था, जो बिजली से चलता था। इसे इलेक्ट्रिक पिक्चर पैलेस भी कहा जाता था। एमडीएमसी ने माल रोड के किनारे पर शीशे में बंदकर मैजेस्टिक सिनेमा का एक प्रोजेक्टर का प्रदर्शन कर रखा है, जो मसूरी के सिनेमा के खुशनुमा दिनों की याद ताज़ा करता है।

मसूरी की जीवंत किंवदंती मशहूर अंग्रेज़ी कथाकार रस्किन बॉन्ड की चर्चा के बिना मसूरी की यात्रा अधूरी है। लगभग 85 साल के रस्किन अभी भी सक्रिय है। यहाँ गोद लिए परिवार के साथ रहते हैं। वे माल रोड पर मौजूद कैंब्रिज बुक डिपो पर हर

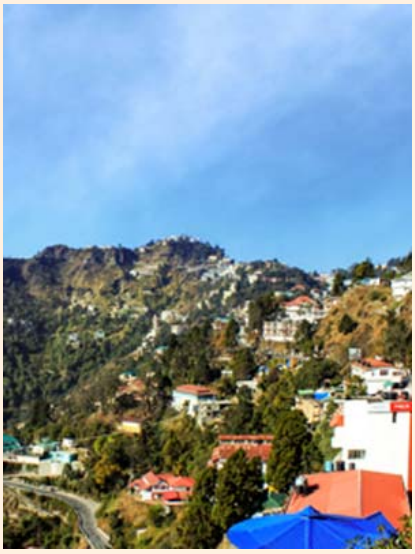

शनिवार दोपहर तीन से चार के बीच अपने चाहने वालों और पाठकों से मिलते हैं। लोग उनके साथ फ़ोटो खिंचवाते हैं। उनके हस्ताक्षर वाली पुस्तकें लेते हैं। रस्किन से बेहतर मसूरी को कौन जानता होगा। उन्होंने अपने जीवन के पचपन साठ साल यहाँ गुज़ारे हैं। एक साक्षात्कार में चिंता जताते हुए कहते हैं, जिनके पास ठीक-ठाक पैसा होता है, वे अब मसूरी को हेय नज़रों से देखते हैं। वे लोग मसूरी या शिमला आने की बजाय मलेशिया या हांगकांग जाना पसंद करते हैं। सवाल है क्यों?

ऐतिहासिक धरोहरों और पुरानी यादों के नॉस्टेल्जिया से बाहर आकर फिर से तीसरे पैराग्राफ की आख़िरी पंक्ति से शुरू करता हुआ रस्किन बॉन्ड की चिंता को आगे बढ़ाता हूँ। रस्किन बॉन्ड की चिंताओं का आसानी से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि पिछले कुछ दशकों में हमने हिमालयी सुंदरता के साथ किस तरह पशुवत व्यवहार किया है। और लगातार कर रहे हैं। वक्त अब भी है। हम अब भी हालात को नियंत्रण में ला सकते हैं। बस, मन और मस्तिष्क में से हिमालयी सुंदरता के आर्थिक शोषण के खयाल को हमेशा के लिए निकालना होगा। इनके व्यवसायीकरण में अनुशासन लाना होगा। और हाँ, यह भी ज़ेहन में खयाल रखना होगा कि अगर हम ऐसा नहीं कर सके तो यह हिमालयी सुंदरी जब कभी अपने पशुवत व्यवहार पर उतरेगी तो दूर-दूर तक मनुष्य और मानवता के चिह्न नज़र नहीं आएँगे।

***

अमृता प्रीतम- जन्मशताब्दी वर्ष पर

अनाम रिश्तों की चितेरी

वीरेन्द्र जैन

जैसे कोई कटी पतंग बिजली के तारों में अटक जाती है ठीक वैसे ही अमृता प्रीतम कई महीनों तक बिस्तर पर अटकी पड़ी रही थीं। मरीज़ों से सवाल दर सवाल करने वाले डॉक्टरों ने जबाब दे दिया था। वे अचल और लगभग अचेत हो गई थीं। जीवन के लक्षण कम से कम हो गए थे, केवल उनका दिल था जो धड़क रहा था और साँसें थीं जो आ जा रही थीं। ऐसा शायद इसलिए क्योंकि अमृता प्रीतम ने पूरा जीवन इन्हीं दो क्रियाओं के सहारे जिया था।

वे कवयित्री और कथा लेखिका के रूप में जानी जाती थीं, पर उनके पाठकों के लिए इन विधाओं में भेद करना सम्भव नहीं था; क्योंकि उनकी कथाएँ भी कविताएँ ही होती थीं। उनकी रचनाएँ दिल से दिल के बारे में दिल के लिए लिखी जाती थीं। वे जीवन को गणित के सरल सवालों की तरह नहीं मानती थीं और ना ही वैसे सवाल उनकी रचनाओं के विषय होते थे। जीवन उनके लिए एक संश्लिष्ट प्रक्रिया थी तथा उसके सवाल हल होने की जगह नए सवाल पैदा करते हैं। भावनाओं को शब्द देने में उन्हें महारत हासिल थी पर शब्द दे देने से भावनाओं का रूप परिवर्तित नहीं होता था अपितु वे शब्दाकार में आकर भी वैसी ही बनी रहती थीं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वे निराकार को साकार करती थीं।

उनके लघु उपन्यास -एस्कीमो स्माइल- का यह प्रारम्भिक वाक्य देखिए-

एकता को अपना आप एक औरत की तरह नहीं एक सड़क की तरह लगा, सड़क, जो हमेशा एक ही जगह पर रहती है, पर फिर भी कहीं से आती है और कहीं जाती है। एकता के मन की हालत भी एक ही जगह पर थी, पर यह हालत इंसान की उस तवारीख़ की तरफ से आ रही लगती थी जो आज तक लिखी गई है और उस तवारीख़ की तरफ जा रही लगती थी जो आज तक नहीं लिखी गई।

वीरेन्द्र जैन, 2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड, अप्सरा टाकीज के पास, भोपाल (म.प्र.) 462023
मोबाइल: 09425674629

अमृता प्रीतम ने आम प्रचलित रिश्तों से जन्मी कहानियाँ नहीं लिखीं अपितु इंसानी रिश्तों के नए-नए आयाम तलाशे और उन अनाम रिश्तों की भावनाओं को पूरी गहराई से चित्रित किया। एक जगह वे लिखती हैं कि जिस राजेन्द्र सिंह बेदी की कहानियाँ पंजाब से चल कर लन्दन, पेरिस तक पहुँच जाती हैं पर उसके मन की बात वहीं की वहीं खड़ी रहती है तथा सड़क पार करके सामने रहने वाली तक नहीं पहुँच पाती।

एक जगह वे लिखती हैं- लोग समय की दीवार पर अपना नाम नहीं लिख पाते, लोग दिलों की दीवार पर अपना नाम नहीं लिख पाते इसलिए ऐतिहासिक इमारतों की दीवारों पर अपना नाम लिख देते हैं।

अमृता प्रीतम के उपन्यास की एक नायिका अपना रिश्ता तोड़ कर आ रही है और उस स्टेशन पर उतरती है जहाँ से उसे हमेशा गाड़ी बदलना होती है। सदैव की तरह इस बार भी वह रेलवे स्टेशन के निकट के होटल में जाती है जहाँ वह ट्रेन की प्रतीक्षा में बैठ कर कॉफ़ी पिया करती है। वर्षों से एक खास बैरा उसे कॉफ़ी सर्व करता रहा है पर उस बार जब एक नया बैरा कॉफ़ी ले जाने लगता है तो पुराना बैरा उससे कॉफ़ी की ट्रे छीन कर अपने वर्षों पुराने रिश्ते की दुहाई देकर उससे कहता है कि मैं इन्हें तब से कॉफ़ी पिला रहा हूँ जब ये छोटी सी बच्ची थीं। नायिका इस रिश्ते और तोड़ कर आए रिश्ते की तुलना करते हुए सोचती है कि कौन सा रिश्ता सच्चा है और कौन सा रिश्ता कच्चा था। उनके एक उपन्यास की नायिका को ऐसे व्यक्ति से विवाह करना पड़ता है जिसका यह दूसरा विवाह है और जिसके पहले विवाह से दो बच्चे हैं। वह अपने पति को कभी प्यार नहीं कर पाती, किंतु उसके बच्चों को भरपूर प्यार करती है। वह अपनी सहेली से अपने मन को साझा करते हुए कहती है कि मुझे सदा लगता रहा कि ये बच्चे मेरे अपने बच्चे हैं और पति सौतेला है।

उन्होंने अपने जीवन में भी रिश्तों की व्यापकता को जिया है। वे साहिर लुधियानवी से प्रेम करती थीं और जीवन की वह रात उनके जीवन की सबसे बहुमूल्य और यादगार रात्रि रही जब साहिर उनके घर मेहमान थे व जुकाम से पीड़ित थे। उन्होंने

साहिर के सीने पर गर्म तेल की मालिश की। साहिर का छूट गया गन्दा रूमाल उनकी सबसे बड़ी धरोहर रही।

अमृता प्रीतम ने विवाह भी किया था किंतु दिया गया वह रिश्ता चल नहीं सका, भले ही उन्होंने अपने पति का नाम प्रीतम उम्र भर अपने नाम के साथ लगाए रखा। अपने अंतिम वर्ष उन्होंने चित्रकार इमरोज़ के साथ बिताए तथा उनके साथ अपने रिश्ते को कभी परिभाषा में बाँधने की कोई कोशिश नहीं की। यह रिश्ता दुनिया के सारे रिश्तों से ऊपर रहा। एक समय अमृता प्रीतम को राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया गया था। गणतंत्र दिवस के अवसर पर राष्ट्रपति सभी सांसदों और विशिष्ट व्यक्तियों को सपरिवार आमंत्रित करते हैं, इसलिए अमृता प्रीतम भी आमंत्रित होती थीं किंतु अपरिभाषित रिश्ते के कारण इमरोज़ के लिए आमंत्रण नहीं होता था अत: बाहर कार में बैठे पुस्तक पढ़ते हुए वे उनकी प्रतीक्षा करते रहते थे।

डॉक्टर देव, नीना, नागमणि, अशु, एक सवाल, बन्द दरवाज़ा, हीरे की कनी, रंग का पन्ना, धरती सागर और सीपियाँ, एक थी अनिता, सब में उनकी नायिकाएँ अपने रिश्तों की गहराइयों को सामने लाकर समाज से सवाल करती हैं कि जो रिश्ते तुमने बना दिए हैं वे कितने थोथे और अधूरे हैं। मनुष्य मनुष्य के बीच रिश्तों के अनगिनत आयाम हैं।उनके लिए तो गुलज़ार की वे पंक्तियाँ ही सटीक बैठती हैं कि प्यार को प्यार ही रहने दो कोई नाम न दो।

***

मैं तुझे फिर मिलूँगी

अमृता प्रीतम

मैं तुझे फिर मिलूँगी
कहाँ कैसे पता नहीं
शायद तेरे कल्पनाओं
की प्रेरणा बन
तेरे केनवास पर उतरुँगी
या तेरे केनवास पर
एक रहस्यमयी लकीर बन
ख़ामोश तुझे देखती रहूँगी
मैं तुझे फिर मिलूँगी
कहाँ कैसे पता नहीं

या सूरज की लौ बन कर
तेरे रंगो में घुलती रहूँगी
या रंगो की बाँहों में बैठ कर
तेरे केनवास पर बिछ जाऊँगी
पता नहीं कहाँ किस तरह
पर तुझे ज़रूर मिलूँगी

या फिर एक चश्मा बनी
जैसे झरने से पानी उड़ता है
मैं पानी की बूंदें
तेरे बदन पर मलूँगी
और एक शीतल अहसास बन कर
तेरे सीने से लगूँगी

मैं और तो कुछ नहीं जानती
पर इतना जानती हूँ
कि वक्त जो भी करेगा
यह जनम मेरे साथ चलेगा
यह जिस्म ख़त्म होता है
तो सब कुछ ख़त्म हो जाता है

पर यादों के धागे
कायनात के लम्हें की तरह होते हैं
मैं उन लम्हों को चुनूँगी
उन धागों को समेट लूँगी
मैं तुझे फिर मिलूँगी
कहाँ कैसे पता नहीं

मैं तुझे फिर मिलूँगी!!

***

जब दिल्ली प्रेस की नौकरी छूटी

अमरेंद्र मिश्र

'सारिका' पत्रिका के नवलेखन अंक की चर्चा में जिन लेखकों ने शिरकत की थी, उनमें निर्मल वर्मा भी थे। उनसे मिलने मैं उनके करोलबाग स्थित मकान पर पहुँचा हुआ था। निर्मल वर्मा बहुत शांतचित्त से पास बैठे व्यक्ति की बात सुनते थे और उसी तरह अपनी बात कहते थे। घर पर ज़्यादातर वे सफ़ेद कुर्ता-पाजामा में ही मिलते थे। उनका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था और उनकी आँखें सबसे अधिक खूबसूरत थीं। जब कभी वे चुप रहते थे, तब सिर्फ़ उनकी आँखें बोलती थीं। मुझे अंदर बिठाकर उन्होंने दस मिनट की अनुमति चाही थी ताकि अधूरा पड़ा कोई काम वह पूरा कर सकें।

''वह 'सारिका' वाला अंक आया है मेरे पास। छपा तो ठीक है लेकिन 'नंदन' को एक बात की तमीज़ नहीं है।''

''किस बात की?''

''कि लेखकों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखे कि, किसके साथ किसको शामिल करना चाहिए।''

''क्या आप यह बात उसे बता सकते हैं?''

''क्यों नहीं। ज़रूर बता सकता हूँ। कह दूँगा, निर्मल वर्मा ऐसा कह रहे थे।''

कुछ क्षण बाद मैंने फिर कहा-''लेकिन अब मैं कभी 'सारिका' नहीं जाऊँगा।''

''क्या बात हुई?'' कहकर वे उन कबूतरों को देखने लगे जो अपने दड़बों से निकल कर बाहर उड़ान भर रहे थे और उन्होंने पूरा वृतांत सुना। मन से सुना। बोले कुछ नहीं। मुझसे कहा-''फिर नंदन से कुछ न कहना। कोई फायदा नहीं। मेरा तो मिलना-जुलना वैसे ही कभी कभार ही हो पाता है।''

पूछा उन्होंने-''दिल्ली प्रेस के लिए काम कर सको तो सोचना। वहाँ एक मिस्टर दयाल हैं जो शिमला के हैं। उनसे मिल लो। कहीं बात बन जाए।

दूसरे रोज़ मैं पालम कालोनी से सीधा करोलबाग पहुँच कर वहाँ से पैदल झंडेवालान पहुँच गया। दिल्ली प्रेस में दाखिल हुआ और मिस्टर दयाल मिल गए। निर्मल जी का नाम सुनते ही वह खुश हो आए और मुझे लेकर दिल्ली प्रेस के मालिक और वहाँ से निकलने वाली तमाम पत्रिकाओं के प्रकाशक विश्वनाथ जी के पास ले गए...

दयाल जी कह रहे थे-''यहीं विश्वनाथ जी बैठते हैं। इस चैंबर में कोई दूसरा नहीं आता। बस किसी का इंटरव्यू लेना होता है तभी कोई अभ्यर्थी यहाँ आता है या जब किसी को मेमोरंडम दिया जाता है तो वह कर्मचारी अपनी सफाई देने यहाँ आता है,वर्ना साधारणतया यहाँ कोई दूसरा नहीं आता। अब बाहर चलें। जब वह आएँगे तभी मुझे बुलाएँगे। वैसे विश्वनाथ जी खुद दिन में तीन बार औचक निरीक्षण पर निकल पड़ते हैं।''

''कहाँ निकल पड़ते हैं?''

''यहीं इस हॉल में,कि कौन कहाँ क्या कर रहा है।''

मैंने एक बार बारी-बारी से उन कर्मचारियों की ओर देखा जो उस लंबे गलियारे के समान बने हॉल में किसी स्कूल या कॉलेज की कक्षा में सजी छोटी-छोटी टेबल पर काम कर रहे थे। उनमें से सबकी निगाहें अपने लिखे कागज़ पर गड़ी थीं और वे अपने काम में इतने अधिक तल्लीन थे कि किसी ने मेरी ओर देखा भी नहीं था। दयाल जी ने बताया-''ये लोग इसी तरह काम करते हैं और कोई हिलता तक नहीं है। यहाँ काम करना थोड़ा कठिन है लेकिन यह जगह एक आदर्श जगह है जिसे आप ट्रेनिंग सेंटर भी कह सकते हैं।''

इस बीच विश्वनाथ जी आ गए। उन्हें देखते ही कर्मचारी गण अभिवादन की मुद्रा में ऐसे खड़े हो गए मानों वे राष्ट्रगान के लिए खड़े हुए हों। दयाल जी ने कहा-''आप इत्मीनान से यहीं बैठिए तब तक मैं अंदर से आता हूँ।''

इस बीच इंटरव्यू शुरू हो गया। दो और प्रत्याशी इंटरव्यू के लिए आए थे और महज़ दस मिनट के भीतर ही वे बाहर निकल गए थे और अब मेरी बारी थी। मेरी शैक्षणिक योग्यताओं

अमरेंद्र मिश्र, संपादक- समहुत, 4/516, ''मौसम'' पार्क एवेन्यू, वैशाली सेक्टर-4, गाज़ियाबाद, उ. प्र.- 201010
मोबाइल: +91 9873525152
ई-मेल: amarabhi019@gmail.com

के प्रमाणपत्र देखने के बाद विश्वनाथ जी ने पूछा-''आपने कितनी पत्रिकाओं में संपादकों के दिए काम के आधार पर अपनी रचनाएँ दी हैं?''

मैंने अपनी कुछ प्रकाशित रचनाओं का फोल्डर उनकी तरफ़ बढ़ाया तो एक नज़र डालते हुए कहा-''अच्छी रचनाएँ हैं। आप हमारे लिए भी लिखिए। 'सरिता','मुक्ता', 'भू भारती' के लिए आप नियमित रूप से लिखा करें। यहाँ काम के घंटे सुबह नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक का है। बीच में एक से डेढ़ के बीच लंच का समय है। इस दौरान आप बाहर जा सकते हैं वर्ना बाहर जाने की इजाज़त नहीं।''

''मेरी तनख्वाह कितनी होगी?''

''दयाल जी बता देंगे। अब आप जा सकते हैं।''

इस बीच दयाल साहब एक हफ्ते के लिए चंडीगढ़ चले गए। मैं पालम कॉलोनी से झंडेवालान आने-जाने लगा और काम शुरू कर दिया। जिस उपस्थिति पंजिका पर वहाँ कार्यरत कर्मचारियों के नाम लिखे थे,उसी पर मेरा नाम सबसे आख़िर में था। सुबह नौ बजे तक ही वह उपस्थिति पंजिका रिसेप्सन टेबुल पर रखी होती थी, नौ बजकर एक सेकंड होते ही पियन उसे विश्वनाथ जी के चैंबर में उनकी टेबल पर रख आता था और फिर वहाँ जाकर हस्ताक्षर करने की हिम्मत किसी और को नहीं होती थी। अगर कोई कर्मचारी महीने में तीन बार लेट हुआ तो उसके एक दिन का वेतन काट लिया जाता था। नियम बहुत सख्त थे और उन्हें पालन करना अत्यंत दुष्कर कार्य था!

मेरी टेबुल पर तरह-तरह के काम आने लगे। कुछ ऐसे काम जो मेरे नेचर के विरुद्ध थे, वे भी करने होते थे, मसलन अचार बनाने की विधि, सिलाई-कढ़ाई के काम से संबंधित प्रूफ, बुढ़ापे में सेहत की देखभाल कैसे करें.. आदि-आदि इस बीच मैं दयाल जी के चंडीगढ़ से लौटने का इंतज़ार करता रहा। उनके आने के बाद मेरी स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाएगी। उनसे मैं अपने विषय में अधिक खुलकर बता सकूँगा। इन सब कामों के अलावा मैं दूसरे लोगों को भी अनेक दूसरे कामों में व्यस्त पाता तो भीतर ही भीतर बड़ी कोफ्त होती। मैं सोचता रहता कि आदमी रोज़ी-रोटी के लिए कितना अधिक मजबूर हो जाता है। एक दिन दफ़्तर आते ही विश्वनाथ जी के चैंबर में मलिक साहब को जो डाँट पड़ते सुना तो मेरे होश उड़ गए। उनसे क्या गलती हुई होगी, यह तो मुझे उस वक़्त समझ में नहीं आया लेकिन दूसरे रोज़ लंच के समय दफ़्तर के बाहर वाली सड़क पर कर्मचारियों के बीच यह चर्चा आम थी कि तीन-तीन प्रूफ देखने के बावजूद गलतियाँ छूट जाने की वजह से ही मलिक साहब को डाँट पड़ी थी।

''मलिक जी, एक सीनियर अधिकारी हैं, उन्हें इस तरह जलील नहीं करना चाहिए था।'' कृष्णानंद बाबू ने यह बात कह तो दी लेकिन डर गए कि यह बात कहीं विश्वनाथ जी तक न पहुँच जाए। कहीं वे जान गए तो क्या पता, नौकरी से ही न निकाल दिए जाएँ। बाकी साथ चल रहे चार लोग चुपचाप चल रहे थे, मानों किसी शोक सभा से वापस लौट रहे हों।

लंच का समय बीत गया तो सब अपनी-अपनी सीट की ओर बढ़ चले। मैं इन लोगों में सबसे नया था इसलिए सिर्फ इनकी बात सुन रहा था। दरअसल मेरी चिंता यह भी थी कि मेरी तनख्वाह कितनी होगी? चाहता था कि यहाँ किसी से पूछ लूँ कि एक नए कर्मचारी का शुरूआती वेतन कितना मिलता है?

दयाल जी के चंडीगढ़ से आते ही मैंने उनसे उनकी कुशल-क्षेम पूछी तो उन्होंने मेरा हाल-चाल पूछा और ''सब ठीक है'' कहने पर मुस्कराते हुए बोले-''कुछ पता चला कि मासिक तनख्वाह कितनी होगी?'' तनिक आश्चर्य व्यक्त करते हुए मैंने कहा कि विश्वनाथ जी तो कह रहे थे कि आप इस बारे में बता देंगे?'' दयाल जी चकित होते कह पड़े-''खैर, कोई बात नहीं। कल उनसे मिलकर बताता हूँ आपको।''

दिल्ली प्रेस से बाहर निकलते एक उबड़-खाबड़ पगडंडी नुमा रास्ता बाहर सड़क तक जाता था और वहाँ से कुछ दूर पैदल चलने के बाद करौल बाग का बस स्टॉप था जहाँ से 752 नंबर की डीटीसी की बस लेकर मैं पालम के लिए रवाना हो जाता था। शाम के वक़्त उस बस में ज़्यादातर दफ़्तर से अपने-अपने घर जानेवाले लोग होते थे। कुछ बेहद मामूली किस्म के लोग जो प्राइवेट कंपनियों में काम करते होंगे। कुछ किराने की दुकानों में काम करने वाले वर्कर जिनके कपड़ों से हल्दी,मिर्च, मसालों की गंध आती रहती थी। मुझे बड़ा रोमांच-सा लगता था जब शाम के वक़्त सड़कों पर ट्रैफ़िक की गति अत्यंत तीव्र गति से चलती भागती रहती थी। इस भागदौड़ भरी ज़िंदगी में मैं खुद को बेहद तन्हा महसूस करता था क्योंकि इस महानगर में मेरा कोई दोस्त नहीं था। बेकारी, गर्दिश, संघर्ष और मुफ़लिसी के इन दिनों में दोस्त सिर्फ संघर्ष और बेकारी के दिन थे।

उस रोज़ यह तय कर लिया था कि आज आख़िरी बार यह पता करने की कोशिश करूँगा कि मैं जो रोज़ आठ घंटे बिना हिले-डुले सौ पेज प्रूफ देख जाता हूँ, उसके एबज में महीने की आख़िरी तारीख को आख़िर क्या मिलने जा रहा है?यह सोचते मैं दफ़्तर पहुँच गया। मैं यह पूछने के लिए जैसे ही दयाल साहब के चैंबर की तरफ़ मुड़ा कि वे मेरी ही तरफ़ आते हुए दिखे।

उन्होंने अपने ऑफ़िस में मुझे बिठाया और कहा-''कल देर शाम विश्वनाथ जी के साथ बातचीत हुई और मैंने आपके विषय में पूछा तो कहने लगे- शुरू में चार सौ रुपए देंगे। तीन महीने बाद कुछ बढ़ा देंगे। नियुक्ति पत्र तीन महीने बाद ही मिलेगा।''

मैं कुछ सोचने लगा तो पूछ बैठे-''क्या सोच रहे हैं? चिंतित दिख रहे हैं? मुझे बताइए। ज़रूरत होगी तो बात करूँगा।''

''यह रकम बहुत कम है और इस रकम के एवज में तीन माह तक नहीं खिंच सकता। बहुत कम है।''

''जानता हूँ। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण बात की जानकारी दूँ आपको? दिल्ली प्रेस काम सीखने के लिए एक आदर्श जगह है। हिंदी के बड़े-बड़े लेखक, संपादक, पत्रकार यहाँ काम करके ऊँचे-ऊँचे मुकाम तक जा पहुँचे हैं जिन्होंने यहाँ काम करते कभी काम के अधिकतम घंटे और न्यूनतम तनख्वाह की उतनी अधिक परवाह नहीं की क्योंकि उनका उद्देश्य जीवन पर्यंत यहाँ काम करना नहीं था। कुछ साल बाद आप भी कहीं किसी और अच्छी जगह पहुँच ही जाएँगे इसलिए यहाँ के विषय में ज़्यादा न सोचें।''

मैं क्या कहता। बस आगे की बात सोचता रहा। इससे आगे की बात। यह ज़रूर था कि मुझे यह सब अच्छा नहीं लग रहा

था। जिस तरह का काम यहाँ मुझे दिया जा रहा था उस हिसाब से यह रकम बहुत कम थी। पूछने वाले पूछते भी थे लेकिन मैं उनकी मंशा जानता था इसलिए अधिक विस्तार में नहीं जाता था...

मैं न सिर्फ़ दिल्ली प्रेस से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं के लिए लिखता था बल्कि उनके प्रूफ भी देखता था। चाहे कोई लेखक हो या फ्रीलांसर या पत्रकार,वह जो भी काम करता है,उसका प्रकाशन कहाँ और किस रूप में हो रहा है, यह जानने की उसकी उत्सुकता बनी रहती है। ऐसा सोचकर मैंने तय किया कि प्रकाशक, संपादक विश्वनाथ जी से इस बाबत कल जानना चाहूँगा।

उस रोज़ तेज़ बारिश हो रही थी। इतनी तेज़ कि बाहर निकलना मुश्किल था। एक बार हिम्मत कर बाहर निकला लेकिन तुरंत वापस भागा। अनुमान लगाते ज़रा सी भी देर नहीं लगी कि बाहर निकलना बिलकुल भीग जाना होगा। अंतत: मैं मौसम खुलने का इंतज़ार करता रहा और सोचता रहा कि मेरी तरह दूसरे लोग भी बारिश में फंसे पड़े होंगे इसलिए मैं कुछ कर नहीं सकता था। लेकिन मन में यह अंदेशा बना हुआ था कि अब जबकि मेरे पूरे तीस दिन पूरे होने जा रहे हैं तो पता नहीं महज़ एक दिन की अनुपस्थिति क्या रंग लाए। लेकिन ठीक है, जो होना है सो होगा, अब इसका क्या कर सकते हैं।

लेकिन बारह बजे तक बादल छंट गए और और मैं दिल्ली प्रेस के लिए निकल पड़ा। मुझे झंडेवालान पहुँचते-पहुँचते दो बज गए थे और जाते ही विश्वनाथ जी के चैंबर में मेरी पेशी हुई। मैं तनिक भी असहज नहीं था क्योंकि मुझे तो उनसे मिलना ही था। यह अच्छा हुआ कि विश्वनाथ जी ने खुद ही बुला लिया। उनके चैंबर में पहुँचा तो देखा कि दयाल जी के साथ मिस्टर मलिक भी वहाँ मौजूद थे।

''आज आप देर से दफ़्तर आए हैं। कारण जान सकता हूँ ?''

''बारिश की वजह से।''

''पर मेरे साथ -साथ दूसरे लोग भी तो दफ़्तर आए हैं। इन्हें भी बारिश का सामना करना पड़ा होगा?''

''दूसरों के बारे में मैं ज़्यादा नहीं जानता। अपने विषय में बस यही कह सकता हूँ कि मैं पालम कालोनी में रहता हूँ, वहाँ तेज़ बारिश थी, बाहर निकलना मुश्किल था इसलिए मैं समय पर न आ सका।''

''लेकिन आप तो दफ़्तर आ सकते थे। राजकिशोर भी आप ही की तरह यहाँ टेंपरेरी है और वह ग्यारह बजे पहुँच गया था।''

मैं कुछ न बोला। बोलना ज़रूरी नहीं था। बस पूछ बैठा-''क्या मैं जान सकता हूँ कि इस एक महीने में मैंने मैनेजमेंट के कहने पर जितने आर्टिकल्स लिखे, उनका उपयोग कहाँ और किस रूप में हुआ? कोई भी साहित्यकार या पत्रकार, या फ्रीलांसर सिस्टम की फरमाइश पर अगर विभिन्न विषयों पर अपना कंट्रिब्यूशन देता है तो उसे यह जानने का पूरा हक है कि उसका उपयोग किस रूप में किया गया है।'' मुझे लगा कि शायद मैं कुछ ज़्यादा ही कह गया। लेकिन जो हो गया या कह दिया सो कह गया। इसका क्या कर सकते हैं।

वे मेरी ओर कम और दयाल जी तथा मलिक जी की ओर ज़्यादा देख रहे थे। उन दोनों ने कुछ सेकंड मेरी ओर देखा और फिर विश्वनाथ जी की ओर देखने लगे। विश्वनाथ जी ने मेरी बात का जवाब देते कहा-''अभी आप शाम तक सत्तर पेज प्रूफ के देख जाइए। जब काम पूरा हो जाएगा तभी जाइएगा। आपकी बात का जवाब कल मिल जाएगा।''

गहराती हुई शाम में जब मैं बाहर निकला तो मन अवसाद से भरा था और गुस्से से जल-भुन रहा था। सिस्टम सिर्फ अपनी सुनाता है। वह हमारी नहीं सुनता और सुनता भी है तो अपनी शर्तों पर। लेकिन सुनना तो पड़ेगा। एक ज़रूरी सवाल के साथ मैं सिस्टम के सामने खड़ा था और सिस्टम सिर्फ़ अपनी सुना रहा था। बहरहाल मैंने तय कर लिया था कि अब आज़ तो कोई प्रूफ नहीं देखनेवाला। परिणाम चाहे जो भी हो। आगे जो भी करूँगा वह विश्वनाथ जी से मिलने के बाद ही करूँगा।

दूसरे रोज़ जब दफ़्तर पहुँचा तो विश्वनाथ जी की सेक्रेटरी ने मुझे देखते ही कहा कि साहब बुला रहे हैं। उसके ऐसा कहने से इतना तो समझ में आ गया था कि मन-ही-मन कोई योजना बनाई जा रही है। मैं चलने को तैयार हो ही रहा था कि इस बीच वह फिर बोल पड़ी,''साहब का कोई फ़ोन आ गया है। बात कर लेंगे फिर आपको बुला लेंगे।'' मैं अपनी सीट पर चला गया तो इसी बीच एक दाढ़ी वाला बूढ़ा कर्मचारी मेरे पास आकर बोल पड़ा-''यहाँ काम करने के लिए बहुत कुछ झेलना पड़ता है। हम काम करते-करते बूढ़े हो गए। समय पर दफ़्तर आने और काम के आठ घंटे पूरा करने के बावजूद हमें समय पर छुट्टी नहीं मिलती। रोज़ दफ़्तर छोड़ते-छोड़ते रात के कभी नौ तो कभी दस बज जाते हैं। आप शायद सुखवीर सिंह को नहीं जानते होंगे। उसके बच्चे को एक बार निमोनिया हो गया था। उसके इलाज के लिए वह चार-पाँच शिफ्ट में देर रात काम करता रहा, दवा के लिए पैसे जुटाए... आख़िर वह बच न सका। कुछ दिनों बाद सुखवीर को भी टायफाइड हो गया और वह भी चल बसा। हमारी तो नियति ही यही है। आप काम करते रहें। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।''

उसकी बात मुझे न तो अच्छी लगी,न बुरी ही लगी। दरअसल मैं कुछ भी सुनने के मूड में नहीं था और मुझे ज़ोरों की प्यास लग आई थी। गला सुखने लगा था। वह बूढ़ा ठीक मेरे सामने ही बैठता था और लंच के समय अक्सर पान खाने चला जाता था। कभी-कभी मेरे साथ भी जाता था और आते ही आसपास के लोगों से पूछताछ करता था कि किसी ने उसे बुलाया तो नहीं? उसकी हड़बड़ाहट देखकर मुझे महसूस होता था कि यह आदमी स्थिर चित्त का नहीं है। यहाँ और लोग भी थे जो उसकी तरह के ही थे। वे भी यहाँ की क्रूर व्यवस्था में अपना पूरा जीवन लगभग बीता चुके थे या बिताने के करीब थे। इन्हें देखकर सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता था कि रोटी और भूख की ज़रूरत नपुंसक समझौते पर खत्म होती है।

वह बूढ़ा कर्मचारी फिर मेरे पास आया और कहा-''ये सत्तर पेज प्रूफ हैं। कल आप चले गए थे जब मैं आपकी सीट तक आया था। साहब ने कहा है कि इसे आप ही देखेंगे। आज सुबह भी वे इसके लिए पूछ रहे थे।''

''तो आपने क्या कहा?''

''यही कि आप घर चले गए हैं और अब कल ही चेक करेंगे।''

''मुझे पूरे एक महीने होने जा रहे हैं लेकिन अब तक मैं आपका नाम न जान पाया। क्या नाम है आपका?''

इस बीच विश्वनाथ जी की पीए ने अंदर उनसे मिलने को कहा। मैं विश्वनाथ जी के चैंबर में दाखिल हुआ तो उन्हें हमेशा की तरह परेशान पाया। उन्होंने कालबेल बजाई तो पियन दाखिल हुआ। कहीं से फ़ोन आ गया और रिसीवर पर हाथ रख कर कहा–''दयाल जी को बुलाकर लाओ।''वे फिर फ़ोन पर शुरू हो गए तो मैं बाहर जाने लगा। बीच में ही टोक दिया–''आप कहाँ चले?''

''बाहर जा रहा हूँ। आप फ़ोन कर लें, फिर आता हूँ।''

''फिर कभी बात कर लेंगे। आप तशरीफ़ रखें।''

मैं कुर्सी पर ज्योंही बैठने को हुआ कि पियन कह गया–''वे कनाटप्लेस गए हैं और अब शाम तक ही आएँगे।''

वे मेरी ओर मुखातिब हुए और कहा–''आप बाहर जाइए। जब दयाल जी आ जाएँगे तब उनके साथ ही आइएगा।''

मैं दफ़्तर पहुँच चुका था लेकिन दयाल साहब अभी तक नहीं आए थे। यहाँ का सिस्टम बड़ा विचित्र है। बात मुझे करनी है और विश्वनाथ जी से रू-ब-रू होकर करनी है तो बीच में दयाल जी का क्या काम?हो सकता है कि उन्हें 'विटनेस' के तौर पर रखकर मुझसे कोई उल्टी-सीधी बात की जाए? क्या यही बात जानने के लिए कि मेरा लिखा कहाँ छपता है? उसका उपयोग किस तरह किया जाता है? उसके साथ मेरा नाम जाता भी है या नहीं? तो यह पूछकर मैंने ऐसी कौन सी गलती कर दी जिसका जवाब देने के लिए दो-तीन दिन का समय चाहिए और जब दो-तीन बीत जाए तो दयाल जी की ज़रूरत बता देनी चाहिए? शायद सिस्टम कमज़ोर और झूठा होता है जिसमें सच झेलने की ताकत नहीं होती। मुझे लगा कि दयाल जी का इंतज़ार करते-करते नीचे सड़क तक चले जाना चाहिए, उमस और गर्मी से राहत मिलेगी। लेकिन नीचे सड़क पर जैसे ही उतरने को हुआ कि विश्वनाथ जी दिख गए। गुड मॉर्निंग का कोई जवाब नहीं दिया और ऊपर आगे की ओर बढ़ गए।

पाँच मिनट बाद दयाल जी आते दिखे तो उनके साथ ऊपर चल पड़ा। कहने लगे–''आप आगे चलिए, मैं पीछे से आता हूँ। या मुझे आगे जाने दीजिए, आप पीछे से आएँ। एक साथ जाना ठीक नहीं होगा। मैं आगे बढ़ गया और सोचता रहा कि इन लोगों से बेहतर तो कैदियों का जीवन होता होगा।

मैं अपनी सीट पर अभी बैठने जा ही रहा था कि विश्वनाथ जी की पीए मुझे बुलाने आ गई। उनके चैंबर में पहुँचा तो दयाल जी पहले से ही उपस्थित थे। विश्वनाथ जी ने मुझे बैठने को नहीं कहा तो खुद ही एक खाली चेयर पर बैठ गया।

ज़ाहिर है कि उनका मुझे इस तरह बिना कहे चेयर पर बैठ जाना नागवार नहीं गुज़रा होगा। लेकिन मैं बेफ़िक्र था।

एक बार मेरी तरफ देखा, पूछा–''आप देर से दफ़्तर आते हैं इन दिनों?''

''इन दिनों मतलब?''

''मतलब आज। आज आप नीचे कहाँ से कहाँ आ-जा रहे थे?''

''दफ़्तर तो ठीक समय पर ही आया था लेकिन...''

''पान खाने जा रहे थे? पान आप खूब खाते हैं। लंच में भी आप पान खाने बार-बार जाते हैं और अपने साथ यहाँ के लोगों को भी ले जाते हैं। इससे हमारा काम रुकता है।''

''लेकिन वे तो खुद ही मेरे साथ जाते हैं। वे सबके सब मुझसे भी पुराने हैं और उन्हें यहाँ के 'अनुशासन' के विषय में मुझसे ज़्यादा जानकारी होगी।''

दयाल जी को इस तरह का वार्त्तालाप अच्छा नहीं लग रहा था। उनके हाथ कुर्सी के बाजू को कसकर पकड़ रखे थे और वे सन्नाटा फाँक रहे थे। मैंने खुद को थोड़ा इत्मीनान करते विश्वनाथ जी से पूछा–''अब जबकि इतना कुछ पूछ ही लिया आपने तो क्या,प्लीज़ आप यह बता सकते हैं कि जो आलेख मैंने आपकी ज़रूरतों के मुताबिक तैयार किए और आपकी टेबल पर भिजवाए, उनका उपयोग किस रूप में हुआ?'' वे पलट कर दयाल जी से पूछे '',इसका क्या जवाब दिया जाए, दयाल जी?'' जहाँ तक मुझे याद है कि जब आपने ज्वाइन किया था तभी मैंने कहा था कि मैनेजमेंट की सामान्य जानकारी आप यहाँ के पुराने कर्मचारियों से ले लीजिएगा। हमारे यहाँ आई हुई रचनाओं के लिए हम पैसे देते हैं। रचना का उपयोग हम किस तरह से करते हैं, यह जानना आपका काम नहीं है।''

''तो फिर मेरी रचनाओं के पैसे और मेरी तनख्वाह दे दीजिए।'' कहकर मैं अपनी सीट पर गया। पाँच मिनट के बाद वापस लौट कर बताया–''मैं आपका प्रेस आज और अभी तत्काल प्रभाव से छोड़ रहा हूँ।''

दयाल जी ने मुझसे कहा–''बाहर चलिए, बात करते हैं।''

लेकिन मैं तटस्थ था। विश्वनाथ जी कुछ सकपकाए, कहा–''आपने अगर ऐसा निर्णय ले ही लिया तो मैं यहीं से फ़ोन कर देता हूँ, कैशियर को। आप पैसे ले लीजिए।''

''जी नहीं। पैसे आप यहाँ मंगवाइए। मैं कैशियर के पास नहीं जाऊँगा।''

दयाल जी अब भी कुछ कहना चाह रहे थे लेकिन मेरा ध्यान विश्वनाथ जी के चेहरे पर केंद्रित था, एकटक।

कैशियर लिफाफे में पैसे लेकर आया और विश्वनाथ जी की टेबल पर रख कर चला गया। साथ में एक स्लिप भी थी जिस पर मुझे हस्ताक्षर करने थे।

विश्वनाथ जी ने पूछा–''कोई जॉब मिला है आपको?''

''जी नहीं!''

''आप तो ठीक थे यहाँ पर, सिस्टम में यह सब तो चलता ही रहता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि आप यहाँ से इस तरह चले जाएँ। खैर, आप अच्छा काम करते हैं और मैं जानता हूँ कि आपको इस शहर में कहीं भी अच्छी नौकरी मिल जाएगी। भविष्य में जब चाहें, आप आ सकते हैं।''

''एक बार जहाँ से मैं निकल जाता हूँ वहाँ दुबारा नहीं जाता।''

''अभी आप कहाँ जाएँगे?''

''पालम कॉलोनी, जहाँ से मैं रोज़ आता था।''

''और क्या करेंगे?''

''कुछ खास नहीं। अच्छा खाना खाकर मूवी देखने जाऊँगा।''

बाहर निकला तो बूँदाबाँदी शुरू हो गई थी। मैं तेज़ गति से चलता एक चाय की दुकान में जा ही रहा था कि देखा-दयाल जी मेरी तरफ ही आ रहे हैं! कहा कुछ नहीं,बस मेरी हथेलियों को अपनी मुट्ठियों में भींचते हुए फफक पड़े...

***

कीकली कलीर दी....

शशि पाधा

बड़ी अजीब सी बात है। जैसे-जैसे हम उम्र का सोपान चढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे ही बचपन की मधुर स्मृतियाँ कुछ अधिक पास आने लगती हैं। मैंने यह अनुभव किया है कि जो अब दिखाई नहीं देता है या जिसके विषय में आप बोलते नहीं हैं, सुनते नहीं हैं, वे बातें हमारे अंतर्मन पर आकर बार-बार दस्तक देती रहती हैं। हमें बुलाती हैं कि आओ! चलो मेरे साथ उन्हीं गलियों में जहाँ बसता था -केवल प्रेम, स्नेह, सौहार्द, गहन आत्मीयता और पलता था तुम्हारा मासूम, भोलाबाला बचपन।

याद आते हैं वो गुड्डी-गुड्डे के विवाह जिन्हें हम पूरे रीति रिवाजों के साथ, बैंड बाजों के साथ निभाते थे। याद है मुझे कि भरी गर्मियों की दोपहरी में छत पर दो चारपाइयाँ खड़ी करके, ऊपर एक चादर डाल कर बना लेते थे गुड्डी का घर। वहीं आती थी पड़ोसी की सहेली के गुड्डे की बारात।

आप से बात करते-करते याद आ गई अपनी प्यारी सी गुड्डी। मेरी मुँहबोली दादी माँ ने बड़े प्यार और यत्न से बनाई थी मेरी पहली गुड्डी। मासी, मामी, बुआ या पड़ोस की काकी द्वारा हरिद्वार से लाए हुए लकड़ी के रंग बिरंगे छोटे-छोटे बर्तनों का सेट तो हम सब के पास होता ही था। छत पर ही बनता था बारातियों के लिए खाना जो हम अपनी ही रसोई से माँग कर ले आते थे। खूब गाना बजाना भी होता था और खेल कूद भी।

खेल कूद की बात करते हुए जो खेल मुझे सबसे अधिक याद आता है वो है 'कीकली'। कीकली खेल भी था और नृत्य भी।हमउम्र लडकियाँ इस खेल का खूब आनन्द लेती थीं

शशि पाधा, 10804, Sunset hills Rd,
Reston Virginia 20190
मोबाइल:203-589-6668
ई-मेल: shashipadha@gmail.com

और कभी-कभी तो हमारी माताएँ, भाभियाँ भी इस खेल में सम्मिलित हो जाया करतीं थी।

गर्मी हो या सर्दी, बचपन की सहेलियाँ घर के आँगन में, खुली छत पर, घर के सामने वाली गली की किसी चौड़ी जगह पर इकट्ठी होकर इस खेल का आनन्द लेती थीं। कई बार तो बहुत सी सहेलियाँ दो-दो की जोड़ी बना कर सामूहिक कीकली भी खेलती थीं। देखने में लगता था जैसे कोई सामुहिक नृत्य चल रहा हो।

कीकली खेल कुछ इस प्रकार से था। दो बच्चियाँ या अव्यस्क लड़कियाँ आमने सामने खड़े होकर एक दूसरे के दोनों हाथ कस कर थाम कर, एक ही लय से, एक ही गति से गोल-गोल घूमतीं थी। दोनों के पैर चलते तो थे किन्तु अपनी जगह नहीं छोड़ते थे। घूमते-घूमते इन के पैरों की गति बिलकुल एक जैसी होती थी। शरीर का ऊपरी भाग थोड़ा पीछे की ओर झुका रहता था। शुरू में तो गोल-गोल घूमने की गति थोड़ी धीमी होती थी और फिर धीरे -धीरे तेज़, और तेज़ हो जाती थी। इस खेल की सुन्दरता में चार चाँद लगा देती थी हमारी दो चोटियाँ और लहराती हुई चुन्नियाँ। जैसे-जैसे कीकली की गति बढ़ती जाती थी, चोटियों में लगे पराँदे या रिब्बन हवा में तेज़-तेज़ चक्कर खाते हुए उड़ते रहते थे। वाह! क्या आनन्द था हवा से बातें करने का.....

जिसका पराँदा लम्बा होता था, वो लड़की अपने आप को दूसरी पर हावी हुई मानती थी क्यूँकि आख़िर कीकली के खेल में पैरों की सही थिरकन के साथ पराँदा भी उसी लय-ताल के साथ नृत्य करता था। अगर एक ही जगह पर तीन सहेलियाँ हों तो एक दूसरे का मन रखने के लिए तीसरी सहेली को भी इस नृत्य -खेल में मिला लिया जाता था।

इस खेल के साथ कई लोकगीत भी जुड़े हैं जो मेरी स्मृतियों में आकर मुझे झझकोरते हैं। पूरे गीत तो याद नहीं लेकिन एक दो बोल याद है जो मैं आपसे साझा कर रही हूँ.... कीकली कलीर दी

पग मेरे वीर दी
दुपट्टा मेरी चाई दा
सोणा मुँह ज्वाई दा।

दूसरा गीत जो इसी ले सुर पर हम गाते थे ---

मेरा गुत्त पराँदा दे
मेरा कंघी शीशा दे।

पता नहीं हम अपना पराँदा और कंघी शीशा क्यूँ अपनी सहेलियों से माँगते थे? शायद छोटी- छोटी लड़कियों के मन में बचपन के उन भोले पलों में भी सजने संवरने की इच्छा जागती थी और इस खेल के माध्यम से ही पूरी हो जाती थी।

पंजाब के कुछ शहरों में किशोरावस्था छोड़ कर युवावस्था की ओर बढ़ रही लड़कियाँ जब कीकली डालतीं थी तो कुछ इस तरह से गाती थीं-

कीकली कलीर दी
सोहणी जई तू हीर नी
तेरे पीछे बनेगा वह फकीर नी

उम्र की वय:संधि में वे अपनी भावनाएँ कीकली के साथ व्यक्त कर जाती थीं....

आलेख लिख रही हूँ और एक बात बार-बार याद आकर मेरे होठों पर मुस्कान जड़ देती है। जब गली मोहल्ले के हमउम्र लड़के संतोलिया या कोई और लड़कों वाला खेल खेलते थे तो हम ज़िद्द करके उनसे गेंद फेंकने की एक आध पारी अवश्य ठग लेतीं थी।लेकिन -तौबा ! कीकली के खेल में केवल और केवल हमारा ही साम्राज्य था। कभी किसी लड़के को इसमें शामिल नहीं किया जाता था। कारण तो जानती नहीं पर लगता है गुत्त-पराँदा होना इस खेल के लिए अत्यंत आवश्यक था और यह तो केवल लड़कियों के पास ही होता था।

कीकली का यह खेल जम्मू, हिमाचल और पंजाब में बहुत प्रसिद्ध था। और किसी राज्य में भी खेला जाता होगा लेकिन मुझे इसका ज्ञान नहीं। और खेला भी जाता होगा

हुए उनके पराँदे और रंग बिरंगे दुपट्टे हवा में तैरते हैं। प्रसन्नता की बात यह है कि कीकली को अभी भी पंजाब राज्य की तीज त्योहारों में गिद्दे के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

खेल और नृत्य कहीं नहीं जाते। कहीं न कहीं जीवित रहते हैं।हाँ! रूप और जगह बदल लेते हैं। इस बात का आभास मुझे कुछ दिन पहले ही हुआ।

एक दिन मेरी तीन वर्ष की पोती आर्या ने मेरा हाथ पकड़ कर कहा,'' दादी! मेरे साथ' रिंग अ रिंग अ रोज़ेज़' का खेल खेलिए। मैंने उत्सुकतावश उसकी नन्हीं हथेलियाँ पकड़ लीं। मेरे दोनों हाथ कस के पकड़ कर वो गाने लगी, थिरकने लगी और गोल गोल घूमने लगी....

''Ring-a-round the roses
A pocket full of posies,
Ashes! Ashes!
We all fall down.''

जैसे-जैसे वो मेरे हाथ पकड़ कर घूमने लगी, अचानक मेरे अधरों पर बरसों पुराना बाल गीत आ बैठा। और मैं चली गई अपने बचपन की उस गली में जो अभी भी मेरी सुधियों में जीवित है। हम दोनों अब झूम रहे थे। आर्या अपना गीत गा रही थी और मैं अपना....

''कीकली कलीर दी
पग्ग मेरे वीर दी''
''Ring-a-round the roses
A pocket full of posies''

दोनों बचपन आपस में मिल रहे थे। एक ही सुर, एक ही ताल और एक ही नृत्य। हम दो लड़कियाँ, हमउम्र नहीं थी तो क्या हुआ? चाहे हम दोनों की आयु में लगभग छह दशकों का अंतराल था लेकिन, हम दोनों थी तो एक जैसी-एक जैसा खेल खेलने वाली---- दो लड़कियाँ।

***

चिट्ठियाँ हो तो हर कोई बाँचे.....

गोवर्धन यादव

चिट्ठी -पत्री का ज़माना बीते अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ है। एक समय वह था, जब हमें चिट्ठियों का बड़ी बेसब्री से इन्तज़ार हुआ। करता था। घर-परिवार से यदि हफ़्ता-पंद्रह दिन के भीतर कोई पत्र नहीं मिला, तो घबराहट बढ़ जाती थी। मन शंका-कुशंकाओं से भर उठता था। रह-रहकर उलटे-सीधे विचार मन में उठने लगते थे। हमेशा हमारी नज़रें पोस्टमैन को आता देखने के लिए तरसने लगती थीं। लेकिन अब ऐसा नहीं होता। जब से हमने संचार-क्रांति के युग में प्रवेश किया है, आज एक-दूसरे से जुड़ने के नए -नए उपकरण हमारे पास आ गए हैं। था वह कोई ज़माना, जब कालिदास ने मेघदूत के माध्यम से यक्ष का संदेश उसकी प्रियतमा तक पहुँचाया था। अब ज़माना ट्विटर का है, एस एम एस का है। पलक झपकते ही संदेशा दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने में पहुँच जाता है..आज दुनिया मुट्ठी में है। सुदूर देश में बैठा कोई बेटा, अब भारत के किसी गाँव में रह रहे अपने पिता से, ऐसे बात कर सकता है, जैसे सामने बैठा हो। विज्ञान का यह खेल किसी करिश्में से कम नहीं है। सदियों पुरानी कल्पनाओं को आज हम साकार होते देख रहे हैं.. पर इस ''मिलन'' में वह ऊष्मा है क्या, जो पाँच पैसे के पोस्टकार्ड को हाथ में लेकर महसूस की जाती थी?. संवेदना की इस मीठी-सी छुअन का अहसास हाथों से फ़िसलते जाना, शायद मेरी पीढ़ी को हो, लेकिन अगली पीढ़ी को जिसने उस ''छुअन'' को कभी महसूस तक न किया हो, तो उसका अभाव उन्हें खलेगा भी कैसे? खले भले ही नहीं, पर वंचित तो ज़रूर रह जाएगी, इस अनुभव से।

घर के बाहर डाकिए की साइकिल की घंटी का बजना या फ़िर ''चिट्ठी आई है'' वाले तीन शब्दों का गूँजना, जाने कितनी-कितनी और कैसी-कैसी तरंगे मन में उठने लगती थीं या फ़िर घर के मुँडेर पर बैठकर किसी कौवे की काँव-काँव करके संदेश दे जाना, कभी किसी कबूतर का संदेश देकर ''उस पार'' पहुँचाने का आग्रह करना या फ़िर मेघदूत को दूत बनाकर संदेशा भेजना, ये कल्पनाएँ ही भीतर ही भीतर भावनाओं का ज्वार उठा जाती थीं। यादों के अंबार लग जाया करते थे। अब ऐसा नहीं होता। पलक झपकते ही अनेक एस एम एस आपके स्क्रीन पर उभरने लगते हैं। पर पिता की हाथ की लिखी कोई चिट्ठी का होना, या फ़िर माँ के हाथ से लिखी चिट्ठी का होना, कई-कई अहसासों को महसूसना होता था। चिट्ठी में लिखा हर एक अक्षर शरीर में ऊषमा भर जाता था। पर अब ऐसा नहीं होता। चिट्ठी लिखना अब सपना बन कर रह गई है। अब शायद ही कोई भाग्यशाली मिलेगा, जिसे पत्र अब भी प्राप्त हो रहे हैं।

परम्परा की यह कल-कल कर बहती नदी सूखती जा रही है। यदि यह कहा जाए कि वह लगभग सूख ही चुकी है, शायद ऐसा कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इन्हीं सब पीड़ाओं को सहते हुए मेरे स्व.मित्र नईम की एक लंबी कविता के कुछ अंश...शीर्षक है- ख़तो क़िताबत के मौसम फ़िर कब आएँगे?.

अमृता प्रीतम-

चाँद सूरज दो दवातें कलम ने डोबा लिया / लिखतम तमाम धरती पढ़तम तमाम धरती साईसदानों दोस्तें! / गोलियों, बंदूकों, एटम बनाने से पहले इस खत को पढ़ लेना।

नईम-

चिट्ठी-पत्री, ख़तो क़िताबत के मौसम / फ़िर कब आएँगे?..
रब्बा जाने, सही इबादत के मौसम / फ़िर कब आएँगे?

गुलज़ार-

बहुत दिन हो गए देखा नहीं ना ख़त मिला कोई
बहुत दिन हो गए सच्ची
तेरी आवाज़ के बौछार में भीगा नहीं हूँ मैं !

***

गोवर्धन यादव, 103, कावेरी नगर,
छिन्दवाड़ा (म.प्र.) 480001
मोबाइल: 9424356400
ई-मेल: goverdhanyadav44@gmail.com

स्वदेश विदेशियों की नज़र में....

डॉ. अफ़रोज़ ताज

अपनी आँखों से ख़ुद को सभी देखते हैं, मगर दूसरे की आँखों से ख़ुद को देखना बड़ा मुश्किल है। न जाने क्यों बचपन से ही मेरी आदत रही है कि मैंने ख़ुद को, अपने परिवार को, अपनी गली को और अपने शहर और अपने देश को दूसरों की आँखों से देखा, बड़े ध्यान से कि वे क्या समझते हैं मेरे, मेरे परिवार के, मेरी गली के, मेरे शहर और मेरे देश के बारे में। हमेशा मन में तोला। और हद है कि यदि आप मुझ पर न हँसें तो मैं एक अपना राज़ और बता दूँ।

मैं अपने बचपन में ख़ुद को किसी दूसरी दुनिया का इन्सान समझता था। मन ही मन में मैंने फ़ैसला कर लिया था कि मेरे अलावा मेरे चारों ओर जितने भी लोग हैं ये सब अभिनय कर रहे हैं और केवल-केवल मुझे ही जाँच रहे हैं और मैं एक परीक्षा के तराज़ू पर बैठा तोला जा रहा हूँ। सारी दुनिया के लोग इतने चतुर अभिनेता हैं कि मैं उनको रंगे हाथों नहीं पकड़ पा रहा। ये सब केवल मेरे बारे में ही बात करते हैं और केवल मैं ही नापा जा रहा हूँ। मेरा परिवार ही नहीं बल्कि सारी दुनिया एक तरफ़ और मैं अकेला एक तरफ़। इसलिए हर समय हर लम्हे मैं हर काम ठीक-ठीक करने की कोशिश करता था ताकि प्रति क्षण मैं प्रथम श्रेणी उत्तीर्ण रहूँ। कभी-कभी उलझन भी होती थी कि कब तक यह नाटक चलेगा और कभी-कभी मैं उनका राज़ खोलने के लिए, एक दम सोते-सोते उठ बैठता था कि देखूँ ये लोग क्या कर रहे हैं। मगर अफ़सोस ये तो मुझसे भी तेज़ निकले, सोते में कोई हँस भी नहीं रहा। एक रोज़ मैंने अपने भाई के कमरे में कुछ खुसुर-पुसुर सुनी और एक दम दरवाज़ा खोलकर घुस गया। सब सहम गए और फिर हँस पड़े तथा मुझे अजीब नज़रों से देखने लगे। उनके बीच में एक चीज़ रखी थी जिसे देखकर मैं ग़ुस्से से लाल हो गया। कितने ढीठ हैं ये लोग। हार मानने को तैयार ही नहीं। मेरे बर्थडे का केक उनके बीच रखा था। वे मुझे ''सरप्राइज़'' देने का प्लान कर रहे थे जो मैंने सब ख़राब कर दिया। मैंने मन में सोचा बच्चू कभी तो पकड़े जाओगे। जैसे-जैसे बड़ा होता गया यह बीमारी कम होती चली गई। हम लोग दस बहन-भाई हैं, घर में हर समय धमाल मची रहती थी। कौन किसकी बीमारी पहचाने? इतने सारे लोग कौन किसकी मदद करे? मैंने ख़ुद ही अपनी यह बीमारी ख़ुद को दूसरों के द्वारा ही पहचानने के हुनर में बदल ली।

मैं भूविज्ञान में बी.एस.सी. कर रहा था। एक रात मैं परीक्षा की तैयारी में लगा था, पत्थरों के रंग और खनिज पदार्थों तथा उनके गुणों में खोया हुआ था। रात के लगभग बारह एक बजे होंगे। किसी ने मेरे पीछे से एक काग़ज़ उठाकर पूछा, ''यह क्या है?''

मैं चौंक पड़ा, मेरी माँ अपने हाथों में मेरा एक काग़ज़ लेकर एक शेर पढ़ रही थीं।

तुम्हारे साथ जाने की ख़ुशी में लेके यह प्याला
तुम्हारी नींद के धोखे में हमने ज़हर पी डाला

''यह किसका शेर है?'' वे बोलीं।

''मेरा,'' मैंने झेंपते हुए कहा।

''देखो बेटा,'' उन्होंने कहा, ''मुझे डर है कि कहीं ऐसा न हो कि तुम प्यार किसी और से करो और शादी किसी और से कर लो।''

मैंने उनका इशारा फ़ौरन समझ लिया। जल्द ही अपना विषय बदल लिया और साहित्य में आ गया। जब मैं साइंस को छोड़कर साहित्य में आया, जीवन में मज़े ही आ गए। कहाँ पत्थरों में रंगों की तलाश और कहाँ साहित्य के रंग बिरंगे फूलों भरे उपवन की सैर। मेरी दुनिया ही बदल गई। माँ ने सच ही कहा था कि पढ़ाई के लिए कोई भी विषय अच्छा या

डॉ. अफ़रोज़ ताज, Campus Box 3267
201 New West, University of
North Carolina, Chapel Hill, 27599
मोबाइल:919-999-8192
ई-मेल: taj@unc.edu

बुरा नहीं होता, विषय सब से अच्छा वही होता है जिस में तुम्हारी रुचि हो, जिस से तुम्हारी आत्मा जुड़ी हो। उसी के साथ तुम इंसाफ़ भी कर सकोगे। तुम भी ख़ुश, तुम्हारा परिवार भी ख़ुश। वही विषय तुम्हें विकास पर ला सकता है जिस में तुम्हारा मन लगता है। लोग पैसे के पीछे प्रेम को त्याग देते हैं। वे कभी ख़ुश नहीं रहते। पैसा नहीं, प्यार आत्मा की तृप्ति है। किसी भी मशहूर विषय को लेना ज़रूरी नहीं बल्कि किसी भी विषय में मशहूर होना ज़रूरी है। किसी और का विषय तुम्हारा नहीं हो सकता। किसी के विषय को सराह तो सकते हो पर चाह नहीं सकते। भूविज्ञान से बिछड़ने का दुख तो रहा परन्तु अपनी भूमि से जुड़ने का सुख प्राप्त हुआ, साहित्य से विवाह रचाने के बाद। साहित्य की डगर पर आते ही मैं बिना परिश्रम ख़ुद ब ख़ुद ही मंज़िल की ओर गामज़न हो उठा, सपने में चलते हुए व्यक्ति की तरह। बशीर बद्र का यह शेर याद आ रहा है-

''पत्थर के जिगर वालो, ग़म में वह रवानी है, ख़ुद राह बना लेगा बहता हुआ पानी है''

यह देखिए साहित्य किस विषय से नहीं जुड़ा है? मैं तो बचपन से ही अंजानी जगहों से स्वयं को जोड़ता रहा हूँ। बचपन से ही भ्रमण में रुचि रही है क्योंकि मुझे ''कागद की लेखी'' पर कम, ''आँखों की देखी'' पर ज़्यादा विश्वास रहा है। मेरे छह भाइयों में से एक ने पूछा,

''तू चैन से नहीं बैठता, कभी यहाँ, कभी वहाँ। क्या बनेगा आगे चलकर।''

मैंने तुरन्त धीरे से जवाब दिया, ''पर्यटक।''

पर्यटन करते-करते मैं अमरीका चला आया और पर्यटन स्थल को ही अपना घर बना लिया तथा अपने ही देश में अब मैं पर्यटक बन कर जाता हूँ।

यूनिवर्सिटी आफ़ नॉर्थ कैरोलाइना के एशियाई विभाग में मैं दक्षिणी एशिया का प्रोफ़ैसर हूँ और यहाँ भारतीय संस्कृति, साहित्य तथा मीडिया पढ़ाता हूँ। भारत के बारे में लाखों-लाखों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और लिखी जा रही हैं। नि:सन्देह बहुत काम हो चुका है और हो रहा है, परन्तु भारत के बारे में पढ़ा जाना और सुना जाना ही काफ़ी नहीं बल्कि भारत में रहकर देखना, छूना, सूँघना, भारतीयों से भारत में परस्पर बातचीत करना बहुत अवश्यक है। यह केवल पुस्तकों के द्वारा नहीं हो सकता। प्रेमिका के पत्र पढ़ना और प्रेमिका का साक्षात् आ जाना, दोनों में बड़ा अंतर है। कई वर्ष पहले मेरा एक छात्र टोरी गोड हमारे साथ भारत आया था। बाद में वह दिल्ली में अमरीकन दूतावास का कौंसलर बना। भारत आने से पहले भारत के बारे में उसने काफ़ी पुस्तकें पढ़ रखी थीं। जब वह हमारे साथ भारत आया, एक दम मौन हो गया। बहुत पूछने पर उसने कहा कि, ''मैं जाते ही अपनी वे सारी किताबें जो भारत के बारे में लिखी गई हैं, एक तरफ़ रख दूँगा। भारत किताबों से बिल्कुल अलग है।''

मैं भी सोचता हूँ कि अमरीका की कक्षाओं में छात्रों के कुछ प्रश्न तो प्यासे ही रह जाते हैं, चाहे जितने जवाब दे लो। कुछ जवाब तो उन्हें भारत जाकर ही मिल सकते हैं।

आज से बाईस साल पहले, हमने सोचा कि क्यों न हम यूनिवर्सिटी आफ़ नॉर्थ कैरोलाइना में Study Abroad शुरू करें जिसके सहारे हम अमेरिका के छात्रों को भारत ले जाकर भारत के बारे में पढ़ाएँ। यह कार्यक्रम केवल गर्मी की छुट्टियों में ही हो सकता है क्योंकि बाकी साल तो हम यू.एन .सी में पढ़ाते हैं। यह Study Abroad केवल यू.एन.सी. के छात्रों के लिए ही नहीं बल्कि पूरे अमेरिका के लिए खुला है। इसके अंतर्गत मैं और मेरे सहपाठी जॉन काल्डवैल तीन विषय पढ़ाते हैं - ''Contested Souls,'' ''Journalism'' तथा ''Survival Hindi'' ये छह सप्ताह में सात क्रैडिट का कार्यक्रम है। हम कहाँ-कहाँ जाते हैं, इसका विवरण मैं बाद में दूँगा। पहले मैं आपको बताता चलूँ कि यह कार्यक्रम हर साल चलाते हुए लगातार बाईस साल हो चुके हैं। अब आप सोचते होंगे, कि हम बाईस साल से एक ही चीज़ करते ऊबते नहीं। न ऊबने का एक बड़ा कारण है जिस का राज़ भी मैं बाद में खोलूँगा। पहले यह बताना अवश्यक है कि इसी साल हमने ''स्टडी अब्रौड'' में क्या-क्या किया और कहाँ-कहाँ गए। आइए.... हम आपको इसी साल के स्टडी अब्रौड में अभी साथ लेकर चलते हैं।

13 मई 2019 को हम आर.डी.यू. के हवाई अड्डे से चले और रुकते रुकाते दिल्ली के इन्दिरा गाँधी एयरपोर्ट पर 15 मई को सुबह चार बजे पहुँचे। कस्टम से बाहर निकले हमारी बस को समय पर हमें लेने आना था, परन्तु ड्राइवर के फ़ोन की शायद बैट्री डैड थी। इस लिए फ़ोन नहीं उठ रहा था। जैसे तैसे घण्टे भर के अंदर बस वाले का फ़ोन आ गया और हम ख़ुद ट्रालियों में सामान धकेलते वहाँ पहुँचे क्योंकि उसने कहा था कि हमीं को बस तक आना होगा। छात्रों के लिए यह बहुत बड़ी बात न थी क्योंकि हम अपने छात्रों को बहुत कुछ ओरियंटेशन में समझाकर लाते हैं। बस air conditioned थी पर बस का A.C. नहीं चल रहा था। पूछने पर पता लगा कि A.C. ख़राब है।

मैं बोला, ''मैंने तो पहले पूछा था कि क्या बस में A.C. है?''

ड्राइवर साहब ने जवाब दिया, ''पर आपने यह तो नहीं पूछा था कि चलता है या नहीं।''

मुझे उसका जोक बहुत पसंद आया और इस पर मैं, जान, और ड्राइवर तीनों ज़ोर से हँस पड़े। हँसी रोक कर वह बोला, ''इसकी कंपनी से शिकायत कीजिए, सर जी।''

हमने बस की खिड़कियाँ खुलवा दीं। सुबह के लगभग 5 बजे होंगे, धीमी-धीमी हवा और उस में भारत की भीनी-भीनी ख़ुशबू एक वातावरण बना रही थी। छात्र खिड़कियों से झाँक रहे थे, सड़क लगभग ख़ाली थी। रास्ते भर हम सड़क के किनारों पर सोते हुए लोग, बराबर में सोती हुई गाएँ, बकरियाँ, और जागते हुए कुत्ते दिखाते हुए अतिथि भवन पहुँचे।

सब थके हुए थे। सीधे सब को कमरों में सुलाने का सपना देखता हुआ मैं अतिथि भवन की लौबी में उतरा, परन्तु काऊंटर पर पता लगा कि जिस शीशे की अलमारी में कमरों की चाबियाँ रहती हैं, उस अलमारी की चाबी जिस के पास है, वह तो सुबह आठ बजे आता है।

15 मई सुबह नाश्ते के बाद हमने ओरियंटेशन किया और कक्षाएँ हुईं। यहाँ यह भी बताता चलूँ कि स्टडी अब्रौड के

दौरान कक्षाएँ, परीक्षाएँ इत्यादि भी अपने syllabus के अनुसार होती रहती हैं।

उसी शाम यानी 15 मई को हम इंडिया गेट पर भी गए जहाँ हज़ारों परिवार पिकनिक मना रहे थे। 16 मई को कमानी हाल में कथक नृत्य देखा, जो बिरजू महाराज के परिवार वालों के द्वारा पेश किया गया था। 17 मई को छात्रों को कुछ भारतीय कपड़े ख़रीदने थे। वह पहला दिन था जब उन्होंने अपनी ज़िंदगी में सड़कों पर इतनी भीड़ देखी और दुकानदारों से भाव-ताव किया। हमारी पूरी कोशिश रहती है कि टूरिस्ट बाज़ारों में न जाया जाए।

18 मई को क़ुतुब मीनार और 19 मई को गुरुद्वारा बंगला साहब गए जहाँ छात्रों ने हज़ारों के साथ लंगर खाया और कर सेवा में भी सहायता की। कई छात्रों ने रोटियाँ बनाना भी सीखीं। गुरुद्वारे के सामने ही एक चर्च में भी गए जो दिल्ली का एक बड़ा कथीड्रल है।

अगले दिन 20 मई को हम लोग दिमाणा (हरियाणा का एक गाँव) गए। वहाँ छात्रों ने बहुत ही अच्छा समय गुज़ारा। गाँव के लोगों ने हमारा जी भर कर अभिनंदन किया। मन्दिर में तिलक लगवाकर, प्रसाद खाकर, एक बड़े हाल में गए जहाँ वहाँ की औरतों ने गीत और नृत्य के द्वारा हमारा स्वागत किया। कुछ लोगों ने हरियाणा और उसकी संस्कृति के बारे में बताया। साथ के एक दूसरे हाल में गाँव वालों ने पेशेवर गायक गण को भी बुलाया था, जिन्होंने ढोल ताशों के साथ रागिणियाँ सुनाईं। यह सारी व्यवस्था गाँव के सब से बड़े सम्मानित मुखिया मान्यवर श्री रतन सिंह शर्मा जी ने की थी। वहाँ के भोजन और मिठाइयाँ हमें और हमारे छात्रों को आज तक याद आती हैं। पूरा दिन दिमाणा में गुज़ारने के बाद हमारे छात्र और हम हरियाणा की संस्कृति और कला तथा वहाँ के प्रेम में चूर शाम को कमरों में वापस आए और प्रोग्राम के अनुसार सुबह को क्लास हुई।

क्लास के बाद, 21 मई को, जामिया मिल्लिया इस्लामिया में हमें वहाँ की एक प्रोफ़ैसर हरप्रीत कौर जस जी से मिलना था। वे हमारे छात्रों से मिलकर बहुत ख़ुश हुईं। वहाँ हमने हिन्दी और उर्दू विभाग भी देखे।

आरती का समय हो रहा था। वहाँ से

उसी शाम हम कालका जी मन्दिर गए और हमने आरती में भाग लिया। यहाँ हज़ारों लोगों के बीच से सटकर गुज़रना पड़ता है। लेकिन यह सब देखने लायक था क्योंकि कालका जी का मन्दिर महाभारत के युग से बना है जिसका उल्लेख महाभारत में भी है।

22 मई को क्लासों के बाद, एक टूरिस्ट बाज़ार जनपथ से होते हुए हम पालिका बाज़ार तथा कनौट प्लेस गए। पालिका बाज़ार में देशी माल को विदेशी माल बताकर बड़ी शान से बेचा जा रहा था। लेकिन यह बात सच है कि वहाँ ख़रीदारी बड़े आराम से की जा सकती है। वहाँ हर चीज़ मिलती है। चाट, समोसों की बात ही कुछ और है। इसके साथ साथ पूरा बाज़ार A.C. होने से छात्रों को बड़ा अच्छा लगा। यह पूरा बाज़ार एक बहुत बड़े पार्क के नीचे बना हुआ है। थोड़ी धूप ढलते ही हम ऊपर कनौट प्लेस पर निकल आए, जहाँ सड़क के किनारों पर बहुत कुछ बिक रहा था, ख़ास कर हमें बड़े बड़े रंग बिरंगे पोस्टर बहुत अच्छे लगे। जब मैंने छात्रों की नज़र से पोस्टर देखे तो वास्तव में बड़ा आनंद आया। सारे पोस्टर खोलकर पत्थर की ज़मीन पर बिछा दिए गए थे। मैंने देखा प्रसिद्ध अमेरिकन मुक्केबाज़ मोहम्मद अली क्ले का पोस्टर उसके बराबर बजरंग बली हनुमान जी, इन के बाद ईसा मसीह, अपने पोस्टर में बिराजमान और उनसे लगा हुआ पोस्टर शाह रुख़ ख़ान का और फिर माइकल जैक्सन के बराबार श्री कृष्ण जी हाथ में मक्खन लिए, उस से लगे पोस्टर में मक्का मदीने की तस्वीरें, जिन के ऊपर बड़ा गड़ा लिखा था "अल्लाह हो अकबर," यानी परमात्मा सब से परम है।

"वाह! एक झलक में मैंने पूरा भारत देख लिया।"

मैं अपने छात्र डेविड की शकल देखता रह गया। कितना सच कहा उसने। यदि वह ऐसा न कहता तो क्या मैं ऐसा सोचता? यहाँ मुझे कहना पड़ेगा कि अध्यापक और छात्र का रिश्ता एक दूसरे से सीखने सिखाने का ही रिश्ता है। यह केवल "एक तरफ़ा" रास्ता ही नहीं। रास्ते में आगे चलकर दो पोस्टर साथ-साथ देखे और मन ही मन मुस्काया। भारत माता का एक बड़ा चित्र जिस के नीचे लिखा था "Home Sweet Home" और उसके बराबर ही कुछ गोरे, भूरे बाल नीली आँखों वाले बच्चों के पोस्टर थे, जो सब से ज़्यादा बिक रहे थे।

23 मई को क्लासों के बाद हम लोग जैन मन्दिर से होते हुए, चाँदनी चौक में लोगों से टकराते, जलेबी वाली गली के कोने पर प्रसिद्ध जलेबी वाले से जलेबी खाते, किनारी बाज़ार से गुज़रते, पुरानी दिल्ली में जामा मस्जिद आ पहुँचे। वहाँ तक जाते-जाते हम और विद्यार्थी गण पसीने में नहा चुके थे। फिर मस्जिद के मीनार का टिकिट लेकर मीनार की चोटी तक गए जहाँ से हम को मीलों दूर-दूर फैली हुई पुरानी दिल्ली, नई दिल्ली से आलिंगन करती नज़र आती है।

भारत के विभाजन का इतिहास यहाँ झूठा लगता है, या यूँ कह लीजिए कि यह सब देख कर भारत का बटवारा एक अनावश्यक आंदोलन था। मीलों-मीलों छतों पर पतंगें और कबूतर उड़ाए जा रहे थे। लाल क़िले के साथ-साथ पुरानी और नई इमारतें भारत की कहानी बयान कर रही थीं। (जगह-जगह छात्र नोट्स लेते जाते थे।) वहाँ से सीधे उतरते ही मीना बाज़ार होते हुए अपनी जेबें, पर्स बचाते हुए, रास्ते में कुछ हीजड़ों का घर दिखाते हुए, इत्र और धूप अगरबत्ती ख़रीदते हुए एक बहुत ही घनिष्ठ व्यस्त सड़क पर निकल आए। रमज़ान और ईद के आगमन के कारण भीड़ भाड़, शोर ग़ुल कुछ ज़्यादा ही था। चारों तरफ़ लोग ही लोग, रक्शे ही रक्शे, कुछ टोपियाँ, कुछ बुर्क़े, कुछ साड़ियाँ, कुछ गोरे, कुछ देसी, कुछ लड़ते हुए, कुछ हँसते हुए, कुछ ख़रीदते हुए, कुछ बेचते हुऐ। सब अपनी-अपनी दुनिया में मस्त। किसी को किसी से बचने या टकराने का होश न था। किसको फ़ुर्सत थी "excuse me" कहने की। एक ही झटके में मेरे सारे छात्र पूरे भारतीय हो गए। सड़क पार करने के लिए

वे स्वयं अपना अपना रास्ता तलाश करने लगे। भारत में सड़क पार करने का कोई एक नियम नहीं, जो औरियनटेशन में सिखाया जा सकता। हम कुछ सुगन्धें, कुछ दुर्गन्धें सूँघते-सुँघाते, धक्के खाते, धक्के देते, एक खाने के होटल में चढ़ गए। कुछ हँसते हुए, और कुछ रोते हुए छात्रों को चुप कराकर हम अपनी-अपनी कुर्सियों पर जम गए और अपने पानियों पर टूट पड़े। हमारा अपना पानी कौनसा पानी? इस पर बाद में बात करेंगे।

उस रात नींद बड़ी अच्छी आई। सुबह सब ताज़ा-ताज़ा नाश्ते की मेज़ पर चहकते हुए अपने-अपने अनुभव एक दूसरे को बताने में व्यस्त थे।

24 मई को कक्षाओं के बाद हम ख़ान मार्केट से कुछ पुस्तकें ख़रीदते हुए लोदी गार्डन पहुँचे। सिकंदर लोदी और इब्राहीम लोदी को आप जानते ही हैं जो 15वीं और 16वीं शताब्दियों में भारत के शासक रहे थे। यहीं इनके मक़बरे भी हैं। वहाँ से इंडिया इंटरनैशनल सेंटर गए, जहाँ एक हिन्दी-उर्दू के विद्वान श्री शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी द्वारा हज़रत अमीर ख़ुसरो पर एक भाषण था। इसके बाद रास्ते में शिरडी वाले साईं बाबा के मन्दिर में प्रणाम करते हुए कमरे पहुँचे। इन सब पर अध्ययन सामग्री पहले ही छात्रों को उपलब्ध कर दी गई थी।

25 मई को हमने कुछ नहीं किया, कक्षाओं के अलावा। क्योंकि 26 मई को हमें हरिद्वार जाना था। उसकी तैयारी भी करनी थी। सब ने अपने अपने कमरों में सफ़र की तैयारी की और ठंडे-ठंडे एयर कंडिशन में विश्राम भी।

26 मई को प्रातःकाल ही हमारी बस आकर लग गई, बड़ी सुन्दर साफ़ बस थी। और हाँ, एयर कंडिशन भी दिल से काम कर रहा था। रास्ते में रुकते-रुकाते, लीचियाँ, तरबूज़ खाते, आमों के बाग़ों में रुकते, मोरों के नाचों को छुप-छुपकर देखते, मेरठ से गुज़र रहे थे, जहाँ मेरे सहपाठी जान काल्डवैल ने चलती बस में छात्रों को बताया कि हम उस शहर से गुज़र रहे हैं जहाँ सन् 1857 में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम शुरू हुआ था। मैं खिड़की में से देख रहा था। यह वही सड़क थी जहाँ 1857 के आस-पास अंग्रेज़ी सेना की छावनियाँ ही छावनियाँ थीं और चारों ओर उनकी फ़ौज नज़र आती थी। परन्तु अफ़सोस, फ़ौजी भी सब देसी थे। और अब बराबर से न जाने कितनी मोटर साइकलें, कारें, आटो रिक्शे गुज़र रहे थे, कुछ पगड़ी पहने, कुछ साड़ी पहने घूँघट मारे, कुछ टोपी, कुछ बुर्क़े, कुछ पैंटें, कुछ पजामे, कुछ धोतियाँ वाहनों पर लदे पड़े थे। सब साथ-साथ एक दूसरे पर झुके हुए।

अरे वाह, यह मैंने क्या देखा, एक बुर्क़े वाली मोटर साइकिल पर और पीछे बैठे हैं कौन? बहुत शानदार पगड़ी पहने शायद कोई सरदार जी। मैंने जल्द कैमरा निकाला परन्तु कैमरा उफ़! ऐसे समय आसानी से कैमरा काम नहीं करता और सीन हाथ से निकल गया। इसी तरह के सीन की मुझे बहुत तलाश रही, जो मुझे मिला मलेर कोटला में। मलेर कोटला पंजाब का यह वह शहर है जिस पर भारत के विभाजन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। विभाजन से पहले सिख, मुस्लिम, हिन्दू जिस प्रतिशत में रहते थे अब भी वही प्रतिशत सलामत है। यह जिन गुरुओं, बुज़ुर्गों और सज्जनों का काम है, उनको शत-शत प्रणाम।

हरिद्वार पहुँचते ही हमने आराम किया। लगभग 22 साल से ही हम इसी मण्डी गोविन्दगढ़ नामक आश्रम में ठहरते आ रहे हैं। इस आश्रम की सुविधाएँ और इन्तज़ाम साल ब साल, दिन ब दिन बहुत सुधरता जा रहा है, ऐसे ही जैसे सारे भारत में। खाना स्वादिष्ट, स्वास्तिक, शाकाहारी और शुद्ध भारतीय। मेरे छात्रों को यहाँ सदेव ही अच्छा लगता है। वे सुबह-सुबह उठ कर मंसा देवी के मन्दिर, जो बराबर के पहाड़ पर है, जाकर साधुओं सन्तों से आशीर्वाद लेते हैं। कुछ cable car से और कुछ पैदल ऊपर चढ़ते हैं।

27 मई को गंगा जी की महा आरती कैसे भूली जा सकती है? हरिद्वार की यह महा आरती हमारे छात्रों के लिए बड़ा अनूठा अनुभव है। शाम सूरज छुपते ही लाखों लोग हर की पौड़ी पर आरती करने तथा यह नज़ारा देखने आते हैं। गंगाजी के उस पार किनारे पर बड़े बड़े आग के शोले झूमते और घूमते नज़र आते हैं, और गंगा जी में उनका प्रतिबिंब बड़ा ही मनमोहक लगता है। आरती की सुरीली आवाज़ सारे वातावरण में गूँज रही होती है। दूर तक गंगा की लहरों पर पत्तों की बनी हुई छोटी-छोटी कश्तियों में रखे दीपक झिलमिलाते हुए, बहते हुए सुन्दर दिखते हैं, मानों गंगाजी के आँचल में आसमान के तारे झिलमिल सज रहे हों। लाखों लोग चुभती हुई गर्मी के होते हुए भी एक दूसरे को देखकर मुस्कुराते नज़र आते हैं। बाईस साल का यह अनुभव हर बार छात्रों की दृष्टि से नया बन जाता। लोगों और गोबरों से बचते बचाते हम अपनी बस में जा बैठे।

हरिद्वार में सारे समय हमारे क्लास इस आश्रम के बड़े मन्दिर में होते हैं। 28 मई को कक्षा के बाद, हम हिमालय के ज़रा और ऊपर चढ़े यानी कि ऋषिकेश गए। लक्ष्मण झूले को पार करने के बाद हम अपने छात्रों को स्वयं ही घूमने की अनुमति देते हैं और फिर शाम को उनसे उनके सारे अनुभव बस में सुनते हरिद्वार पहुँचते हैं।

29 मई की सुबह को हमें हरिद्वार से अलीगढ़ जाना था। जैसा कि स्पष्ट है, हमारी बस हमारे साथ पूरे ही समय रहती है। बस नाश्ते के बाद आश्रम से लग गई। रास्ते में चीनी बर्तनों के शहर ख़ुरजे से बर्तन ख़रीदते हुए अलीगढ़ पहुँचे।

अलीगढ़ में छात्रों को अलग-अलग घरों में दो रातों के लिए ठहराकर, उनको उनके होस्ट परिवारों के साथ समय दिया जाता है। यहाँ अलग-अलग धर्मों के परिवार चुने जाते हैं। दो रातों में ही छात्र उलझन में पड़ जाते हैं कि किसका होस्ट परिवार हिन्दू था और किसका मुस्लिम। सब ही लगभग अपने-अपने होस्ट परिवारों के धर्मों के बारे में ग़लत सलत अनुमान लगा रहे होते हैं और हम अंदर ही अंदर मुस्कुराते हैं तथा राज़ को राज़ ही रखते हैं। यहाँ पता लगता है कि stereotype कितना दुनिया की आँखों में धूल झोंकता है।

यहाँ हम अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की सैर कराते हैं यहाँ के महलनुमा छात्रावासों तथा इमारतों को देखकर हमारे छात्र हार्वर्ड और येल की इमारतों से तुलना करते नज़र आते हैं। दूसरे दिन हम हिन्दी और उर्दू विभागों में भी बुलाए गए, जहाँ हमने अच्छा समय गुज़ारा परन्तु रमज़ानों के कारण खाने को कुछ न मिला और भूखे आए। इसी शहर में हमने इब्ने सीना संग्रहालय भी देखा जहाँ कुछ

खाने-पीने को भी मिला।

29 और 30 मई अलीगढ़ में बिताकर अगले दिन श्रीकृष्ण जी के नगर वृन्दावन जाना था जो अलीगढ़ से ज़्यादा दूर नहीं। 31 मई को हमें हमारी बस अलीगढ़ से वृन्दावन लेकर आई। अभी हम अपने अतिथि भवन की सड़क पर मुड़े ही थे कि गाड़ी का पहिया एक बड़ी नाली में गुस गया। फिर क्या था? बंद होने के कारण नाली में पानी भर गया, गर्मी तेज़ थी, गली के कुत्ते नाली में कूद पड़े। और जैसे ही हम बस से बाहर निकले, एक कुत्ते ने मेरा पसीना देखकर नाली का पानी जी भरकर मुझ पर छिड़क दिया।

गर्मी अपनी जगह थी परन्तु यह नगर अपनी जगह सुन्दर, हरा भरा, मनभावन। सोच-सोचकर दिल पुलकित होता था कि हम ऐसी जगह हैं जहाँ की गली-गली में कृष्ण बाँके बिहारी खेले और घूमे हैं, जहाँ उन्होंने लीलाएँ रचाई हैं। शाम को हम श्री बाँके बिहारी के दर्शन को भी गए। छात्रों को यह रसिक वातावरण मुग्ध किए दे रहा था। सारे ही छात्र माथे पर टीका लगाए बड़े सुन्दर दिख रहे थे। हर कोने पर सुन्दर मन्दिर और मन्दिरों पर किलकारियाँ भरते, कूदते छोटे बड़े बन्दर छाए हुए थे। छात्रों के तो कैमरे ही न रुक रहे थे। एक छात्र का कैमरा तो बन्दर के हाथ में जाते-जाते रह गया। मैं यहीं वृन्दावन के पास ही कासगंज की गलियों का पला, बढ़ा, लड़ा, पढ़ा, और खेला हूँ। बृज मेरी अपनी भाषा, धूल मेरी अपनी देह, कृष्ण प्रेम मेरा अपना संस्कार है। सब कुछ यहाँ जब से अब तक वैसा ही है, जैसा मेरे बचपन में था। यहाँ के वही पढ़े-लिखे और सधे हुए पंडे और पंडों के सधे हुए वानर आज भी ज्यों के त्यों हैं।

1 जून को हमें मथुरा होते हुए कृष्ण जन्मभूमि के दर्शन कराते हुए और उसके साथ ही जुड़ी हुई जामा मस्जिद बाहर से दिखाते हुए आगरे के लिए प्रस्थान करना था। शाम तक हम आगरे के ग्रांड होटल में पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने हमेशा की तरह कक्षाओं के लिए कमरों की व्यवस्था की हुई थी। खाना खाकर हम सब शापिंग के लिए आगरे के सदर बाज़ार में गए। 2 जून को क्लास के बाद फ़तहपुर सीकरी का प्लान था। हज़रत सलीम उद्दीन चिश्ती की दरगाह

पर क़व्वालियों में बहुत सोज़ था। यह वही दरगाह है जहाँ अकबर ने आकर सन्तान के लिए दुआ माँगी थी और जोधाबाई के पुत्र पैदा हुआ था जिसका नाम इन्हीं सूफ़ी बुज़ुर्ग के नाम पर सलीम रखा गया। यहाँ अकबर और जोधाबाई का महल भी देखा। चारों ओर छोटे-छोटे बच्चे फ्रैंच, स्पैनिश, जापानी, तथा चीनी इत्यादि बोलते हुए कुछ बेचने के लिए हमारे पीछे-पीछे फिर रहे थे।

3 जून को हम ताज महल देखने गए। ताज महल की तारीफ़ सूर्य को दीपक दिखाना है। सूरज निकलने से पहले हमको ताज महल पर होना था ताकि ताज महल ठंडा मिले तथा उसी दिन हम आगरे का लाल क़िला भी देख सकें।

4 जून को जमकर आराम तथा पढ़ाई की। 5 जून को आगरे का एक बहुत सुन्दर मन्दिर भी देखा, यह दयालबाग़ मन्दिर राधा-स्वामी के मानने वालों की मेहनत का बड़ा कामयाब नतीजा है। यह सारा ही संग-ए मरमर का बना हुआ है, इसकी शिल्पकारी बिना दिखाए समझाना बड़ा कठिन काम है। आगरे में यदि आपने अंग्रेज़ों का पुराना क़ब्रिस्तान नहीं देखा तो मैं कहूँगा कि इतिहास का एक अनोखा स्थान नहीं देखा। सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी के अंग्रेज़ों की क़ब्रें ख़ुद ब ख़ुद अपना राज़ और भारत का इतिहास बयान करती हैं तथा इन्सान सोचने पर मजबूर हो जाता है कि अंग्रेज़ उस दौर में यहाँ क्या कर रहे थे। मैं यह कहना भूल गया था कि 5 जून को उसी दिन ईद का दिन भी था और हम किसी के घर मिठाई और सैवियाँ खाने के लिए आमंत्रित भी थे। छात्रों को सैवियाँ बहुत पसंद आईं और उन्होंने उनके बर्तन ख़ाली कर दिए। अब इसी दिन ईद की सुबह का ज़िक्र सुनिए। किसी ने बताया कि हमारे ग्रांड होटल के पास ही ईदगाह है। हमने सोचा क्यों न सुबह ही छात्रों के सोकर उठने से पहले वहाँ जाया जाए और ईदगाह के मेले का मज़ा लिया जाए। सुबह के सात आठ बजे थे, सूर्य देवता अपने पूरे ताप पर थे। सड़कों पर दोनों तरफ़ मिठाइयाँ, खिलौने, स्मार्ट फ़ोन के कवर, ग़ुब्बारे, चरख़, चाट, लोग - सब कुछ था। मैं रुक गया। मिट्टी के खिलौनों से भरी चारपाई पर कला के नमूनों के ख़ज़ाने भरे थे। रंग बिरंगे खिलौने बड़े सुन्दर दिखते थे। मिट्टी के रंगे हुऐ मोटे-मोटे सेठ सेठानी, मुस्कुराते हुए पंडित जी, घूँघट में पंडितायन, मूँछों पर ताओ दिए बड़े पेट वाला पुलिस मैन, दुबला पतला किसान, और एक तरफ़ दुर्गा जी, गणेश जी, पर्वत उठाए पवन पुत्र हनुमान जी, एक चारपाई पर सभी कुछ तो था, दीन भी, दुनिया भी।

मैंने कुम्हार से पूछा, ''यह ईद के त्योहार का मेला है, यहाँ भगवानों की मूर्तियाँ भी हैं, क्यों?''

उसने पुलिस वाले खिलौने की तरफ़ इशारा करके कहा, ''और शैतानों की मूर्तियाँ भी हैं... मैं आपका प्रश्न समझता हूँ सर जी, यह हिन्दुस्तान है, यहाँ हर तरह का आदमी हर जगह आ सकता है, यह देखो,'' जान की तरफ़ इशारा करके, ''यह गोरा भी यहाँ आन टपका। बात यह है कि यह मूर्तियाँ बनाने का काम हमारे पूर्वजों से चला आ रहा है। छापे वही पुराने पुरखों से चले आ रहे हैं। ये साँचे वही हैं जो मेरे दादाओं ने प्रयोग किए होंगे। और फिर हाट बाज़ार में तो सभी लोग आते हैं, ख़ासकर बच्चे। बच्चे नहीं देखते यह ईद का मेला है या दीवाली का मेला। उनके लिए तो मेला मेला है और हमारे लिए तो पैसा-पैसा है। बाबू जी, बच्चों का, मेलों का और पैसों का कोई धर्म नहीं।'' मैंने देखा जितनी तेज़ी से चिड़ियाँ चिरौंटे बिक रहे थे उसी तेज़ी से दुर्गा जी की मूर्ति भी।

मेरी आँखों, कानों को यक़ीन न आया जब मैंने एक हिजाब वाली महिला को गणेश जी की मूर्ति के भाव पूछते हुए सुना, ''अरे भाई, थोड़ी सस्ती कर दो, मुझे अपनी सहेली के लिए लेनी है।''

कुम्हार ने मेरी ओर बड़ी विजयी नज़रों से देखा और मैंने जान की ओर शर्मिन्दगी से। मन में सोचा, इतनी जल्दी चले गए मुंशी प्रेमचन्द। यह ईदगाह भी तो देखते जाते।

हमारी तो ईद हो चुकी थी। आज के तोहफ़ों से मैं इतना लद चुका था कि झुका जा रहा था। पता नहीं स्टडी अब्रौड से छात्र कितना सीखते हैं परन्तु हाँ, यह अवश्य कहूँगा कि भारत के बारे में सीखने के लिए एक उम्र काफ़ी नहीं, चाहे मुंशी प्रेमचन्द की हो या किसी की।

6 जून को हमारी बस जयपुर की ओर चल पड़ी। यहाँ जयपुर में भी कक्षाएँ, परीक्षाएँ तथा निबंध भी चलते रहे। वे सीखते रहे कैसे खाते हैं दाल भाटी चूर्मा। चोखी ढाणी छात्रों को बहुत पसंद आई। यहाँ राजस्थान की सारी कला, संस्कृति एक जगह एकत्रित कर दी गई है, जैसे हाथियों, ऊँटों, घोड़ों, बैल गाड़ियों की सवारियाँ तथा राजस्थानी नृत्य, कठपुतली वाले, जादूगर, नट के तमाशे वाले, और राजस्थानी खाना, किस चीज़ की कमी थी यहाँ। कमी थी तो केवल समय की। बहुत जल्द ही राजस्थान से दिल्ली जाने का समय आ गया। आमेर का क़िला, सूर्य मन्दिर, गल्ता जी, जलमहल, जंतर मंतर, हवामहल, क्या-क्या नहीं देखा वहाँ, और क्या-क्या नहीं रह गया देखने को। शापिंग के लिए यह शहर बहुत कामयाब रहा। चलते- चलते सलमान ख़ान की ''भारत'' फ़िल्म भी देखी और पिज़्ज़ा हट में डिनर भी किया। मज़े की बात है कि छात्रों ने भारत में पिज़्ज़ा के मज़े में भी भारतीय मज़ा पाया। सब मिलाकर 6 जून से 11 जून का समय लगा जैसे एक दिन में गुज़र गया।

11 जून को जयपुर से मानेसर, हरियाणा जाना था। वहाँ एक रात छात्रों को अलग-अलग घरों में ठहरा कर हरियाणा का भी प्रेम व्यवहार दिखाना था। उसी रात किसी का जन्मदिन भी मनाया गया। रात गए तक जश्न रहा। गीता जी, उमा जी, कमल जी का खाना तथा उपहार हमारे छात्र सदा याद रखेंगे।

12 जून को हमें दिल्ली में होना था क्योंकि उसी दिन बीबीसी के स्टूडियोज़ में बुलाया गया था ताकि हमारे छात्र जर्नलिज़्म के विषय का अच्छा अनुभव कर सकें। बहुत अच्छे प्रश्नोत्तर हुए और हम ने लाइव टैलीकास्ट भी देखा। उसी शाम हम सब लोग एक परिवार में भी आमंत्रित थे। हम शाम को दिल्ली में छतरपुर के शानदार मन्दिरों के दर्शन करते हुए उस परिवार के घर डिनर पर पहुँचे। एक उच्च धनवान् परिवार का रहन-सहन कैसा होगा, यह उसी घर में बैठकर अपनी आँखों से ही देखकर पता लगाया जा सकता है। उनके घर का खाना कितना देसी है, उनका पहनावा कितना भारतीय है, उनकी भाषा कितनी हिन्दी है, उनके यहाँ कितने नौकर, कितने कमरे, और कितने कुत्ते हैं, यह सब किताबों में पढ़कर नहीं, देखकर और बातचीत करके जाना जा सकता है।

13 जून को हम दिल्ली हाट गए। जहाँ कलाकार और कारीगर स्वयं अपना काम या कला बेचते हैं और जहाँ बीच वाला व्यापारी कोई नहीं। मगर भाव ताव, वह तो हर जगह है। 14 जून को एक हस्पताल में जाकर वहाँ का पूरा भ्रमण किया। हस्पताल के मालिक डॉक्टर दुबे ने हमारे छात्रों को मरीज़ों से मिलवाया, तथा दूसरे डाक्टरों से मिलवाया।

15 जून को हज़रत निज़ामुद्दीन की दरगाह और प्रसिद्ध उर्दू कवि मिर्ज़ा ग़ालिब का मक़बरा देखा। जैसे-जैसे हम दरगाह की तरफ़ छोटी-छोटी गलियों से अंदर जाते जाते थे, वैसे-वैसे लगता था कि सदियों सदियों पीछे जाते जा रहे हैं। छात्रों के लिए, यह एक अजीब हसीन अनुभव था। ज़मीन पर फूल ही फूल थे, इधर-उधर इत्र और फूल बिक रहे थे। चारों तरफ़ फ़क़ीर ही फ़क़ीर थे। दरगाह का आँगन खुला-खुला संग-ए मरमर का बना हुआ था। हिन्दू, मुस्लिम, सिख सारे धर्म एक साथ संग-ए मरमर के फ़र्श पर बैठे सदियों से सुरीली मनमोहक क़व्वालियाँ सुन रहे थे। मज़ार के सामने सीधे हाथ पर शाहजहाँ की बेटी जहाँ आरा का मक़बरा और बिल्कुल सामने ही हज़रत अमीर ख़ुसरो का मज़ार था। और उधर हज़ारों लोग खाने की लाइनों में खड़े अपनी अपनी बारी के इंतज़ार में थे। और इधर जेब कतरे ही हम से कह रहे हैं, ''जेब कतरों से सावधान।''

16 जून को हम लोग दरियागंज की बहुत बड़ी ''बुक सेल'' में गए। हर इतवार को यहाँ लाखों किताबें बेची जाती हैं। मुझे याद आया कि दरियागंज की सड़कों पर पहले किताबों की संख्या कम हुआ करती थी। अब ज़्यादा बढ़ती जा रही है।

मेरे एक छात्र ने मुझसे कहा, ''घरों में जितने स्मार्ट फ़ोन बढ़ते जा रहे हैं, उतनी ही सड़कों पर और कूड़ों में किताबें।''

स्टडी अब्रौड के अंतिम छह दिन छह सैकिण्डों में गुज़र गए। 22 जून को सब को अमरीका अपने घर वापस जाना था। चलते चलते हम छात्रों की एक दावत भी करना चाहते थे। छात्रों का अनुरोध था कि दावत शाकाहारी नहीं होना चाहिए। लेकिन अजीब बात थी कि मासाहारी रैस्टोरांटों में रिज़र्वेशन बड़ी मुश्किल से मिल पा रही थी जबकि शाकाहारी रैस्टोरांटों में आसानी से।

17 जून और 22 जून के बीच हम इन्दिरा गाँधी संग्रहालय, महात्मा गाँधी स्मृति, आयुर्वेदिक तथा यूनानी दवाओं की फ़ैक्टरी और दूर दर्शन स्टूडियो देखने गए। उसी दिन दूर दर्शन वालों ने हम लोगों की एक फ़िल्म भी बनाई।

मैंने तुमको इतना देखा जितना देखा जा सकता था

फिर भी प्यारे, इतने दिन में कितना देखा जा सकता था

तो यह थी इस साल की दास्तान-ए-स्टडी अब्रौड। किसी विद्यार्थी का किसी दूसरे देश का अध्ययन उसी देश में रहकर करना स्टडी अब्रोड कहलाता है, लेकिन विदेशियों के दृष्टिकोण से अपने देश का अध्ययन क्या कहलाता है? इसी बात को निगाह में रखकर यू.एन.सी. में हम एक विषय पढ़ाते हैं ''India Through Western Eyes'' लेकिन पढ़ाते हैं West में बैठकर, यह बड़ा फ़र्क़ है। हम को भारत के बढ़ते विकास पर भी नज़र रखनी है। भारत में देखते-देखते बहुत अच्छे बदलाव भी आ चुके हैं। वाहन, सड़कें, टैलीफ़ोन, बाथरूम, सभी कुछ में सुधार आया है वरना वह दिन भी था जब हमारे लिए अपने छात्रों को भारत में बाथरूम में बैठना तथा पानी का प्रयोग करना बताना एक मुश्किल काम बन जाता था।

दिल्ली में मैट्रो का आना एक बहुत बड़ी परिपूर्ति है। साफ़-साफ़ डिब्बे, ठंडा-ठंडा एयर कंडिशन, हर व्यक्ति पंक्ति में खड़ा है, कोई किसी को धक्का नहीं दे रहा, कोई पंक्ति में नहीं घुस रहा, कहीं कूड़ा नज़र नहीं आता, तो और क्या चाहिए। इसका अर्थ है यदि हम चाहें, तो यह सब कर

सकते हैं, यह इसका जीवित उधाहरण है परन्तु हम करते नहीं। हम क्यों नहीं करते, इसका जवाब किसी के पास नहीं। आप जानते ही हैं स्टडी अब्रोड में हमारे साथ अधिकतर लड़कियाँ आती हैं। केवल एक दो लड़के होते हैं। हर साल ऐसा ही होता है। शायद लड़कियों में संसार देखने की जिज्ञासा या साहस ज़्यादा है, पता नहीं। मैट्रो में महिलाओं के लिए अलग डिब्बे हैं ताकि मर्दों के धक्कों या उनकी हरकतों से वे बचकर रह सकें। मैं यह देखकर बहुत ख़ुश हुआ पर फिर मेरी एक छात्र ने मेरी आँखें खोल दीं। वह बोली, ''यदि पुरुष अपने व्यवहार नहीं बदलते, तो हम अपना रास्ता बदल रहे हैं, इसका मतलब है कि सरकार ने औरतों के बचाव का यह हल निकाला है कि उनको अलग कर दिया जाए। क्यों नहीं मर्दों को ही व्यवहार बदलने की शिक्षा दी जाती।''मैंने मन में सोचा कि यह तर्क बहुत पुष्ट है, दुनिया में घूँघट, बुर्क़ा तथा हिजाब भी इशारा है कि हमारे पास इसके अलावा कोई हल नहीं।

इतनी सुन्दर साफ़ और तेज़ मैट्रो क्षण भर में एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ ले जाती है। आधुनिक वातावरण से होते हुए हमें जब सीढ़ियाँ चाँदनी चौक स्टेशन से ऊपर लेकर आती हैं तो लगता है किसी पुरानी कहानियों के देस में उतर आए हों जैसे ''Back to the Future.'' लेकिन हाँ, कुछ चीज़ें अभी भी वैसी की वैसी हैं या शायद ख़राब की तरफ़ जा रही हों, जैसे त्वचा के रंग की अहमियत। मैं मानता हूँ गोरों ने हम पर सदियों राज किया लेकिन अब तो बहुत दिन हो गए, अपने रंग की सुन्दरता को पहचानने के लिए। फ़िल्मों, विज्ञापनों, तथा शादियों से ज़ाहिर है कि गोरा रंग हमारी सुन्दरता का प्रतीक बन चुका है हालाँकि हमारे इतिहास में ग़ुलामों को रखने की कोई मिसाल नहीं। बल्कि यहाँ कुछ बादशाह ख़ुद ग़ुलाम वंशी रहे हैं। तो फिर क्यों स्टडी अब्रोड में यदि कोई छात्र हमारे साथ अफ्रीकन-अमरीकन होता है तो फ़िक्र लगी रहती है कि कोई कुछ कह न दे। यह छात्र ख़ुद हमसे कह चुके हैं कि उनको कितना कम समझा जा रहा है भारत में। यही नहीं बल्कि होस्ट परिवार जब अपने घर में ठहराने को छात्रों को लेने आते हैं तो हम से गोरी लड़कियों

या गोरे लड़कों की तरफ़ इशारा करके कहते हैं कि हमें यह छात्र चाहिए, और अफ्रीकन-अमरीकन छात्रों को कोई नहीं पूछता। हमने इसका हल निकाल लिया है परन्तु इस से त्रुटि तो ठीक नहीं हुई। एक सच्चा क़िस्सा सुनते जाइए, जो मेरे साथ हुआ। कुछ साल पुरानी बात है कि मैं और मेरे सहपाठी जान काल्डवैल (गोरा अमरीकन) दिल्ली के एक एयरलाइन ऑफ़िस में अपने टिकिट बढ़ाने के लिए पहुँचे। हम इमारत की सातवीं मंज़िल पर थे। काम होने के बाद, मैंने बाहर लौबी में बाथरूम देखा।

मैंने जॉन से कहा, ''अरे वाह! बाथरूम साफ़ सुथरा लगता है। मुझे जाना भी है।''

जॉन ने कहा, ''मुझे भी।''

जॉन अंदर चले गए और मैं दरवाज़े पर एक व्यक्ति के द्वारा रोक दिया गया।

मैंने पूछा, ''क्या हुआ? आप क्यों रोक रहे हैं?''

वह बोला, ''आप इस बाथरूम में नहीं जा सकते। यह केवल फॉर्नरों के लिए है।''

जॉन जब वापस आए, मैंने बताया कि मैं क्यों न जा पाया।

जॉन बोले, ''अरे यार! पासपोर्ट दिखाकर अंदर आ जाते।''

मैंने कहा, ''मैं पहले ही शर्मिंदा हूँ कि मुझे बाथरूम जाने के लिए अपना अमरीकन पासपोर्ट दिखाना पड़ा।''

जॉन ने पूछा, ''तो फिर???''

मैंने कहा, ''वह बोला यह तो अमरीकन पासपोर्ट है, तू ने अपनी शकल देखी है आइने में?''

मैंने दिल में सोचा, मुझे आइना देखने की क्या ज़रूरत है, क्योंकि उस व्यक्ति की शकल भी मेरी ही जैसी थी। लेकिन फिर भी वह अपनी शकल इतनी अच्छी नहीं मानता, जितनी जॉन की।

जॉन ने उस से पूछा, ''तो ए कहाँ जाएँ?''

उसने खिड़की में से बहुत नीचे गली में इशारा किया, ''वहाँ, उस गली में।''

मैं सोचता था, जॉन को हँसी आ जाएगी, मगर देखा तो चेहरा गंभीर था। मैं समझता हूँ इस कहानी में रंग को ज़्यादा समझना कम है, अपने को कम समझना ज़्यादा है।

आपके अपनों में आपका महत्त्व होना ज़रा कठिन है। आपको हँसाने के लिए एक वाक्य बोल ही दूँ। इस वाक्य को यदि आप चाहें तो मज़ाक़ समझ लें। आपका आपके देश में क्या महत्त्व है, यह आप किसी गोरे के साथ जाकर देखें। विश्वास कीजिए भारत में मेरे साथ कितनी बार हुआ है कि मैं अपने छात्रों के साथ किसी दुकान में प्रवेश कर रहा हूँ, तो दुकानदार मुझे द्वार पर ही रोक देता है।(तुम बाद में आना।)

किसी भी कार्यालय में मैं घुसूँ तो व्यक्ति शायद न खड़ा हो, परन्तु जैसे ही जॉन प्रवेश करते हैं, वह व्यक्ति फ़ौरन खड़ा होकर उनसे हाथ मिलाता है। कहाँ तक गिनाए ये चीज़ें? और यदि मैं इस व्यवहार का कारण पूछ भी लूँ तो ये महाशय फ़रमाते हैं, ''अरे भाई, ये हमारे मेहमान हैं, मेहमान हमारा भगवान् है, मुकेश को नहीं सुना, महमाँ जो हमारा होता है, वो जान से प्यारा होता है।''

मैं यह बात मान लेता यदि मेरे अफ्रीकन-अमरीकन छात्र अपने ऊपर हुए व्यवहार का ज़िक्र न करते। क्या वे यहाँ भारत में मेहमान नहीं? मेरा शेर सुनें-

ग़ैर की आँखों से ख़ुद को देख कर
ख़ुद ही मन ही मन में शर्माते हैं वह

आपने सुना होगा भारत में हर बीस कोस पर बानी और हर तीस कोस पर पानी बदल जाता है। परन्तु उत्तरी भारत में और बहुत जगहों पर दक्षिणी भारत में हिन्दी उर्दू से काम चलाया जा सकता है, इसीलिए एक क्रैडिट कोर्स हम हिन्दी का भी पढ़ाते हैं। पानी के लिए बहुत आसान है। भारत में पेट को ठीक-ठाक रखने के लिए हमें और हर छात्र को अपना-अपना पानी का फ़िल्टर अमरीका से लाना अनिवार्य है। जहाँ खाने का सवाल है हम अधिकतर शाकाहारी खाना ही खाते हैं, यदि वह पूरा पका हुआ है। हर साल एक दो छात्र ऐसे भी आते हैं जिनके माता-पिता देसी हैं। हर बार तो नहीं लेकिन कभी-कभी वे हमारे लिए समस्या

भी बन जाते हैं क्योंकि उनका भारत वह है जो उनके माता-पिता ने दिखाया है। भारत तो वह भी है, परन्तु भारत केवल वो ही नहीं है। संस्कृति तथा भाषाओं के अनुसार, एक भारत में कितने भारत हैं, गिने नहीं जा सकते, जो एक दूजे के बिना अधूरे हैं। कहीं सादगी तो कहीं रंगीनियाँ।

स्टडी अब्रौड के मेरे एक छात्र ने कहा कि, ''ऐसा लग रहा है जैसे मैं कई देश एक साथ एक समय में देख रहा हूँ जैसे इंद्रधनुष।'' सही कहा उसने। यदि इंद्रधनुष एक ही रंग का होता, तो बड़ा अनाकर्षित होता। इंद्रधनुष वही है जिस में सब रंग एक साथ एक दूसरे से जुड़े हों, जैसे इन्दर सभा की परियाँ। रंग बिरंगे फूलों की वाटिका की बात ही कुछ और है। कोई ऊब नहीं सकता। गंगा-जमना के मिलन से ही तो संगम बना है। नदियाँ अलग अलग रहकर संगम नहीं बनातीं।

मेरे एक छात्र ने कहा, ''जो पुस्तकें भारत पर लिखी गई हैं, उन में यह सब नहीं लिखा जा सकता जो मैं देख रहा हूँ, और या जो मैं नहीं देख पा रहा हूँ।''

इसी तरह एक साल एक सीनियर प्रोफ़ैसर कैथी भी स्टडी अब्रौड में हमारे साथ आई थीं। कैथी भारत पर एक पुस्तक लिख रही थीं। हम वाराणसी गए हुए थे। दसाश्वमेध घाट के प्रवेश पर सुरक्षा के लिए मैटल डिटैक्टर लगा दिए गए हैं। हम लोग बाज़ार में खड़े, कुछ ख़रीद रहे थे।

कैथी बोलीं, ''पता नहीं, लोग क्यों कहते हैं कि भारत के बारे में सब कुछ लिखना असंभव है, कुछ परिस्थितियाँ पुस्तक में लिखी नहीं जा सकतीं। अभी तक तो मैंने ऐसी कोई परिस्थिति भारत में नहीं देखी जिस पर नहीं लिखा जा सकता।'' अभी उन्होंने वाक्य पूरा ही किया था कि भरे बाज़ार में बड़े ज़ोर-ज़ोर से लोग भागने लगे और चारों तरफ़ लोग चीख़ रहे थे।

''भागो! ... भागो! ... बचो! ... बचो!''

हर ओर लोग गिर रहे थे, उठ रहे थे। मैंने फ़ौरन कैथी की कमर में हाथ डालकर ऊपर उठा लिया, और गोबर भरे जूते लेकर मिठाई की दुकान में घुस गया। डरते-डरते मैंने झाँककर देखा, अजीब सीन था। समझना मुश्किल, समझाना मुश्किल। एक

बहुत ही विशाल काला साण्ड भागता आ रहा था। उसके गले में मैटल डिटैक्टर का पूरा द्वार टंगा हुआ था, जिसके चारों ओर तारों से फुलझड़ियाँ निकल रही थीं। इतना बड़ा हाथी जैसा साण्ड दौड़ कम उड़ ज़्यादा रहा था। कैथी थरथर काँप रही थीं। उन्होंने पूछा, ''यह क्या है???'' मैंने साँस रोककर कहा, ''यह वही परिस्थिति है जिसको लिखा नहीं जा सकता।''

स्टडी अब्रौड की यह बात मैं कभी न भूलूँगा कि अलीगढ़ में क्लास से पहले, मेरी एक छात्रा मेरे पास आई और ज़िद करने लगी, ''मैं उस घर में नहीं ठहरूँगी जहाँ आपने मुझे ठहराया है, और मैं आपकी बात नहीं मानूँगी।''

मैंने जब सख़्ती दिखाई तो वह फूट-फूट कर रो पड़ी, और कहा, ''जो कमरा होस्ट परिवार ने मुझे दिया है, वह बहुत छोटा और बंद है।''

मैंने कहा, ''यदि तुम ज़िद करती हो तो ठीक है, क्लास के बाद, मैं और जॉन तुम्हारे कमरे को देखने जाएँगे।''

बाद में हम उनके घर गए, कमरा देखा, वास्तव में बहुत छोटा था और एक अजीब सी घुटन और गोबर की दुर्गन्ध सी थी। मैं पाँच मिनट भी उस कमरे में न ठहर सका, और मैंने कहा, ''कल क्लास में सामान लेकर आना।''

मैंने उसकी व्यवस्था एक और घर में कर दी थी जो बहुत धनवान् परिवार था, जिनके यहाँ कारें और ए.सी. थे। दूसरे दिन मैंने उस छात्रा से कहा, ''इस कक्षा के बाद, मैं तुम्हें नए होस्ट के घर में छोड़ने जाऊँगा। उनकी गाड़ी बाहर है। तुम्हारा सामान कहाँ है?''

वह बोली, ''मैं सामान लेकर नहीं आई, मैं उसी घर में ठहरूँगी जहाँ आपने ठहराया है। मैंने कल रात उनका दूसरा कमरा देखा। वह मेरे कमरे से भी छोटा था, और मेरी वजह वे एक चारपाई पर माँ-बाप तथा तीनों बच्चे लेटे थे, और एक दूसरे को पंखा झल रहे थे। और बीच-बीच में रात को मेरी खिड़की पर कुछ सुगन्ध स्प्रे भी करते जाते थे। संयोग से मैंने सुबह अपने कमरे की दीवार पर लटका गुलाबी कैलंडर देखा, जिस पर छपा था, ''Love is Everything.'' आज मैं समझी हूँ इस वाक्य का अर्थ। एक रात में बहुत कुछ सीखा मैंने।'' कहकर वह मुझसे लिपटकर रो पड़ी।

फिर आँसू पोंछ कर बोली, ''अब ये लोग मेरे परिवार की तरह हैं। बड़ा अजीब देश है यह, जहाँ जानवरों और इन्सानों के बीच एक घनिष्ठ बंधन है, क्या बिल्ली, क्या चिड़िया, क्या गाय, क्या भैंस, क्या बकरी, क्या कुत्ता, सबसे मिलकर रहता है यहाँ का इन्सान। मैं कल उस परिवार के साथ किसी के घर से एक नेवला लेने जा रही हूँ।''

मेरे हाथों के तोते उड़ गए।

वह बोली, ''एक बात और, यहाँ की माँएँ अपने बच्चों को सीने से चिपटाकर रखती हैं। उनकी माँ मुझे भी सीने से बार-बार लगा रही थीं और बार-बार पूछ रही थीं कि तुम्हारी माँ का फ़ोन नहीं आया? मैंने सोचा, माँ की मोहब्बत की अमरीका में भी कोई कमी नहीं मगर हाँ, हर चीज़ वहाँ साफ़ ज़ाहिर नहीं की जाती और भारत में हर चीज़ हर बात खुली स्पष्ट जैसे भारत में मसाले भरा खाना, तबले भरा संगीत, और आँसू भरी माँ। अमरीका में भी यह सब हैं परन्तु स्पष्ट नहीं करते।''

सोचता हूँ कितना भाग्यवान् हूँ मैं। जिन्हें मैं पढ़ाने आया था, उनका ही छात्र हो बैठा। मैं स्वयं को और अपने भारत को उनकी नज़र से देख रहा हूँ और आज वह भी देख रहा हूँ जहाँ मेरी कभी पहले नज़र ही न गई। अब मैं सोचता हूँ कि बचपन में जो मैं अपने बारे में सोचता था, क्या वह सही था, क्योंकि दुनिया में ख़ुद को देखने का अपना-अपना अलग ही दृष्टकोण है।

नया दोहा सुनिए:

पंछी बैठा पींजरा,मन ही मन में शाद
सारी दुनिया जेल में, मैं ही इक आज़ाद

हर बार भारत से आने के बाद मेरा मन पंछी तुरन्त वहीं वापस उड़ जाना चाहता है।

***

सुजाता के बुद्ध

अनुजीत इकबाल

प्रचंड हवाओं में कितने संस्मरण, कितने स्वप्न, कितने घटनाक्रम तैर जाते हैं और इन सब के बोझ से भारी हवाएँ जब हाँफने लगती हैं तो मन शून्य की अवस्था में पहुँच जाता है।

'धम्म !!!'

कुछ गिरा, मैं चौंक गई। मुड़ कर देखा तो तेज़ हवा के कारण मेरी कोठरी की झाड़ से बनी कपाटी गिर गई थी। आज मौसम भी मेरे मन की तरह ज़्यादा ही व्यग्र और उद्विग्न हो रहा है। रात का तीसरा पहर चल रहा है और मैं गवाक्ष के पास खड़ी बाहर आकाश मंडल को देख रही हूँ। पानी बरस रहा है और मेघ शोभायमान होकर चंद्रमा के साथ अनिर्वचनीय केली कर रहे हैं। मेरी कोठरी में पानी आ रहा है। ज़ोर से बिजली की गर्जना हुई और मैं घबरा गई। अस्सी साल की वृद्धावस्था में ऐसी घबराहट स्वाभाविक है। कोई है भी तो नहीं इस जीवन में अब। यह बादलों का क्रंदन, यह कोलाहल, यह दृष्टि, चारों तरफ पर बिखरा पानी, दम तोड़ चुकी युवावस्था, बुझा हुआ मन, रुके हुए कदम, तम के प्रेतायन, समाप्त हो चुका आलोक और कराहता हुआ क्षितिज, मुझे अतीत की स्मृतियों में ले गए। वह भी एक ऐसे ही रात थी, लगभग पचास वर्ष पहले.....

मैं सुजाता के कक्ष में बैठी हुई थी और बाहर तेज़ बारिश हो रही थी। कहने को उसकी दासी थी लेकिन हमारा संबंध सखियों से कम न था। प्रायः गाँव के लोग इस बात को विस्मय की दृष्टि से देखते क्योंकि उनकी समझ से सुजाता ने मुझे ज़्यादा ही स्वतंत्रता दे रखी थी। आख़िर वह उरुवेला प्रदेश के सबसे संपन्न यदुवंशीय साहूकार अनाथपिंडिक की पुत्रवधू थी और मैं एक क्षुद्र कन्या। मेरा और सुजाता का संबंध इतना प्रगाढ़ क्यों था यह मैं और वह ही समझ सकते थे और जो नहीं समझ सकते थे उनके लिए इससे अंगीकार करना कठिन था।

अनुजीत इकबाल, मकान नम्बर 4, राम रहीम एस्टेट, मलाक रेलवे क्रोसिंग के पास, नीलमथा, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-226002
मोबाइल: 9919906100
ई-मेल: anujeet.lko@ gmail.com

उन दिनों सुजाता को माँ बने हुए लगभग चालीस दिन हुए थे। बड़ी ही दुसाध्य तपस्या की थी उसने। व्रताचरण, यज्ञादि कर्म, उग्र नियम पालन एवं जटिल धार्मिक अनुष्ठान। किंतु अंत में, सुप्पतीत्य नदी के किनारे लगे वटवृक्ष की पूजा अर्चना से उसे मातृत्व प्राप्त हुआ।

सुजाता खिड़की से बाहर देख रही थी। सहसा वह मुड़ कर मेरी ओर देखने लगी। मैं उसके सो रहे पुत्र के पालने के पास बैठी थी।

''पूर्णा, यह चंद्र देख रही हो! कल पूर्णिमा है और यह पूर्णता प्राप्त कर लेगा किंतु कुछ जीवन ऐसे होते हैं जिनमें कभी पूर्णता नहीं आती।'' वह धीरे से बोली। उसके कहने का तात्पर्य मैं समझ रही थी।

फिर गहरी साँस लेकर वह बोली,''सखी पूर्णा, प्रेम में तिरस्कृत मनुष्य जब बंधन की मर्यादा भूल जाता है तो वह प्रतिहिंसा का शिकार हो जाता है। मेरी भी यही व्यथा है। स्वामी मुझसे इस स्तर तक विमुख हो गए हैं कि अब तो कोई सहानुभूति का स्वर भी याद नहीं है मुझे और उनके नेत्रमण्डल से करुणा भी सूख चुकी है।''

सुजाता की क्षुब्ध आत्मा आर्तनाद कर रही थी। वह सदैव ही ऐसी मनोस्थिति में रहती थी।

''अन्नदाता ऐसी मनोवृति को प्रश्रय देंगे कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था।'' मैंने आतुरता से कहा।

सुजाता पाषाण की भाँति खड़ी फिर से बाहर बादलों से घिरे मयंक को निहारने लगी। कुछ क्षण पश्चात् उसकी आह लाल पाषाणों से बनी उसके कक्ष की बेजान दीवारों से टकराकर मौन हो गई। मैं स्तब्ध सब देख रही थी। सुजाता अपने पति के लिए प्राचीन अवशेषों की भाँति ही थी सिर्फ देखने भर की वस्तु। उसका अस्तित्व यही था। उसके स्वामी के कठोर व्यवहार के कारण वह जीवन से उदासीन हो चुकी थी। जीवन प्रवाह भी कब अवास्तविक आकांक्षाओं में बाँटा जा सकता है?

सुजाता की आहें अब अश्रु धारा में परिवर्तित हो चुकी थीं। वर्षों से छिपी व्यथा सहस्त्र आवरणों को चीरकर निर्धुम अग्नि की तरह सुलग रही थी। वह मूर्तिवत् खड़ी गवाक्ष से दूर दूर तक फैले सन्नाटे का अनिमेष दृष्टि से अवलोकन कर रही थी।

फिर अस्थिर स्वर में बोली,''मेरे प्रेम और समर्पण पर आघात हुआ है और मैं जर्जर हो चुकी हूँ। दम तोड़ती आशा के साए में घुट रही हूँ, पूर्णा। जीवनपर्यंत आत्मा की परतों में छिपा घाव फूटकर बहता रहेगा।''

मुझे लगा जैसे उसकी आत्मा के रुदन का स्वर उसके भवन, चरागाहों और बाहर झील में खिले नीलकमलों से पछाड़ खाकर वापस उसी के पास आ रहा है। बाहर वर्षा का जल तरंग अब धीमा हो रहा था।

मैंने बात बदलते हुए कहा,''याद है ना कल पूर्णिमा है? खीर-अर्पण करने वटवृक्ष के स्थान पर जाना है।''

''हाँ, याद है। तुम प्रातःकालीन प्रबंध कर आना वहाँ जाकर। फिर मैं तुम्हारे साथ खीर लेकर चलूँगी।''

मैं उस से आज्ञा लेकर उसके कक्ष के बाहर जाने ही वाली थी कि उसका पुत्र नींद से जाग गया। सुजाता जैसे स्वप्नलोक से बाहर आ गई। तेज़ कदमों से वह उसके पालने की तरफ बड़ी और उस पर वात्सल्य की वर्षा करने लगी।

मैंने आगे बढ़ कर उसका हाथ थामा और बोली,''मैं प्रयास करूँगी सुजाता कि तुम सदा प्रसन्न रहो।''

''इतने असंभव को संभव करोगी?''

''आशा में बहुत शक्ति है।''

''जिस आशा को अंधकार लील चुका है उस आशा की आस रखना भी व्यर्थ है।'' अपने पुत्र को सहलाते हुई वह बोली।

मैं भारी मन से वापस मुड़ी और अपनी कोठरी की तरफ चल दी। सुजाता के भवन की बाहरी दीवार के साथ हम सब दास, दासियों की कोठड़ीयाँ पंक्तिबद्ध बनी थीं।

अगली सुबह मैं सूर्योदय के पूर्व ही उठ गई। क्योंकि अपनी स्वामिनी एवं सखी के कार्यसाधन को मैंने अंगीकार किया हुआ था, फिर शिथिलता कैसी? आकाश साफ था एवं मेघ छंट चुके थे। अरुणोदय काल में देव निमित्त कार्य करने का आनंद ही अपूर्व है। मैं स्नानादि से निवृत होकर तैयारी में लग गई। भवन के अंदर ही बने सरोवर से मैंने एक नीलकमल लिया और झाड़ लेकर जंगल की तरफ निकल गई। वह जंगल विशाल क्षेत्र में फैला था और हमारे गाँव एवं सुप्पतीत्य नदी को विभाजित करता था। रास्ते के दोनों ओर घने वृक्ष खंड थे। रात को वर्षा की वजह से गड्ढों में पानी भरा हुआ था। उस दिन एक अलग सी ताज़गी थी हवा में। एक शीतल हवा का झोंका मुझे दुलारता, सहलाता हुआ आगे निकल गया। प्रकृति अपने आप में मौखिक है। मुझे आश्चर्य हुआ कि मनुष्य प्रकृति के वार्तालाप से इतना अनभिज्ञ कैसे रह सकता है? मैंने यूँ ही विस्तृत आकाश की ओर देखा तो सुंदर मेघ विलक्षण रूप-रेखा धारण किए हुए थे, मानों हंस नदी में क्रीड़ा कर रहे हो जैसे। पेड़-पौधे उन्मत्त खुमारी में झूम रहे थे और उनसे लिपटी लताएँ जैसे अलसा रही हों। दूर से कोयल की आवाज़ आ रही थी-कुहू कुहू, वह एक उदासीन ही सही लेकिन अत्यंत सुखप्रद ध्वनि थी। बूढ़ी कोयलें कितना अच्छा गाती हैं। रास्ते की सारी शिलाएँ कस्तूरी मृगों के बैठने के कारण सुगंधित थीं।

अंततोगत्वा, मैं स्थान तक पहुँच गई जहाँ वटवृक्ष का टीला था। मैंने नदी के शीतल जल से पात्र भरा और टीले के ऊपर चढ़ गई लेकिन यह क्या? वहाँ कोई ध्यानस्थ देव पहले से ही विराजमान था। कृषकाय शरीर, श्वेत वर्ण, घुँघराले बाल मानों साक्षात् देवराज बैठे हों। उनका स्कंदरूप तेज सूर्य से भी प्रबल था। मेरी समझ से वह वृक्ष-देव थे। ऐसा रूप यौवन या तो किसी राजकुमार का हो सकता था या फिर किसी देव का।

मैं इतनी भयभीत हो गई कि जल का पात्र, नीलकमल एवं झाड़ मेरे हाथों से गिर गए। काँपते हुए पैरों से मैं वापस भागी। गिरती और सँभलती मैं सुजाता तक पहुँची। मेरा बदन थरथरा रहा था। कंपकंपी छूट रही थी। मुझे इस अवस्था में देखकर सुजाता भी अचंभित हो गई।

''क्या हुआ पूर्णा? तैयारी कर आई?''

''वहाँ मत जाना....वटवृक्ष के पास... मेरा कहना मानों ...।'' मैं घबराहट में बोल रही थी।

सुजाता का मन आशंका से भर गया।

''किन्तु, हुआ क्या?'' वह व्याकुल होकर बोली।

मैंने सारा वृत्तांत उसको सुनाया किंतु डरने की बजाय वह मुस्कुराई और बोली,''

पगली, इसमें भयभीत होने की क्या बात है? वृक्ष-देव स्वयं मेरे संकल्प की पूर्ति के लिए आविर्भूत हुए हैं। मेरे उपास्य के प्रति मेरा अनुराग सार्थक हुआ है। चल, चल अति शीघ्र चल। कहीं विलंब ना हो जाए।''

सुजाता ने खीर से भरा स्वर्ण-पात्र एक बड़े से थाल में रखा जिसमें फूल, फल अक्षत और विभिन्न द्रव्य जो पूजा निमित्त तैयार किए हुए थे रखे और बहुत सावधानी से उसने यह सब उठाया। अपने पुत्र को कुंडलकेसि नाम की दासी के संरक्षण में छोड़ वह मेरे साथ चल पड़ी। सारा रास्ता हमनें कोई बात नहीं की। सुजाता शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँच जाना चाहती थी।

जंगल को पार कर हम दोनों उसी स्थान पर पहुँच गईं जहाँ वह देव अभी भी आँखें बंद किए बैठा था। सुजाता की दृष्टि उस पर पड़ी और उसके कदम वहीं रुक गए। वह निरंतर उसको देख रही थी। उसकी दृष्टि में थोड़ा प्रेम, थोड़ी श्रद्धा, थोड़ी व्यग्रता, थोड़ी विस्मयता एवं थोड़ा वात्सल्य नज़र आ रहा था। मुझे सुजाता के मुख पर अनेक भाव एक साथ नज़र आ रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे वह उस परम देव को देख अपने जीवन के किसी विस्मृत छोर का अवलोकन कर रही थी। उस देव का रूप ही इतना मनोग्राही था।

सहसा, कुछ क्षणों के बाद वह धीरे-धीरे पग बढ़ाती उस देव के समीप चली गई। मैं विस्मित सी वहीं कुछ दूरी पर खड़ी सब देख रही थी। सुजाता उसके समक्ष बैठ गई और उसको पुष्पांजलि दी। वह देव ध्यानमग्न थे।

सुजाता कुछ रुक कर बोली,''आर्य प्रणाम स्वीकार करें।''

उस देव ने अपने नेत्र खोले और सुजाता की ओर दृष्टिपात किया। उन नेत्रों की प्रखरता एवं दीप्तता का बखान करना शब्दों से बाहर था। ऐसा लग रहा था जैसे सहस्त्र-दल कमल खिलें हो। उन नेत्रों में दोनों लोकों की स्थिरता एवं विरक्ति थी।

मेरी व्याकुलता बँध नहीं रही थी। एक बात तो स्पष्ट हो चुकी थी वह कोई देव नहीं मनुष्य ही था। सुजाता भी निर्भीक होकर उसके समक्ष आसीन थी और उसके नेत्रों में झाँक रही थी। फिर धीरे से सुजाता ने खीर का पात्र उस तेजस्वी के समक्ष अर्पण किया।

''इसको ग्रहण करें आर्य।''

उस परम तेजस्वी ने अपनी दृष्टि पात्र पर डाली और कुछ क्षण केवल उसका अवलोकन किया। अंत में, हाथ बढ़ाकर पात्र सुजाता से ले लिया और खीर खाना शुरू कर दिया। ज्यों-ज्यों वह खा रहा था उसके चेहरे पर तृप्ति के भाव आ रहे थे। शायद वह कई दिन से भूखा था। खीर समाप्त करके उस तेजस्वी ने पात्र सुजाता को दिया और विरक्त भाव से उसको देखने लगा।

चुप्पी तोड़ते हुए सुजाता बोली,''आर्य, अपनी धारणाओं में, ईश्वर की जो अनुकृति मैंने बनाई हुई थी आप साक्षात् उसका स्वरूप हैं। आज आपने मुझे कृतार्थ किया।''

यह सुनकर उस धीर-गंभीर तेजस्वी के चेहरे पर हल्की मुस्कुराहट आई और वह मधुर स्वर में बोला,''मैं तृप्त हुआ देवी। एक दिन अवश्य मैं आप के पास आऊँगा।'' यह कहकर उसने अपने कमलनयन फिर से बंद कर लिए।

सुजाता ने उसको पुनः प्रणाम किया और बोली,''जैसे मेरी मनोकामना पूर्ण हुई आपकी भी पूर्ण हो, आर्य।''

तत्पश्चात्, वह मेरे पास लौट आई और वापस चलने का इशारा किया। सुजाता का चेहरा भी दीप्त हो रहा था। उसके भाव समझ से बाहर थे। वह विकल, प्रफुल्लित, अधीर और चंचल दिखाई दे रही थी। हम दोनों ने गाँव की ओर चलना शुरू कर दिया। चलते चलते अनायास वह रुकी और एक पारिजात के वृक्ष के नीचे बैठ गई। श्वेत वस्त्रों एवं स्वर्ण आभूषणों में आज वह स्वर्ग की अप्सरा जैसी प्रतीत हो रही थी। उसका मुख इतना दीप्तिमान कभी न लगा था मुझे। सुजाता को मैंने प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा।

''पूर्णा, एक सत्य को स्वीकार किए बिना छुटकारा नहीं।''

''कौन सा सत्य सखी?''

''उस सन्यासी को देख मेरे अंदर कुछ बिखरता गया, कुछ जुड़ता गया। मैंने कुछ खो दिया, कुछ संचित कर लिया। मेरे अंदर समर्पण की सरिता फूट पड़ी है, जो अपने सरित्पति को मिलने के लिए आतुर है। वह तेजस्वी एक ऐसा संगीत दे गया है कि मेरे थके हुए आहत पाँव गतिशील हो गए हैं। उसके दिव्य आभा- मंडल में स्नान कर मैं रोशनी से भर गई हूँ। मैंने पथ पा लिया है। वह एक इंद्रधनुष था और मैंने सातों रंग पा लिए हैं, केवल उसके दर्शन मात्र से ही।''

वह अविरल बोले जा रही थी।

''सुजाता, लेकिन वह विरक्त साधु...''

मेरी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि वह बीच में टोक कर बोली,'' स्त्री-पुरुष का प्रेम केवल लौकिक नहीं अलौकिक स्तर का भी तो हो सकता है। ब्रह्म-दर्शन, नियामक धर्म की रचना इसी आकर्षण की स्वीकृति के आधार पर हुई है।''

मैंने मुस्कुराकर उसको देखा।

फिर वह बोली,''मेरे नीरस जीवन ने उसके नेत्रों की भव्य कक्षा में अमृत पा लिया है। तुमने सुना? वह जीवन में कभी मेरे पास आएगा। अब तो यह जीवन उसी की प्रतीक्षा में कटेगा।''

तत्पश्चात्, सुजाता ने खीर का जूठा पात्र उठाया और किनारों पर लगी बची हुई खीर को ग्रहण किया। मैं कुछ भी समझने की चेष्टा ना करके केवल इन क्षणों की साक्षी हो रही थी। सत्य ही तो है अनुराग की मधुरता सौम्यता एवं मृदुता जब अंतः करण से प्रवाहित होती है तो सुप्त भावनाएँ अंगड़ाइयाँ लेने लगती हैं आँखों में, स्वप्न जाग जाते हैं और दमित इच्छाएँ पंख लगाकर आकाश में विचरण करने लगती हैं।

बाहर से कोयल के बोलने की ध्वनि आई तो मेरी तंद्रा भंग हुई। बादल छंट चुके थे। अरुणोदय होने वाला था। पंछी कलरव कर रहे थे। पचास वर्ष पहले का वह दिन आज भी स्मृति में कितना स्पष्ट था। कालांतर में पता चला, उसी रात उस तेजस्वी को अनंत का ज्ञान प्राप्त हो गया था। अस्तित्व ने उसे बुद्धत्व का रसायन दे दिया था। महाआनंद घटा था उसको और उसने पूर्णता प्राप्त कर ली थी। सुजाता की खीर ने उसको अस्तित्व से एक कर दिया था। केवल इतना ही नहीं अपने दिए वचन को पूर्ण करने वह सुजाता से मिलने भी आया था अपने शिष्यों के साथ। इसके बाद सुजाता ने जीवन के उत्तरार्ध में साकेत के एक मठ में उससे दीक्षा ली और समस्त ऐश्वर्य का त्याग करके तपस्विनी बन गई। संसार के लिए वह तपस्वी ''गौतम बुद्ध'' थे लेकिन मेरे लिए ''सुजाता के बुद्ध''।

***

कविताएँ

विशाखा मुलमुले की कविताएँ

प्रेम की ज्यामिति

हम दोनों चल रहे थे
सीधी रेखा पर क्रमवार,
एक लुभावना मोड़ आया,
और वह समकोण हो गया।

खड़ी रही मैं वहाँ बरसों,
हाथों में मनकों के वर्तुल लिए,
आयत के स्वरों को मंत्रित किए,
कि शायद,
तीन समकोण के बाद बनेगा आयत।

पर तुम्हें तो बढ़ना था,
सो तुमने समकोणों की
सीढ़ियाँ बनाई,
मैं उसी जगह पर न्यूनकोण हो
त्रिभुज बन आई।

कालांतर में मेरी परिधि में
तुमनें कई चक्र लगाए
पर मेरे केंद्र के सम्मुख
तुम कभी न ठहर पाए
दूर खड़े मेरे आलय को देख
बस यही बुदबुदाए कि,
''शिखर दर्शनम् पाप नाशनम''
***

चयन प्रक्रिया

चावल चुनने की प्रक्रिया में
हम चावल नहीं चुनते
चुनते हैं उसमें से कंकड़

इसी तरह का बर्ताव हम
अन्य अनाजों के साथ भी करते हैं
कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं

यही आदतें कब बन जाती हैं हमारा स्वभाव
हम बूझ नहीं पाते हैं
आहिस्ता - आहिस्ता
सुख - दु:ख की थाली से हम
चुनने बैठते हैं सुख
और दु:ख चुन लेते हैं।
***

रसायनशास्त्र

असुरक्षित रसायन बिना किसी उपचार के
तज दिया जाता कारखानों से जीवनदायिनी नदी में
पानीदार मछलियाँ तड़प कर तजने लगती श्वास

इसी तरह भावनाविहीन कई मशीनी मानव भी
गाहे बगाहे उगलते रहतें मुख से अपने शब्दों के रसायन
आबदार कई व्यक्तित्व आते रसायन के चपेट में
कभी - कभी तो रसायन इतना सांद्र
की आँख का पानी भी न कर पाता इसे तनु

पर विज्ञान ही देता है अपाय से बचने के उपाय
मिलता वहीं कहीं से ज्ञान कि,
रसायन गिरे शरीर पर या ज़मीन पर
या कहें की ज़मीर पर
और बचाना हो जीवन
तब तुरन्त उस रसायन पर मिट्टी डालो।
***

जीवन का रागरंग

भोर की
आहट के कुछ क्षण पूर्व से ही
सुनाई देने लगता है पक्षियों का कलरव
जैसे दम साध के बैठे हो वे रात भर

जैसे मायके में मिली हो दिनों बाद पक्की सहेलियाँ
जैसे दो विलग शहरों में बसी बहनों के फ़ोन की घंटियाँ
वे बतियाती हैं रोशनी के मिलते ही
वे गपियाती हैं बालकनी में फूल के खिलते ही
बीच -बीच में सुनाई देता है उन्हें
गृहस्थी का गुंजन
याद आता है उन्हें दानें ढूँढ़ने का उपक्रम

और बुद्ध-सी मुस्कान लिए वे लौटती हैं सदन की ओर
गुनते हुए कि,
मन के तार को न कसना इतना अधिक
की वर्तमान का दम घुट जाए
न ढील देनी है इतनी कि अतीत में ही गुम हो जाए !
***

पुनर्नवा

घास नहीं डालती कभी हथियार
उग ही आती है पाकर रीती ज़मीन
कुछ घास की तरह ही होते है बुरे दिन
जड़े जमा ही लेते हैं अच्छे दिनों के बीच

काश ! मुस्कान भी होती घास की तरह जीवट
और मन होता काई समान
पाते ही सपाट चेहरा खिल उठती
हरियल मन उगता आद्र सतह में अनायास

प्रेम में होता है हृदय निश्छल, पनीला
उमगते है द्रव बिंदु सुबहों - शाम
वे गुज़रने देते हैं अच्छे / बुरे दिनों के कदमों को
बनकर घास का विस्तृत मैदान

मरकर अमर होती है घास
जब चिड़िया करती उससे नीड़ निर्माण
पुनर्नवा हो जाती तब प्रीत
धरती से उठ रचती नव सोपान।
***

विशाखा मुलमुले, द्वारा अनिकेत शर्मा,
202 सनफ़्लावर पार्क, स्प्रिंग सोसायटी,
पोरवाल रोड, लोहेगाँव, पुणे, महाराष्ट्र
411047
ई-मेल:vishakhamulmuley@gmail.com

डॉ. अतुल चतुर्वेदी की कविताएँ

एक भरोसेमंद मित्र के नाम

इन दिनों मित्र भी आते हैं
मौसमी पंछियों से
उनकी पसंद नापसन्द
प्रसन्नता और नाराज़गी का कुछ पता नहीं चलता
समय की चक्रवाती मार से
बहुधा डैने छुपा बैठ जाते हैं
व्यस्तता का कवच ओढ़
मित्रों पर नहीं बचे हैं ठहाके
न वैसी उदारता, न फुर्सत
कभी तो क्लांत दिखते हैं
नौकरी के बोझ से
कभी आहत किसी रोग से
कभी घायल ज़माने की तेज़ धार से
कभी ध्वस्त भार्या की बौछार से
सच्चे मित्रों से विरल होते इस संसार में
आप हैं बेहद खुशनसीब
यदि आप पर बचा है एक भी सहृदय मित्र
आपकी घण्टों प्रतीक्षा करता हुआ
बिना लादे एहसान की गठरी
आपका किया धरा पोंछता हुआ
काला टीका लगाइए अपनी मित्रता को
दुआ कीजिए कि आपको ज़रूरत नहीं दैवीय कृपा की
आप पर है वो लाठी
कि आप लाँघ सकते हैं एवरेस्ट भी
हाँक सकते हैं दुर्दिनों के चौपाए भी
चल सकते हैं निशंक
समय के खिलाफ दूर तक निर्भय।
***

गोदान, एक पुनर्पाठ

उनके उद्घोष पर यकीन कर
चैन भरी नींद सोया हल्कू
न करवट ली, न खाँसा
न उठकर झाँका कच्ची निद्रा में
खेतों की तरफ
उनकी योजना की भनक पा
बहुत खुश हुआ गोबर
काफूर हुआ गुस्सा
बेरोज़गारी का दंश ज़रा ठिठका
बैंकों से कर्ज़ ले कृतज्ञ था मातादीन
तिरने लगा उम्मीद भरे अनंत में
टटोलने लगा पासपोर्ट
जब सब खुश थे बेपनाह
तो खुश क्यों नहीं है झुनिया
कहाँ है जगह उसके प्रेम के लिए
हिदायतों और जयघोषों के बीच
जातियों, गोत्रों और अल्ल से भरे
अल्लटप्प समय में
टकटकी लगाए
सहमी खड़ी देखती है
मालती का रुपहला दैहिक वैभव
महिला विकास के बहुरंगी पट पर।
***

एक खाँटी शहर के नाम

एक

एक खाँटी शहर में
इंसान रोबोट नहीं लगता
साँसों की आवाजाही सुनी जा सकती है बेसाख्ता
बची रहती है सद इच्छा
पहचानने पर ठिठकने, बतियाने की
नकली हँसी नहीं हँसते ये शहर
न परोसते हैं दिखावटी शिष्टाचार
वहाँ हर रास्ता जाता है
दिलों की सुरंग से
और बहता रहता है रगों में सदियों
संस्कृति की खुशबू की तरह।
***

दो

एक ठेठ खाँटी शहर में
नहीं होतीं महानगरीय चालाकियाँ
न मुँह चिढ़ाता समय
न ठौर-ठौर खड़े अवसरवादी मित्र
न रिश्तों के बीच व्यापार
न प्रेमी जोड़ों का छलकता व्यापार
कलात्मक झरोखों से झाँकते हुए
अल्हड़ तेज़ हवाओं के बीच
सेंध लगाते हैं यह शहर
आपके बचपन में
बचाए रखते हैं आपकी निश्छलता
सँजोए रहते हैं ताज़गी
रेतीले खुरदुरे यथार्थ के बीच
किसी नए सफर के लिए।
***

इन दिनों भाषा

इतना टोटा है सभ्य भाषा का
बड़े से बड़े भद्रजन पर
कि लड़खड़ाने लगता है
विरोधियों के लिए दो भले शब्द बोलते ही
राजनीति ने बना दिया है उसे वेश्या
मीडिया ने बना दिया है जोकर
पढ़ो और हँसो पेट पकड़ कर
साहित्यिक कहते हैं
भाषा हो गई है खंडहर
चुरा लिए हैं जिसके अमूल्य प्रस्तर खंड बाज़ार ने
उसमें ज़रूरत है नए अर्थ भरने की
उसे फैलाने की
और जन-जन तक झरने की
किसे फुरसत है भला ऐसी भाषा रचने की
जिसमें आपके हमारे आँसू और धड़कने हों
जो सपने नहीं आग उगलती हो
जो नवचेतना संपन्न इंसान रचती हो
जिस पर हो विचारों की ऊर्वरा संपदा
और सलीका कहने -सुनने का
एक ऐसी भाषा जो समझ लें फूल भी
और जिसे सुन महक उठे धरा का सुप्त मन भी
किस संस्कार कूप से खोजें हम ऐसी भाषा
कहाँ होगें उसके हिज्जे
कहाँ होंगे उसके सुनहरे अर्थ
कौन बोलेगा उसे इस घृणा से घटाटोप कठिन समय में.....।
***

डॉ. अतुल चतुर्वेदी, 380, शास्त्री नगर, दादाबाड़ी,कोटा 324009 राजस्थान
मोबाइल:94141 78745
ई-मेल: achatchaubey@gmail.com

प्रगति गुप्ता की कविताएँ

चिरस्थाई संग

मिट्टी के प्रेम में पड़कर
वृक्ष यूँ समर्पित हुए
उसको अपना सर्वस्व सौंप
कर्म पथ पर अग्रसर हुए.....
सहेजकर, उनकी जड़ों को
अति दुलार,मिट्टी करती रही...
वृक्ष के दिए अनगिनत
उपहारों से उर्वरा हो
उनको ही सींचती रही....
दूजी ओर शाखें हों,या हों
अनगिनत फूल पत्ते या छाल
लदकर वृक्ष पर ही
शृँगार पाते रहे..
जिन्हें अर्पित कर
कर्त्तव्यों की बलिवेदी पर
ठूँठ बन वृक्ष पतझर में फिर से,
सावन की आस पालते रहे....
हर नई कोपल हर नई कली,
उनका शृँगार बनती रही..
समय पूर्ण होने पर
एक-एक कर
उससे विलग होती रही...
एक- एक घाव से जुड़े
निशाँ को स्वयं में,
सहेज -सहेजकर रखते रहे...
जन्म लेने व बिछड़ने से
हुई पीड़ा को
अपने ही अंतर्मन में
स्मृति बना सहेजते रहे....
उम्र का पूर्ण होना कहे
या उनके करते रहने का अंत
जिसमें गिरे भरभरा कर
एक दिन वही वृक्ष
लेने को चिरविश्राम
कर समर्पित स्वयं को
अपनी चिरसंगिनी मिट्टी में,
जहाँ था दोनों का चिरस्थाई संग.....
***

दिल का पालना

माँ जब बच्चों को अपने
दिल के झूले में बैठाती है
उनकी मीठी प्यारी बातों पर कर दुलार,
दिल के पालने को झुलाती है...
जायों की छोटी-छोटी बातों पर
माँओं की आँखों का बरस जाना
समझो सारी अलाओं बलाओं पर
डाल पानी बहा देना ...
हो अगर कोई
कमज़ोर अंश उसका जना
करके ख़िदमतें रात दिन उसी की,
रातों को भी दिन बना लेना
और अपने जीते जी ख़ुद को हारकर
उसको जीने के संबल दे देना..
सारी की सारी दुनिया से
कभी उसी अंश के लिए लड़ जाना
सभी सुखों को त्याग
संजीवनी बन उस दुर्बल की
अपनी ज़िंदगी को होम कर देना..
नहीं होता कुछ भी बहुत आसान
जनक बनना तप ही है शायद
और इसी तप की आहुतियों के लिए
धीमे-धीमे होता जाता है
उनके जीवन का दान....
***

मैं मिलूँगी

मैं फिर मिलूँगी तुमसे कहीं
यह मेरा, अन्तर्मन कहता है....
तेरी मेरी आँखों की नमी में
मैंने, हमको
साथ - साथ बहते देखा है.....
तेरी बातों
तेरे कहे शब्दों के बीच के
अल्पविरामों में
मैंने स्वयं को ठहरते हुए
महसूस करके देखा है....
कुछ अव्यक्त रहना चाहता है
पर मुझे और तुझे ही
क्यों व्यक्त होता है....
सुनते हैं ऐसा तो
दो छूटी रूहों के
मिलने पर ही, हुआ करता है
मैं मिलूँगी तुमको किसी रोज़ -
यह मेरा अन्तर्मन कहता है....
***

डेरा

तेरे दो नयनों में
ठहरे शब्दों ने
मेरे नयनों में
डेरा जमा लिया...
मैंने भी, मूँद कर पलकों को
उन्हें वहीं, बस जाने दिया....
कब तेरी ख्वाहिश
मेरी ख्वाहिश को
अन्त: तक छू गई...
यह मेरी,
तेरे नयनों में ठहरी नज़र
मुझे महसूस करा गई,
जाने कैसे होता
नयनों से नयनों का संवाद
ना कोई शब्द ना कोई बात
फिर भी कह लेता मन
एक - दूजे से, मन की बात....
***

इच्छा
तुम ठहर क्यों नहीं जाते
मेरी उस अनंत यात्रा तक
जहाँ सिर्फ हम दोनों हो...
कोई कर्म, हम दोनों से जुड़ा
ना बाकी हो...
एकान्त हो
मैं और तुम, तुम और मैं
उस क्षण में कुछ ऐसे
उस परम में विलीन हो जाए
कि अन्तत: पूर्णता को पा जाएँ...
***

प्रगति गुप्ता, 58,सरदार क्लब स्कीम,
जोधपुर -342001, राजस्थान
मोबाइल: 09460248348
ई-मेल: pragatigupta.raj@gmail. com

अरविन्द यादव की कविताएँ

दृश्य

बड़ी मुश्किल से मिलते हैं आजकल
देखने को ऐसे दृश्य
जहाँ कोई नदी पिला रही हो पानी
प्यासे को, जो तोड़ रहा हो दम किनारे पर
कोई खेत जो ले जा रहा हो अनाज
उस घर तक जहाँ ठण्डे पड़े हों चूल्हे
या कहीं ऐसे हाथ जो बचा रहे हों
सड़क पर दम तोड़ती साँसों व
ठिठुरते फुटपाथ को
राह चलते जब दिखाई देते हैं ऐसे दृश्य
तो जन्म लेती है एक उम्मीद
कि बचा रहेगा जीवन
बची रहेगी धरती।
***

अखबार

आज सूरज के जागने से पहले
किसी ने ज़ोर से खटखटाया दरवाज़ा मेरे कमरे का
मैंने नींद, सोया था जिसके आगोश में
छोड़कर, खोला कमरे का दरवाज़ा
अचानक मैं रह गया अवाक
देखकर उस निर्भय साथी को
जिसके साथ हम रोज़
बतियाते थे, पीते हुए चाय
भय से काँप रहा था उसका शरीर
दिखाई दे रहे थे जगह-जगह स्याह चोट के निशान
इतना ही नहीं, दिखाई दे रहे थे अनगिनत घाव
जिनसे झलक रहा था खून कहीं-कहीं
हिम्मत बँधाते हुए, देकर हाथों का सहारा
उठाकर ले गया कमरे के अन्दर
लेकर के गोद जब पूछा हाल-ए-दिल
वह बोला काँपते हुए लड़खड़ाती आवाज़ में
हत्याएँ कर रहीं हैं साजिश, करने को मेरी हत्या
लुटेरे आतुर हैं लूटने को, मेरी सच की संचित पूँजी
कुर्सियाँ कर रहीं हैं कोशिश, करने को नतमस्तक
अपनाकर, साम, दाम, दण्ड, भेद
क्योंकि मैं नहीं मिलाता हूँ, उनकी हाँ में हाँ
जैसे मिलाते हैं और, बेचकर अपना ज़मीर
इसलिए सब मिटाना चाहते हैं मेरा अस्तित्व
ताकि दबाया जा सके, स्वर प्रतिरोध का।
***

बरस उठती हैं आँखें

आज भी न जाने कितनी बस्तियाँ
बस जाती हैं हृदय में
जब भी सोचता हूँ तुम्हें
बैठकर एकान्त में
आज भी दिखाई देने लगता है
वह मुस्कराता हुआ चेहरा
यादों के उन झरोखों से
जो रहता था कभी आँखों के सामने
आज भी महसूस होती है
तुम्हारे आने की आहट
जब टकराती है पवन
धीरे से दरवाज़े पर
आज भी स्मृतियों के सहारे आँखें
चली जाती हैं छत के उस छज्जे तक
जहाँ दिन में भी उतर आता था चाँद
शब्दातीत है जिसके दीदार की अनुभूति
आज भी हृदयाकाश में जब
उमड़-घुमड़ कर उठते हैं स्मृतियों के मेघ
जिनमें ओझल होता दिखाई देता है वह चाँद
तो अनायास ही बरस उठती हैं आँखें।
***

कविते

हे कविते
मुझे भा गईं हो तुम
तुम्हारी खूबियाँ
और उससे भी बढ़कर
तुम्हारा अन्तहीन सौन्दर्य
तुमसे जुड़कर, जुड़ जाऊँगा मैं
उन संवेदनाओं से
जिनका होना बनाता है
एक मानव को मानव
इतना ही नहीं
निश्चित ही अपनाकर तुम्हें
आ जाएगी मेरे भावों में
उदारता व उदात्तता
तुम्हें सोचकर
नहीं होगी अनुभूति उस दर्द की
जो कसक उठता है सीने में
सोचकर बिछुड़े मनमीतों को
तुमसे नहीं मिलेगा धोखा
उस तरह
जैसे कि देतीं है अक्सर
प्रेमिकाएँ-प्रेमियों को
क्योंकि गवाह है अतीत
तुम जिनकी, जो तुम्हारे, ताउम्र
मरने के बाद भी किया जाता है याद
तुम्हें उनका, उन्हें नाम लेकर तुम्हारा
इसीलिए हे कविते
अब जीना चाहता हूँ मैं
सिर्फ और सिर्फ
तुम्हारा होकर।
***

ऊँचाइयाँ

ऊँचाइयाँ नहीं मिलतीं हैं अनायास
पाने के लिए इन्हें
बनाना पड़ता है स्वयं को लोहा
बनाना पड़ता है स्वयं को सोना
रक्त रंजित होना पड़ता है माटी बन,
भिड़कर शोलों से
करनी पड़ती है जबरदस्त मुठभेड़,
पत्थरों से
क्योंकि ऊँचाइयाँ नहीं होती हैं
ख्वाबों की अप्सराएँ
ऊँचाइयाँ नहीं होती हैं
महबूबा के गाल का चुम्बन
ऊँचाइयाँ, ऊँचाइयाँ होती हैं ठीक वैसे ही
जैसे आकाश के तारे और मुट्ठी में रेत।
***

अरविन्द यादव, मोहनपुर, लरखौर, जिला - इटावा (उ.प्र.)
पिन -206103
मोबाइल:9410427215
ई-मेल: arvindyadav25681@gmail.com

अनिता रश्मि की कविताएँ

पेड़

पेड़
जो गया है बच
विकास के रास्ते में बाधा डाल
अकेले वहाँ खड़ा है
खूँटे सा
जड़ें गहरी जमाए हुए

जान गया है अब
उसके भी दिन निकट हैं
आँधी में वह भी
उखड़ जाएगा ...
नहीं !....
उखाड़ दिया जाएगा

वह अकेले ही
अपने एकाकीपन से
लड़ता हुआ
मौत की अंतिम आहट सुन रहा
इंतज़ार करता हुआ
.....कब ?
***

पिता : दो रंग

एक

पिता के खुरदुरे रौबीले चेहरे के पीछे
छिपा है एक कोमल चेहरा
जिसे सिर्फ बेटियाँ ही
पहचान पाती हैं

पिता बेटियों के लिए हैं
होते हैं ऐसे आदर्श
जो बेटियों का
रूप गढ़ते हैं
उनके हाथ के झूले में झूल
पा जातीं वे सारी दुनिया

विदाई के अश्रु वे नहीं बहाते कभी
घोंघे के कठोर खोल के अंदर
दबा रह जाता उनका मन
लेकिन सबसे अधिक बेटी की
आड़ी-तिरछी चपाती और नमकहीन
दाल को वे ही याद करते हैं

पापा की प्यारी, पापा की दुलारी
कुछ माँ से ज़्यादा उनमें ढलती हैं
माँ की सीख पोटली में
पिता का दुलार दिल में रखतीं हैं
ये माता की नहीं
पिता की बेटियाँ होती हैं

पिता के मौन से जगतीं
पिता के मौन में सोती हैं
फिर भी कहाँ खुलते हैं
पिता अपने बेटे-बेटियों के समक्ष
मौन में घुला उनका गीला मन
न देख ले कोई इसी कोशिश में
वे हरदम हर पल रहते हैं

ऊपर से खुरदुरे गुस्सैल,
रौबीले निष्कंप
भीतर से कंपित,
मुलायम
पिता ऐसे ही होते हैं।
***

दो

पिता थे हमारे बड़े हँसमुख
बड़े मिलनसार
गाँव की गइया से लेकर
मालिन चाची, उस्मान चच्चा तक सबसे
बड़े स्नेह से रहे मिलते

राह चलते भइया से ठिठोली
दीदियों से मीठी बोली
उनकी पहचान बन गई थी
धोबी चच्चा, धोबिन चाची भी
कितने जुड़े थे उनसे
घर आए मेहमान भगवान् की
खातिरदारी में माँ संग जूझ पड़ते
पिता हर की तकलीफ़ में कूद पड़ते
अनजाने में डालते जा रहे थे वे
हमारे भीतर भी प्रेम-स्नेह का बीज
सीखों की वह अद्भुत खाद

स्वार्थ की बाँझ धरती से
उन्हें कोई स्नेह न था
नि:स्वार्थी पिता उसे खोद-खादकर
उर्वरा बना ही डालते थे
फिर कितने रिश्तों की
लहलह लहलहाती फसलें
लहराती रहतीं हमारे घर-द्वार पर

कभी उन्हें किसी को खाली हाथ
लौटाते देखा नहीं
पर जब गए खुद तो
दोनों हाथ खाली था
सच कहूँ खाली होकर भी
दोनों हाथ खाली न था

हथेलियों में भरी थी स्नेह बंधन की
भरपूर दौलत जिसे उन्होंने
पूरी ज़िंदगी भरपूर लुटाई थी
और रिश्तों की हरी-भरी
फसल बड़े यत्न से उगाई थी।
***

अनिता रश्मि, 1 सी, डी ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड, पूर्णिमा कॉम्पलेक्स के पास, कुसई, डोरंडा, राँची, झारखण्ड - 834002,
मोबाइल : 9431701893
ई-मेल : anitarashmi2@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे।

-सादर संपादक मंडल

डॉ. शोभा जैन की कविताएँ

सभी इतिहास रचने में लगे हैं

रचने का मोह अच्छा है
पर यहाँ सभी इतिहास रचने में संलग्न
इसी प्रतिद्वंदता में
हर रोज़ युद्धरत आदमी
हिंसक हो रहा है
हिंसा केवल शारीरिक नहीं
मानसिक,शाब्दिक
सभी दे रहे न्योता
अपनी -अपनी शक्ति आज़माने का
कोई किसी को किसी से
कमतर नहीं आँकता
कोई धर्म के नाम पर
कोई राजनीति के नाम पर
व्यवस्था के लचर कानून के नाम पर
अपने-अपने साँचें बनाए जा रहे
समाज को उसी में आकार देने की
पुरज़ोर कोशिश ही नहीं
होड़ -सी लगी है
भीड़ भी अंतत: व्यवस्था की
दास हो ही जाती है
इस प्रतिद्वंद्व में आदमी नहीं मरते
मरती है सभ्यताएँ, संस्कृति
विचार और आशाएँ
जो उनसे रहती हैं,
जो जनप्रतिनिधि बनकर आते
और बाद में स्वयं ही खोखला करते
दीमक बनकर समाज को अब
उन्हें रचना है इतिहास
जाने कितने भूगोल बदल डालेगे वो
कागज़ पर होगी सारी सुविधाएँ
और हम होंगे अगली जनसुनवाई में
सुनवाई होगी एक दिन
और इतिहास बदलेगा।
***

मैं

मैं कोई लघु कविता नहीं,
जिसे दिन रात दोहराया जाए
न ही तुम्हारे जीवन का व्यंग्य
जिसे सुनकर मुदित होते तुम,
ओरों को मुदित करते
न ही तुम्हारे जीवन का छंद
मैं वो प्रसंग भी नहीं,
जो चर्चा का विषय बन जाए
न किसी के जीवन का रंगमंच
जिसे देखने भीड़ जमा हो जाए
मैं महाकाव्य हूँ
जिसे पढ़ पाना,पढ़ कर समझ पाना
किसी के महाकवि होने का प्रमाण है।
***

'स्त्री' 'नारी' 'औरत' 'महिला'

चाहे कितनी भी संज्ञा दे दो मुझे
मेरे अस्तित्व को स्वीकारना सरल नहीं
इनके आशय में स्वीकारना चाहते हो
मुझे 'बंदिनी'
मैं हूँ 'स्वच्छंदिनी'
सुनो पुरुष !
औरत का स्त्रीत्व
उसकी वरीयता ही
तुम्हारी मुक्ति का एक मात्र मार्ग है
तुम अगर प्रतीक्षारत हो
कि मैं मिट जाऊँ या सिमट जाऊँ
जर्जर कर मुझे फिर बनो सहारा
कोई अन्य पुरुष बनकर
तो यह तुम्हारी कोरी कल्पना है
मेरे साहस के अंकुर शूल में फले हैं
मेरे अश्रु जो अब प्रलय बन चुके हैं
मेरे जीवन को लय देंगे
जिसकी प्रतिध्वनि करती रहेगी उपहास
हर उस पुरुष का जो बनता है कारण
स्त्री के दुखों का
चाहे पुकारो किसी नाम से
स्त्री, औरत, महिला या नारी ...
***

प्रेम का भ्रम

लोग पालते हैं अपने भीतर भ्रम
हम भी उन्हीं
'लोगों' के अर्थ में निहित है
'लोग' किसी दूसरे ग्रह के नहीं
जो भ्रम में जीते हैं
भ्रम, अमीरी का, कुछ गरीबी का
कोई सत्ता के भ्रम में
किसी को कुर्सी की आश्वस्ति का भ्रम
कभी -कभी अपने कु-कर्मों में
इंसान होने का भ्रम
इस मिश्रित जीवन की
शुद्धता के भ्रम में
मुझे भी एक भ्रम है
प्रेम की 'सीमा' में
'असीम' प्रेम का भ्रम।
***

प्रकृति की पीड़ा

मनुज की आकांक्षाओं से,
उच्चाकांक्षाओं के तरुवर
वो झाँक रहें मानव मन में
कुछ गहरी चिंता चित्त में पाले
प्रकृति में कुछ नव परिवर्तन
नदियाँ शुष्क, व्यथित हैं निर्झर
धस गए धरा में जल के स्तर
जैसे रुद्र हुआ हो अम्बर
मद में डूबे मानव मन में
पद की छाया, तरु की छाया,
अंतर हो गया है दूभर
पीड़ा प्रकृति की परे रह गई
निकट हुए उत्तेजन के स्वर
प्राणवायु विषपान हुई
दीर्घ आयु अब स्वप्न बनी
क्या प्रकृति करे शृँगार
न सरिता, न पर्वत श्रृंखलाएँ अपार
'अजगर' जैसे जड़ मानस पर
उकेरे प्रकृति पीड़ा के स्वर
क्यों करुणा की कोर नहीं
विवश प्रकृति करे आह्वान
स्वार्थ लोभ में डूबे मानव
अनभिज्ञ हुए क्या सृष्टि चक्र से
कितना अस्थिर है संसार
***

डॉ. शोभा जैन, 'शुभाशीष' 201-A/369
सर्वसम्पन्न नगर, इंदौर,
मप्र 452016
मोबाइल: 9424509155
ई-मेल: idealshobhav@gmail.com

स्पेनिन का दो दिवसीय भव्य साहित्यिक कार्यक्रम

झारखंड के सबसे पुराने और प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान स्पेनिन द्वारा ''डॉ. सिद्धनाथ कुमार स्मृति सम्मान 2018'' सुप्रसिद्ध कथाकार एवं दो चर्चित साहित्यिक पत्रिकाओं ''विभोम-स्वर'' और ''शिवना-सहित्यिकी'' के संपादक सीहोर, मध्यप्रदेश के पंकज सुबीर को दिया गया एवं ''स्पेनिन साहित्य गौरव सम्मान'' वर्ष 2017 के लिए सुप्रसिद्ध बाल साहित्यकार एवं समीक्षक शाहजहाँ, उत्तरप्रदेश के डॉ. नागेश पांडेय 'संजय' एवं वर्ष 2018 के लिए सुप्रसिद्ध लघुकथाकार पुरुलिया, पश्चिम बंगाल के मार्टिन जॉन को दिया गया। स्पेनिन के निदेशक एवं चर्चित नाटककार डॉ. कुमार संजय द्वारा इन सम्मानित साहित्यकारों को सम्मान स्वरूप ग्यारह हज़ार रुपए की नकद राशि, अंगवस्त्र एवं सम्मान पत्र प्रदान किया गया। 21 और 22 सितंबर को झारखंड की राजधानी रांची में आयोजित हुए इस दो दिवसीय भव्य कार्यक्रम में झारखंड के कई प्रबुद्ध साहित्यकारों, विद्यार्थियों एवं शिक्षकों की उपस्थिति थी।

21 सितंबर को अपराह्न 3 बजे से रांची के उर्सुलाइन इंटर कॉलेज सभागार में दूरदर्शन के पूर्व निदेशक डॉ. पी के झा की अध्यक्षता में यह भव्य सम्मान समारोह सम्पन्न हुआ। वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. अशोक प्रियदर्शी के मार्गदर्शन में आयोजित इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में प्राचार्या सिस्टर डॉ. मेरी ग्रेस, विशिष्ट अतिथि एवं मुख्य वक्ता के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. माया प्रसाद उपस्थित थीं।

सम्मानित साहित्यकारों के रचनात्मक जीवन यात्रा एवं उपलब्धियों के संक्षिप्त परिचय के साथ कार्यक्रम की शुरुआत हुई। बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रमों ने इस आयोजन को भव्यता प्रदान की। उपस्थित मंचासीन सम्मानीय अतिथियों द्वारा साहित्यकारों को सम्मानित करने के पश्चात उनकी लेखकीय यात्रा उनके मुख से सुनना अत्यंत सुखद था। मुख्य वक्ता द्वारा साहित्यकारों का परिचय, अध्यक्षीय भाषण एवं आयोजक डॉ. कुमार संजय द्वारा धन्यवाद ज्ञापन किया गया। निर्मला मुंडा द्वारा संचालन किया गया।

22 सितंबर को पूर्वाह्न 11 बजे से स्पेनिन में प्रथम सत्र में डॉ. कुमार संजय की तीन पुस्तकों ''विश्वप्रसिद्ध कहानियों का नाट्य रूपांतर'', ''हर एक फ्रेंड जरूरी होता है और अन्य नाटक'' एवं ''मगरमच्छ की पूँछ और अन्य नाटक'' का उपस्थित साहित्यकारों एवं सम्मानीय अतिथियों द्वारा भव्य लोकार्पण हुआ। साथ ही मार्टिन जॉन का दूसरा लघुकथा संग्रह ''फेसबुक लाइव और ज़िन्दगी का दी एंड'' का भी लोकार्पण सम्पन्न हुआ। रांची विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. जे बी पांडेय की अध्यक्षता एवं कवयित्री मुक्ति शाहदेव द्वारा संचालित इस कार्यक्रम में नाटक मंचन, गायन एवं पुस्तक चर्चा भी हुई। कवयित्री एवं लेखिका सारिका भूषण द्वारा डॉ. कुमार संजय की लोकार्पित दोनों नाट्य पुस्तकों की एवं वरिष्ठ कहानीकार अनिता रश्मि द्वारा लोकार्पित पुस्तक ''विश्वप्रसिद्ध कहानियों का नाट्य रूपांतर'' की समीक्षा पढ़ी गई। कामेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव 'निरंकुश' ने मार्टिन जॉन की लोकार्पित पुस्तक पर कृति चर्चा की।

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में ''रू-ब-रू'' कार्यक्रम के अंतर्गत सम्मानित कथाकार पंकज सुबीर एवं मार्टिन जॉन से उनकी

लेखकीय यात्रा पर एक साहित्यिक परिचर्चा का आयोजन किया गया जिसका संचालन साहित्यकार कविता विकास एवं डॉ. कुमार संजय ने किया। अंत में डॉ. जे बी पांडेय एवं आयुषी जीना द्वारा धन्यवाद ज्ञापन किया गया। कार्यक्रम में झारखंड के कई गणमान्य साहित्यकार एवं संपादक जैसे प्रकाश देव कुलिश, पंकज मित्र, कामेश्वर प्रसाद निरंकुश, प्रशांत कर्ण, संतोष कुमार,वीना श्रीवास्तव,प्रवीण परिमल, रश्मि शर्मा, सत्या शर्मा, संगीता कुजारा,सूरज श्रीवास्तव, शिल्पी, शशिबाला, विम्मी, संगीता सहाय, झिलिक सरकार आदि उपस्थित थे।

***

-सारिका भूषण की रिपोर्ट

पुष्पगंधा के संपादक विकेश निझावन सम्मानित

अम्बाला छावनी के गाँधी मेमोरियल कॉलेज में हरियाणा साहित्य कला मंच की पंजाबी साहित्य सभा के संयुक्त तत्वाधान में कार्यक्रम का आयोजन हुआ; जिसमें हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार विकेश निझावन को मंच द्वारा सम्मानित किया गया। इस कार्यक्रम में डॉ. सुदर्शन गासो तथा डॉ. सिमरजीत सिंह की पुस्तकों का लोकापर्ण हुआ। विकेश निझावन ने पंजाबी में अपनी कविताएँ सुनाकर श्रोताओं को भावविभोर कर दिया।

***

सर्वांगींण विकास में सहायक है पुस्तकें- प्रोफ़ेसर गोविंद शर्मा

उज्जैन पुस्तक मेले के उद्घाटन अवसर पर मुख्य अतिथि, विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर बालकृष्ण शर्मा ने कहा- राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के द्वारा इस आयोजन के लिए न्यास के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा जी का आभार जिन्होंने इस शहर को पुस्तकों से समृद्ध करने या निर्णय लिया। इस आयोजन से निश्चित ही हमारी पीढ़ी का ज्ञानार्जन होगा और वे अपनी क्षमताओं का विस्तार कर पाएगी। पुस्तकमेले निश्चित ही हमारी पठनीय रिक्तता को कम करने में अवश्य सहायक होते है। ऐसी दिशा में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने एक सार्थक पहल उज्जैन में की है।

इसके साथ डॉ. पंकज लक्ष्मण जानी, कुलपति, महर्षि पाणिनि संस्कृत एवं वैदिक विश्विद्यालय ने कहा- इस अवसर पर मैं राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के सभी अधिकारियों का अभिनंदन करता हूँ कि जिन्होंने इस पुस्तक मेले का आयोजन इस धार्मिक व शैक्षिक नगरी में किया।आप के शहर में दिल्ली से चल कर न्यास ने खूबसूरत आयोजन किया है जहाँ एक छत के नीचे लाखों पुस्तक मेले में प्रकाशकों द्वारा प्रदशित की गई है। आज की पीढ़ी का बेहतर विकास करने में पुस्तकें समर्थ है।

पुस्तकमेला की अध्यक्षता करते हुए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,भारत के अध्यक्ष प्रो.गोविंद प्रसाद शर्मा ने बताया- उज्जैन भारत की एक प्रशिद्ध नगरी है। ऐसी कोई पुस्तक नहीं जिसमें उज्जैन का उल्लेख न हो। ऐसे पुस्तकमेला का आयोजन करना यहाँ,हमारे लिए गौरव का विषय है। पुस्तक मेले की उपयोगिता के बारे में कहूँ तो निश्चित ही पुस्तकें हमारे सर्वांगीण विकास

में सहायक है। हम दिल्ली में प्रति वर्ष प्रगति मैदान में अंतरराष्ट्रीय विश्व पुस्तकमेले का आयोजन करते है।हमारा उद्देश्य है कि जन सामान्य तक पुस्तकों को लेकर जाना है। पुस्तकमेले का उद्देश्य यही है कि किताबों को उनके पाठकों तक ले जाया जाए। यह कोई बहुत बड़े मुनाफा का जरिया नहीं है अपितु हम संस्कार विकसित करने में अपना सहयोग कर रहे है। विभिन्न प्रकाशक अपने नए प्रकाशन के साथ आज मेले में नई पुस्तकें ले कर आते है। ताकि पुस्तकों के प्रति उनका अनुराग निश्चित तौर पर दिखाई दें और उनका सम्पर्क सीधे पुस्तकों से हो सकें। पुस्तक संस्कृति का विकास व उन्नयन हो, ऐसी हमारी कोशिश रहती है। हमारी सचल पुस्तक गाड़ियाँ पूरे देश में हमेशा मोबाइल रहती है। हमने कोशिश की है,इस दिशा में हमें आपका साथ चाहिए,वह रचनात्मक भी हो सकता है। पुस्तकों से जुड़िए, वे आपसे जुड़ना चाहती हैं।

इस अवसर पर शहर के सम्मानित अतिथि थे समाजसेवी श्री अशोक सोहनी। उन्होंने कहा- इस आयोजन से निश्चित ही शहर के पाठकों की कल्पना का इजाफा होगा। न्यास की पुस्तकें जहाँ हमें वैचारिक दृष्टि से सम्पन्न बनाती है वहीं हमें हमारी दृष्टि को भी गहरा बनाती है। समाजसेवी श्री अशोक सोहनी ने कहा- इस आयोजन से निश्चित ही शहर के पाठकों की रुचि का विस्तार होगा।

उज्जैन पुस्तक मेले का उद्घाटन समारोह का संचालन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,भारत के हिंदी संपादक डॉ. ललित किशोर मंडोरा ने किया। पुस्तकमेले के उद्घघाटन अवसर पर धन्यवाद ज्ञापन राष्ट्रीय बाल साहित्य केंद्र के सम्पादक मानस रंजन महापात्र ने किया।

***

दो दिवसीय अनुवाद कार्यशाला का आयोजन

नासिक में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत व कुसुमाग्रज प्रतिष्ठान के सयुंक्त तत्वावधान में आयोजित बाल साहित्य मराठी दो दिवसीय अनुवाद कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस अवसर पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास,भारत के हिंदी संपादक डॉ. ललित किशोर मंडोरा मौजूद थे। उन्होंने इस मौके पर राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की गतिविधियों के बारे में उसके क्रिया-कलापों के बारे में विस्तार से जानकारी देते हुए आगामी विश्व पुस्तकमेला की भी जानकारी दी। उन्होंने बताया कि नवसाक्षरों के लिए न्यास ने 500 से अधिक पुस्तकों का प्रकाशन किया है,जिसमें हर विषय की पुस्तकें शामिल है, इस कार्यशाला में स्थानीय पंद्रह अनुवादक भागीदारी कर रहे है जो दो दिवसीय कार्यशाला में नेहरू बाल पुस्तकालय के तहत प्रकाशित पुस्तकें व नवसाक्षरों के लिए श्रेष्ठ पुस्तकों का अनुवाद करेंगे। जिसमें वरिष्ठ अनुवादक सुश्री पटवर्धन, वंदना अत्रे से लेकर युवा अनुवादक तक शामिल हुए।

इस मौके पर न्यास में मराठी सलाहकार सुश्री निवेदिता ने बताया कि हमारी कोशिश है कि इस आयोजन में बेहतर अनूदित पुस्तकें तैयार की जाए। इसके लिए हमने स्थानीय अनुवादकों को ही आमन्त्रित किया है। न्यास ने विविध विषयों पर केंद्रित पुस्तकों का प्रकाशन किया है,इस कार्यशाला का भी उद्देश्य है कि जनपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाए जिससे हमारे पाठक लाभांवित हो सकें।

इस अवसर पर संदर्भ व्यक्ति स्वाति राजे ने न्यास के अपने अनुभवों को साँझा किया।

***

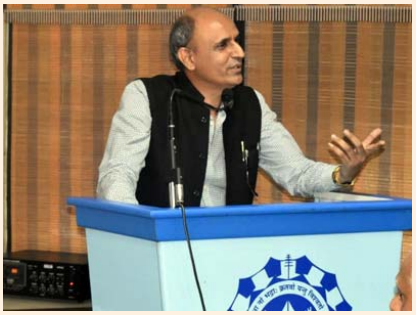

पत्रकारिता विश्वविद्यालय में मना हिन्दी दिवस समारोह

हिन्दी को लेकर आजकल बहुत भ्रम है, लेकिन मैं पूरे विश्वास के साथ कहना चाहूँगा कि अगले 50 सालों तक हिन्दी को कोई संकट नहीं है। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय में हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित समारोह में ये विचार प्रख्यात कथाकार एवं लेखक पंकज सुबीर ने व्यक्त किए। विश्वविद्यालय के साहित्य क्लब, मुंशी प्रेमचंद साहित्य परिषद के द्वारा आयोजित इस समारोह में वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखिका सुश्री शिफाली, विश्वविद्यालय के कुलपति श्री दीपक तिवारी, कुलाधिसचिव प्रो. श्रीकांत सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

श्री पंकज सुबीर ने हिन्दी भाषा की प्रशंसा करते हुए कहा कि जितने अच्छे से संचार आप अपनी मातृभाषा में करते हैं अन्य भाषाओं में ऐसा नहीं होता है। उन्होंने हिन्दी एवं अंग्रेजी की पुस्तकों पर कहा कि अंग्रेज़ी की पुस्तकें एयरपोर्ट पर बिकती हैं, जबकि हिन्दी की रेलवे स्टेशन पर। कई पुरस्कारों से सम्मानित श्री सुबीर ने हिन्दी को वैज्ञानिक एवं समय के आगे की भाषा बताते हुए कहा कि यह बहुत ही अच्छी भाषा है और इससे जादू सा निकलता है। उन्होंने हिन्दी को आम बोल-चाल की भाषा बताते हुए कहा कि यह एक ऐसी भाषा है, जिसमें हिन्दी में बात करते हैं तो ये आपके दिल को छूती है।

समारोह में वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखिका सुश्री शिफाली ने हिन्दी भाषा पर कहा कि भाषा के हाथ पकड़कर यदि आप आगे बढ़ते हैं तो कोई बाधा नहीं आएगी। उन्होंने कहा कि आप अपनी भाषा का दामन कभी न छोड़ें। शिफाली ने विद्यार्थियों को शब्दकोश

को बढ़ाने की बात कहते हुए हिन्दी को आमजन की भाषा बताया। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि रौब जमाने के लिए अंग्रेज़ी ठीक है लेकिन रोज़ी-रोटी के लिए हिन्दी बहुत जरुरी है। उन्होंने इस अवसर अपनी कुछ चुनिंदा कविताओं का पाठ भी किया।

हिन्दी दिवस समारोह की अध्यक्षता कर रहे विश्वविद्यालय के कुलपति श्री दीपक तिवारी ने अपने संबोधन में हिन्दी साहित्य की प्रशंसा करते हुए कहा कि ये आपको अंदर से हिला देता है। उन्होंने इसे साहित्य की ताकत बताते हुए कहा कि इसके प्रभाव से आप हिले बिना नहीं रह सकते हैं।अंत में कुलाधिसचिव प्रो. श्रीकांत सिंह ने आभार प्रदर्शन किया। समारोह का संचालन सहायक प्राध्यापक अरुण कुमार खोबरे ने किया।

***

डॉ. गोपाल निर्दोष की दो पुस्तकों का लोकार्पण

डॉ. गोपाल प्रसाद 'निर्दोष' की 'नाइंसाफियों से मुठभेड़ के कलमकार' एवं 'कथा नवादा' का लोकार्पण होटल राजदरबार में डॉ. हरेकृष्ण तिवारी एवं फिल्मकार शिवकुमार प्रसाद के हाथों संपन्न हुआ। लोकार्पित हुई डॉ. गोपाल निर्दोष की पुस्तक 'नाइंसाफियों से मुठभेड़ के कलमकार' प्रसिद्ध कथाकार जयनंदन को केंद्र में रखकर लिखी गई है।

***

अशोक 'अंजुम' विशेषांक का विमोचन

शिखर साहित्यिक संस्था द्वारा जबलपुर से प्रकाशित 'प्राची' मासिक पत्रिका के अशोक 'अंजुम' विशेषांक का लोकार्पण मंडलायुक्त अजयदीप सिंह द्वारा किया गया। इस मौके पर मंडलायुक्त ने शॉल ओढ़ाकर अशोक अंजुम को सम्मानित किया। श्रीमती अंजुम बी ने 'प्राची, पत्रिका की अतिथि संपादक डॉ. सफलता सरोज को शॉल ओढ़ाकर उनका आभार व्यक्त किया।

डॉ. मुजीब शहज़र के संचालन एवं हरीश बेताब के संयोजन में हुए इस कार्यक्रम में अजयदीप सिंह ने कहा कि अशोक अंजुम ने साहित्य के क्षेत्र में अलीगढ़ का गौरव बढ़ाया है। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि डॉक्टर प्रेम कुमार ने कहा कि अशोक अंजुम ने साहित्यकारों का मान बढ़ाया है। विशेषांक की अतिथि संपादक डॉ. सफलता सरोज ने अशोक अंजुम को बहुमुखी प्रतिभा का धनी बताया। पूर्व विधायक विवेक बंसल ने अशोक अंजुम को प्रतिभावान कलमकार कहा। कवि हरीश बेताब ने कहा कि अशोक अंजुम ने विभिन्न विधाओं में महारत हासिल करके ''जैक ऑफ ऑल मास्टर आफ नन'' कहावत को गलत सिद्ध किया है। कार्यक्रम में कवि अशोक अंजुम ने सभी का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि जितनी भी विधाओं में मेरा लेखन रहा है, उन विधाओं के मिज़ाज को अच्छी तरह समझा है, और सहजता के साथ कुछ अच्छी, अलग हट के बात कहने की कोशिश की है। समारोह के अध्यक्ष डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ ने कहा अशोक अंजुम के रचना संसार पर विशेषांक केंद्रित करके 'प्राची' पत्रिका स्वयं ही गौरवान्वित हुई है।

***

स्पंदन द्वारा 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पर नाज़ था' पर चर्चा

ललित कलाओं के प्रशिक्षण प्रदर्शन एवं शोध की अग्रणी संस्था स्पंदन द्वारा पंकज सुबीर के बहुचर्चित उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पर नाज़ था' पर पुस्तक चर्चा का आयोजन स्वराज भवन में किया गया। इस अवसर पर उपन्यास के दूसरे संस्करण का भी विमोचन हुआ। कार्यक्रम की अध्यक्षता मध्यप्रदेश के अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक श्री सैयद मोहम्मद अफ़ज़ल ने की। पुस्तक पर वक्ता के रूप में भोपाल कलेक्टर श्री तरुण पिथोड़े, एबीपी न्यूज़ के संवाददाता श्री बृजेश राजपूत तथा दैनिक भास्कर के समाचार संपादक श्री सुदीप शुक्ला उपस्थित थे।

सर्वप्रथम अतिथियों का स्वागत स्पंदन की संयोजक वरिष्ठ कथाकार डॉ उर्मिला शिरीष ने किया। इस अवसर पर बोलते हुए श्री सुदीप शुक्ला ने कहा कि यह उपन्यास एक ऐसे समय पर आया है, जब इस उपन्यास की सबसे अधिक आवश्यकता थी। यह इस समय की सबसे ज़रूरी किताब है। इस उपन्यास में प्रश्नोत्तर के माध्यम से आज के कुछ महत्त्वपूर्ण सवालों के जवाब तलाशे गए हैं। ऐतिहासिक पात्रों को उठाकर उनके साथ चर्चा करते हुए लेखक ने आज की समस्याओं के हल और उनकी जड़ तलाशने की कोशिश की है।

उपन्यास पर चर्चा करते हुए श्री बृजेश राजपूत ने कहा कि पंकज सुबीर के पहले के दोनों उपन्यास भी मैंने पढ़े हैं तथा उन पर टिप्पणी की हैं, यह तीसरा उपन्यास उन दोनों से बिल्कुल अलग तरह का उपन्यास है। इस उपन्यास को पंकज सुबीर ने एक बिल्कुल नए शिल्प और एक नई भाषा के साथ लिखा है। यह ठहरकर पढ़े जाने वाला

उपन्यास है जो आपको कई सारी नई जानकारियाँ प्रदान करता है, ऐसी जानकारियाँ जिनके बारे में आप जानना चाहते हैं।

भोपाल कलेक्टर श्री तरुण पिथोड़े ने उपन्यास पर चर्चा करते हुए कहा कि यह उपन्यास प्रशासन से जुड़े हुए अधिकारियों के मानवीय पक्ष को सामने रखता है। साथ में उन चुनौतियों के बारे में भी बताता है जिन चुनौतियों का सामना हम सब को करना पड़ता है। यह मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का उपन्यास है।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे श्री सैयद मोहम्मद अफ़ज़ल ने कहा कि इस उपन्यास में बहुत सारी बातें ऐसी हैं जिनको पढ़ते हुए हमें ऐसा लगता है कि लेखक ने बहुत खतरा उठा कर इस उपन्यास को लिखा है। कई सारी बातें, कई सारे कोट्स इस तरह के हैं जैसे हमारे ही मन की बात लेखक ने लिख दी है। इस तरह के उपन्यासों का लिखा जाना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह उपन्यास और इस तरह की किताबें बहुत सारी गलतफहमियों के अंधेरे को दूर कर एक सही दिशा दिखाने का कार्य करेंगे।

इस अवसर पर पंकज सुबीर ने उपन्यास को लेकर अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में श्रोताओं को बताया साथ ही उन्होंने अपने उपन्यास के एक अंश का भी पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन सुप्रसिद्ध शायर श्री बद्र वास्ती ने किया। कार्यक्रम के अंत में सभी अतिथियों को स्पंदन तथा शिवना प्रकाशन की तरफ से स्मृति चिह्न सीहोर नगर पालिका के पूर्व अध्यक्ष श्री नरेश मेवाड़ा द्वारा प्रदान किए गए। अंत में आभार स्पंदन की संयोजक तथा वरिष्ठ कथाकार डॉ. उर्मिला शिरीष ने व्यक्त किया। इस अवसर पर बड़ी संख्या में साहित्यकार, पत्रकार उपस्थित थे।

***

गैलेक्सी ग्लोबल ग्रुप ऑफ़ इंस्टीट्यूशन में काव्य-प्रवाह

गैलेक्सी ग्लोबल ग्रुप ऑफ़ इंस्टीट्यूशन में काव्य प्रवाह कार्यक्रम का आयोजन किया गया। अपनी तरह के पहले कार्यक्रम में हरियाणा, पंजाब, यू पी, व एम पी से 12 कवियों ने अपनी कविताओं, ग़ज़लों व गीतों से ऐसा समाँ बाँधा कि समय कब पंख लगाकर उड़ गया पता ही नहीं लगा।संस्थान के विद्यार्थी, शिक्षक व मैनेजमेंट के सदस्य तथा अन्य आमंत्रित मेहमान मंत्र मुग्ध काव्य- प्रवाह का आनंद लेते रहे। कार्यक्रम की शुरूआत संस्था के चेयरमैन श्री विनोद गोयल व काव्य - प्रवाह की अध्यक्षता कर रहे सीनियर कभी डॉ. आनंद स्वरूप विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित कहानीकार व कवि विकेश निझावन, प्रोफ़ेसर आर. आर. आज़ाद ने दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

विकेश निझावन अपने सक्रिय लेखन व पुष्पगंधा के मनोहर संपादन से जो लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं, वह अभिनंदनीय है। इस समारोह में हरियाणा के कवियों को मंच पर लाने का श्रेय विकेश निझावन को ही जाता है। विकेश निझावन ने अपनी कविताओं से श्रोताओं को भावविभोर कर दिया।

अन्य कवियों में डॉ. निम्मी वशिष्ठ, डॉ. अनंत स्वरूप, प्रीति श्रीवास्तव, डॉ. सुमन लूथरा, संगीता वाधवा, वंदना व चंद्रकांता अग्निहोत्री ने अपनी कविताओं व गीतों से ख़ूब समाँ बाँधा। हरियाणा के कवियों के साथ अन्य प्रदेशों के कवि पवन बाथम, राजेंद्र राजन, मोहित संगम, रचना गोस्वामी, निर्मल सक्सेना के काव्य पाठ की प्रस्तुति अतुलनीय थी।

***

अखिल भारतीय शब्द प्रवाह साहित्य सम्मान

कालिदास अकादमी में राष्ट्रीय पुस्तक मेला मंच पर 7 सितम्बर, शनिवार को आयोजित भव्य सम्मान समारोह में मुख्य अतिथि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास दिल्ली के संपादक ललित किशोर मंडोरा (लालित्य ललित) ने कहा कि शब्द प्रवाह यह जो कार्यक्रम कर रहा है वह प्रशंसनीय है इस तरह के आयोजन होते रहना चाहिए, रचनाकारों को प्रोत्साहन मिलते रहना चाहिए। उज्जैन मे यह पुस्तक मेला भी यही उद्देश्य लेकर लगाया गया है।

अतिथि विक्रम विश्वविद्यालय के कुलानुशासक डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने समारोह में उद्‌बोधन देते हुए कहा कि रचनाकार को सतत अपनी प्रतिभा को निखारना चाहिए। जैसे योगी समाधी की अवस्था में तल्लीन हो जाता है उसी प्रकार रचानाकार यदि रचनाकर्म में लीन नहीं होता है तो वह रचना एक मशीनी रचना हो सकती है कविता नहीं हो सकती। कविता कर्म एक साधक का कर्म है।

अतिथी युवा साहित्यकार राजकुमार जैन राजन(चित्तौड़) ने कहा कि कला के पौधे प्रतिभा की भूमि से उपजते है और आस्था से संचित होते है। साहित्य और कला जीवन के सात्विक अनुष्ठान है। साहित्य वह दीपक है जिसकी रोशनी लंबे समय तक समाज और देश को रोशन करती रहती है।

शब्द प्रवाह साहित्यिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक मंच उज्जैन के तत्वावधान में अखिल भारतीय पुरस्कार और सम्मान इस समारोह में प्रदान किए गए। श्री प्रदीप नवीन,(इंदौर) की कृति "साथ नहीं देती परछाई",लधुकथा के लिए श्रीमती महिमा श्रीवास्तव वर्मा, (भोपाल) की कृति "आदम बोनसाई",व्यंग्य के लिए श्री अशोक व्यास,(भोपाल) की कृति "विचारों का टैंकर" को प्रथम पुरस्कृत किया गया।

साथ ही डॉ. लक्ष्मीनारायण पांडेय स्मृति खंडकाव्य सम्मान के लिए श्री ज्योतिपुंज (उदयपुर) की कृति "सत् संकल्प", स्व.श्रीमती सत्यभामा शुकदेव त्रिवेदी गीतकार सम्मान के लिए डॉ. घमंडीलाल अग्रवाल, (गुरुग्राम)की कृति "कितना समय कठिन", स्व. बालशौरि रेड्डी बाल साहित्य सम्मान के अन्तर्गत प्रथम के लिए श्री गोविंद शर्मा, (संगरिया, हनुमानगढ़) की कृति "मुझे भी सीखाना" तथा द्वितीय के लिए श्री जयसिंह आशावत, (नैनवा, बूँदी) की कृति "दादी अम्मा नई कहो कुछ", इजी.प्रमोद शिरढोणकर बिरहमान स्मृति नई कविता सम्मान के लिए श्रीमती शशि सक्सेना, (जयपुर)की कृति "रिश्ते हुए सपने", तथा इजी. प्रमोद शिरढोणकर स्मृति कहानी सम्मान के लिए डॉ. गरिमा संजय दुबे, (इंदौर) की कृति "दो ध्रुवों के बीच की आस" एवं स्व. लक्ष्मीनारायण सोनी स्मृति ग़ज़ल सम्मान के लिए डॉ. महेन्द्र अग्रवाल(शिवपुरी) की कृति "फ़नकारी सा कुछ तो है" को पुरस्कृत किया गया।

साहित्यिक/ सामाजिक पत्रकारिता के लिए हिंदी भाषा डॉट कॉम के संपादक अजय जैन विकल्प (इंदौर) और हिंदी मिडिया के संपादक चन्द्रकांत जोशी (मुम्बई) को सम्मान प्रदान किया गया। आयोजन में राजकुमार जैन राजन की कृति मन के जीते जीत और रोबोट एक दिला दो राम का के नेपाली भाषा संस्करण का विमोचन भी अतिथियों द्वारा किया गया। आयोजन में शहर के कई प्रबुद्धजन एवं साहित्यकार उपस्थित थे।

***

ट्राइऐंगल कविता ग्रुप की मासिक कविता गोष्ठी

नॉर्थ कैरोलाइना, अमेरिका के ट्राइऐंगल कविता ग्रुप की मासिक कविता गोष्ठी कवयित्री गीता-सुरेंद्र कौशिक के घर पर आयोजित हुई। गोष्ठी में यूथिका चौहान, सुधा ओम ढींगरा, उषा देव, संप्रीती भट्टाचार्य, डॉ. जगदीश मुजराल, मीरा गोयल, अफ़रोज़ ताज, जॉन कॉल्डवेल, नीना राय और गीता कौशिक ने दोहे, गीत, कविताएँ, ग़ज़लें प्रस्तुत कीं। अंत में डॉ. विजय चौहान की पुस्तक 'ख़्यालों के काफ़िले' का विमोचन किया गया। गोष्ठी का साहित्यिक संचालन सुरेंद्र कौशिक ने किया।

***

महात्मा गाँधी पर केंद्रित राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 150 वें जयंती वर्ष के अवसर पर विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन के गाँधी अध्ययन केन्द्र और हिन्दी अध्ययनशाला के संयुक्त तत्त्वावधान में 'महात्मा गाँधी : भाषा, साहित्य और लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में' विषय पर त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी का आयोजन वाग्देवी भवन स्थित राष्ट्रभाषा सभागार में हुआ।

***

ग्रेटेस्ट इंडियन हिन्दी पोएट...?

आपको शीर्षक पढ़कर लग रहा होगा कि जो बात हिन्दी में कही जा सकती है उसके लिए अंग्रेज़ी के शब्दों का उपयोग क्यों किया जा रहा है, और वह भी शीर्षक में ही किया जा रहा है। किया जा रहा है, तो उसका भी एक कारण है। असल में उनके दुर्भाग्य या मेरे सौभाग्य से हिन्दी के एक महानतम-तमा-तम (बात नहीं बनी न ? इसीलिए मैंने ऊपर अंग्रेज़ी का उपयोग किया।) कवि मेरे साथ किसी सोशल मीडिया के मंच पर साथ में उपस्थित हैं। कवि महोदय सचमुच के ही महान् कवि हैं। चूँकि वे कई सारी संस्थाओं के प्रमुख हैं या रह चुके हैं, कई सारी पुरस्कार समितियों के निर्णायक हैं, पत्रिकाओं के संपादक हैं या रह चुके हैं; इसलिए वे महान् हैं। हिन्दी का साहित्यकार इन्हीं सब से महान् बनता है। आज तक हिन्दी का कोई भी लेखक लिख कर महान् नहीं हुआ है। असल में यह समय प्रोडक्ट का नहीं है, यह समय एसेसरीज़ का है। आजकल प्रोडक्ट बाद में देखा जाता है, पहले यह देखा जाता है कि उसके साथ एसेसरीज़ क्या-क्या हैं। तो उन महानतम-तमा-तम कवि के पास बहुत सी एसेसरीज़ हैं, और रह चुकी हैं। यूँ वे हिन्दी के कवि हैं, लेकिन वे इन दिनों कविता के अलावा सब कुछ करते हैं। कविता जितनी करनी थी वे कर चुके। अब वे कर चुकी गई कविता से कमाए गए पदों का ब्याज खा रहे हैं। कहावत यह भी है कि मूल से सूद प्यारा। और यह भी कभी-कभी मूल से अधिक लाभ ब्याज से ही प्राप्त होता है। ख़ैर, तो बात यह कि वे मेरे साथ एक सोशल मीडिया के मंच पर साथ हैं। पिछले कुछ महीनों से वे साथ हैं। उस मंच पर आई हुई उनकी टिप्पणियों को मैं पढ़ता रहता हूँ। कवि महोदय ने बीते तीन-चार महीने में भूल से भी एक भी टिप्पणी हिन्दी में नहीं की है। सारी टिप्पणियाँ एकदम रानी एलिजाबेथ वाली अंग्रेज़ी में करते हैं वे। यहाँ तक कि आज तक उन्होंने भूल कर भी एक भी टिप्पणी रोमन लिपि में लिखकर हिन्दी में नहीं की है। जब भी उन हिन्दी के कवि महोदय की टिप्पणी उस मंच पर आती है, तो अंग्रेज़ी की जैंटलमेनों वाली भाषा की सुगंध से पूरा मंच महमहा उठता है। मेरे जैसे लगभग अनपढ़ लोग तुरंत अंग्रेज़ी का शब्दकोश उठा लेते हैं उनकी टिप्पणी को पूरा समझने के लिए। चूँकि वे कई निर्णायक समितियों के सदस्य हैं, इसलिए ज़ाहिर सी बात है कि उनके द्वारा की गई टिप्पणी पर अहो-अहो भी करना सबका दायित्व है। इसलिए सब तुरंत उन अंग्रेज़ी शब्दों के अर्थ तलाशने लगते हैं, जो उस टिप्पणी में हैं। कई बार तो कवि महोदय अंग्रेज़ी के भी कूट शब्दों का उपयोग करते हैं, वही कूट शब्द जो आजकल के युवा उपयोग में लाते हैं। इन कूट शब्दों के अर्थ किसी शब्दकोश में नहीं पाए जाते हैं। पिछले तीन-चार माह से मैं बस प्यासे चातक की तरह प्रतीक्षारत हूँ कि कब उन महान् हिन्दी कवि महोदय के मुख से टपकी हुई हिन्दी शब्द की एक बूँद का मैं रसपान कर सकूँ। और अपने जीवन को धन्य कर सकूँ। आने वाली पीढ़ी को बात सकूँ कि मैंने भी एक हिन्दी कवि के मुख से निकली हुई हिन्दी को सुना था। मगर लगता है हिन्दी भाषा की सीढ़ी चढ़कर ऊपर, बहुत ऊपर पहुँच चुके हिन्दी के उन कवि महोदय ने भी शायद ठान लिया है कि प्राण जाए पर अंग्रेज़ी न जाए। आख़िर को अंग्रेज़ों से किया गया वादा था हमारा कि हम उनके चले जाने के बाद भी इस देश में अंग्रेज़ी को उनकी याद के रूप में सुरक्षित रखेंगे। ख़ैर... बात भाषा की नहीं है, भाषाएँ तो अभिव्यक्ति का एक माध्यम होती हैं। बात तो केवल यह है कि जब आप किसी भाषा के कारण ही जीवन में यश और प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं, कर रहे हैं, तो फिर आपको उस भाषा में बात करने में ही क्यों शरम आने लगती है। बात यहाँ अंग्रेज़ी या किसी भी दूसरी भाषा से बैर की नहीं है, बात यहाँ पर हिन्दी भाषा के स्वाभिमान की है।

सादर आपका ही,

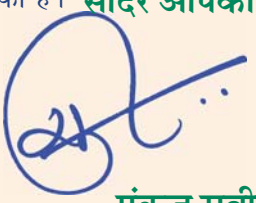

पंकज सुबीर

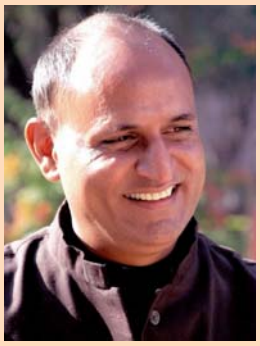

पंकज सुबीर
पी. सी. लैब, शॉप नंबर 3-4-5-6,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के
सामने, सीहोर, मप्र, 466001
मोबाइल : 9977855399
ईमेल : subeerin@gmail.com

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना DENA

सिर्फ़ ब्याज की नहीं, अधिक ब्याज की सोचें !

बड़ौदा एडवांटेज सावधि जमा

पर पाएं अधिक लाभ

- जमा राशि न्यूनतम रु.15.01 लाख
- वरिष्ठ नागरिकों के लिए अतिरिक्त ब्याज
- ऋण/ओवरड्राफ्ट सुविधा उपलब्ध

*शर्तें लागू.

टोल फ्री नंबर पर कॉल करें (24x7)

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
1800 258 44 55
1800 102 44 55

पूर्ववर्ती विजया बैंक
1800 425 5885
1800 425 9992

पूर्ववर्ती देना बैंक
1800 233 6427
022-6224 2424

www.bankofbaroda.in

हमें फ़ॉलो करें

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

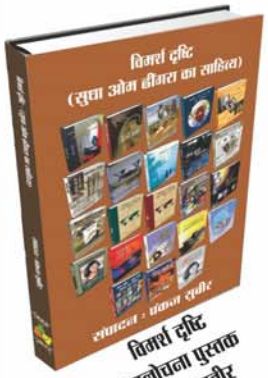

विमर्श दृष्टि
आलोचना पुस्तक
पंकज सुबीर

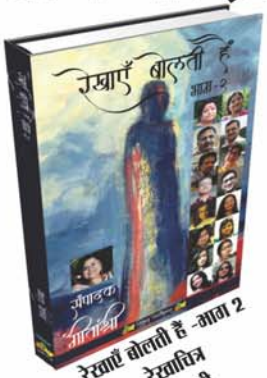

रेखाएँ बोलती हैं -भाग 2
रेखाचित्र
गीताश्री

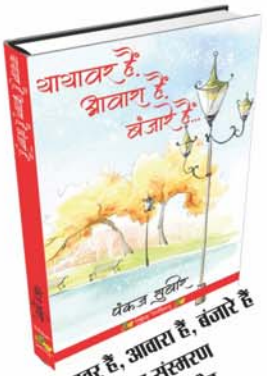

यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं
यात्रा संस्मरण
पंकज सुबीर

फ़रहाद नहीं होने के
ग़ज़ल संग्रह
नुसरत मेहदी

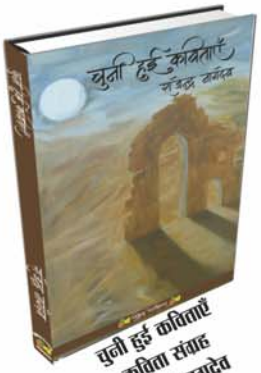

चुनी हुई कविताएँ
कविता संग्रह
राजेन्द्र नागदेव

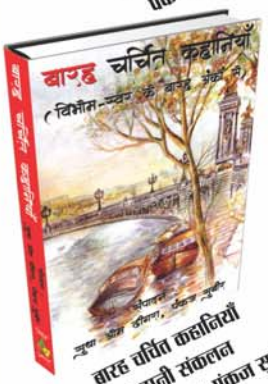

बारह चर्चित कहानियाँ
कहानी संकलन
सुधा ओम ढींगरा, पंकज सुबीर

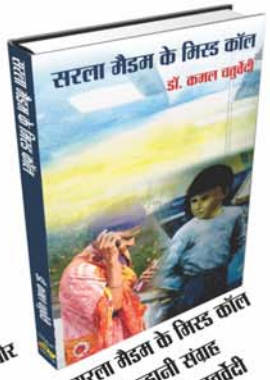

सरला मैडम के मिस्ड कॉल
कहानी संग्रह
डॉ. कमल चतुर्वेदी

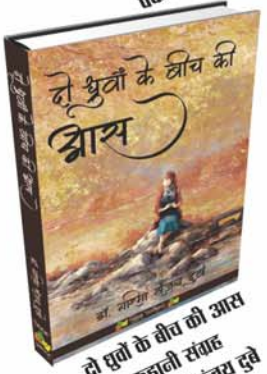

दो ध्रुवों के बीच की आस
कहानी संग्रह
डॉ. गरिमा संजय दुबे

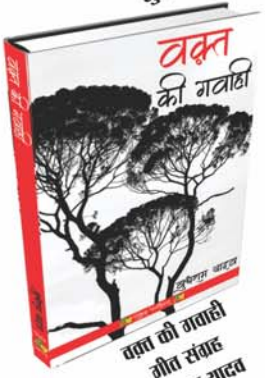

वक़्त की गवाही
गीत संग्रह
बुधराम यादव

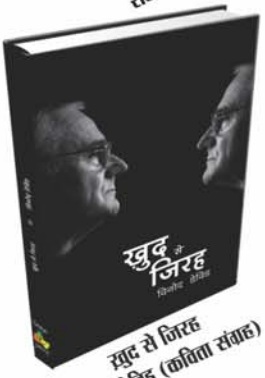

खुद से जिरह
विनोद डेविड (कविता संग्रह)

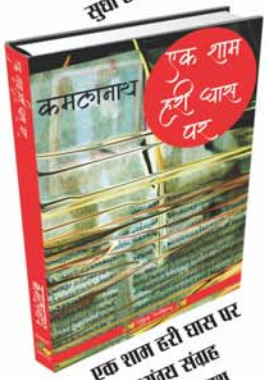

एक शाम हरी घास पर
व्यंग्य संग्रह
कमलानाथ

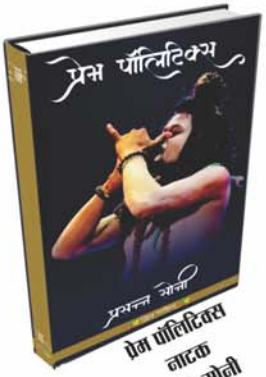

प्रेम पॉलिटिक्स
नाटक
प्रसन्न सोनी

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न
क़ानून शोध
शहरयार अमजद ख़ान

मी-टू
कहानी संग्रह
आकाश माथुर

सुख घालक है
सरोजकुमार (कविता संग्रह)

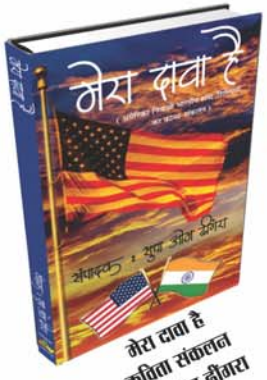

मेरा दावा है
कविता संकलन
सुधा ओम ढींगरा

कुबेर
उपन्यास
डॉ. हंसा दीप

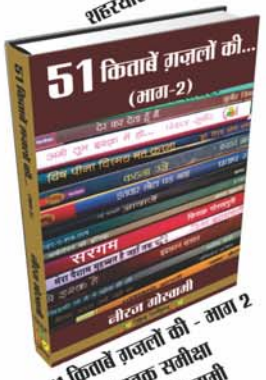

51 किताबें ग़ज़लों की - भाग 2
पुस्तक समीक्षा
नीरज गोस्वामी

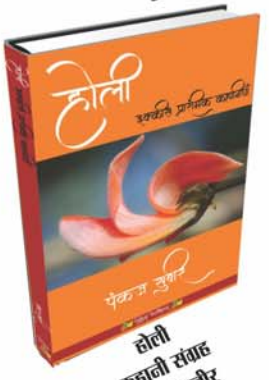

होली
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

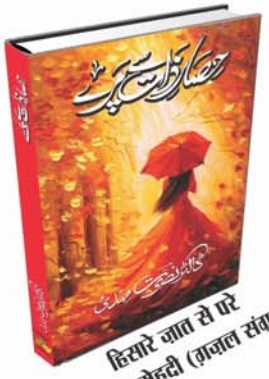

हिसारे जात से परे
नुसरत मेहदी (ग़ज़ल संग्रह)

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।